प्रकाशक—

रामनरेश त्रिपाठी,

हिन्दी-रत्नमाला कार्यालय,

प्रयाग।

मुद्रक—

कृष्णप्रसाद पाण्डेय

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।



श्रीयुत सेठ जमनालालजी बजाज

सच्चरित्र

सेठ जमनालालजी बजाज

सेठ जमनालालजी बजाज उन पुरुषों में से हैं जिनसे जातियाँ बनती हैं। आप मारवाड़ी जाति के रत्न हैं। आपका जीवन मारवाड़ी समाज के लिये ही नहीं, बल्कि प्रत्येक धनी व्यक्ति के लिये आदर्श है। आपकी हिन्दी-हितैषिता, लोक-सेवा और देश-भक्ति पर ही मुग्ध होकर मैंने यह पुस्तक आपको समर्पित की है। यहाँ आपके संक्षिप्त जीवन चरित से मैं अपने पाठकों का परिचय करा देना चाहता हूँ।

सेठ जमनालालजी का जन्म जयपुर राज्य के अंतर्गत रियासत सीकर के निकट "काशी का वास" नामक गाँव में, सं० १९४६ में, श्रीयुत सेठ कनीराम जी के यहाँ हुआ था। आप एरण गोती अग्रवाल हैं। बाल्यावस्था में ही आप वर्धा निवासी रायबहादुर सेठ बच्छराजजी के स्वर्गवासी पुत्र श्रीमान् सेठ रामधनदासजी की गोद आये।

सेठ बच्छराजजी अपने परिश्रम से बिलकुल साधारण स्थिति से व्यवसाय के सहारे श्रीमान् हुये। उन्होंने वर्धा में एक लाख रुपये की लागत का श्रीलक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर बनवाया, और उसके खर्च के लिये प्रायः पौन लाख रुपयों की जायदाद अलग करने का विचार किया; जिसे मन्दिर की प्रतिष्ठा के बाद उनका जल्दी ही देहान्त होने के कारण जमनालालजी ने पूर्ण किया।

सेठ बछराजजी के देहान्त के समय जमनालालजी व उम्र केवल १७ वर्ष की थी। तभी से दूकान के सब कारोबा का भार आप पर पड़ा। इतनी कम उम्र में भी आपने अपन व्यवसाय इतनी दक्षता से संभाला कि उत्तरोत्तर वृद्धि ह होती गई। आप व्यवसाय में बड़े कुशल हैं! और सच्चाई स बहुत प्रेम रखते हैं। आपने अपने व्यवसाय का कार्य वर्धा व बाहर अन्य गाँवों में तथा बंबई और कलकत्ता में भी बढ़ाया व्यापारी समुदाय में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। बड़े बड़े प्रख्यात व्यापारी भी आपसे व्यावसायिक सम्बन्ध रखने वे लिए उत्सुक रहते हैं। देश के उद्योग-धंदे बढ़ाने की ओर भी आपका पूरा ध्यान रहता है। आपने कई नई कंपनियाँ और कारखाने खोलने में योग दिया है और स्वदेशी का प्रचार बड़ी दत्तचित्तता से किया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आप अपनी दूकानों पर तथा घर में स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार करते हैं।

प्रायः २० वर्ष की अवस्था से आपका सार्वजनिक जीवन प्रारंभ हुआ। पहले आपने मारवाड़ी जाति की उन्नति की ओर ध्यान दिया और निश्चय किया कि जाति में विद्या प्रचार से ही यह उद्देश सिद्ध होगा। वर्धा में 'मारवाड़ी विद्यार्थी गृह' की स्थापना की और प्रारंभ में उसे आप अपने ही धन से चलाते रहे। तत्पश्चात् "मारवाड़ी शिक्षा-मण्डल" की स्थापना हुई। "मारवाड़ी हाई स्कूल" बना। इन सब कामों में आपका पूरा पूरा योग रहा। "मारवाड़ी शिक्षा-मण्डल" में अब तक प्रायः तीन लाख रुपयों का चंदा हुआ है, उसमे, ७७००१) रुपये आपने स्वयं दिये। अन्यों से चंदा इकट्ठा करने के प्रयत्न का भी प्रायः पूरा श्रेय आपको ही है।

बंबई के 'मारवाड़ी विद्यालय' की स्थापना में तथा उसके लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने में और उसके कार्य संचालन में आपका महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

मारवाड़ी जाति के अलावा अन्य जाति की संस्थाओं को भी आप बड़ी उदारतापूर्वक सहायता करते हैं। जयपुर राज्यान्तर्गत सीकर नगर में राजपूत बालको के हितार्थ एक विद्यार्थी गृह आपकी सहायता से ही चल रहा है। कई स्थानो में कालेज के छात्रो को आप छात्रवृत्तियाँ देते हैं।

आप गांवों में जाते हैं तब वहाँ की सब संस्थाएं आप स्वयं ढूँढ़ ढूँढ़ कर देखते हैं और जो सहायता के योग्य पाई जाती हैं उन्हें आर्थिक और अन्य प्रकार की अच्छी सहायता करते हैं।

स्त्री शिक्षा के लिए भी आप पूरी सहायता करते हैं। मज़दूर और अस्पृश्य वर्गों को भी भूले नहीं हैं। इनके लिए भी पाठशालाएँ चला रहे हैं।

भिन्न भिन्न संस्थाओं को सब मिलाकर अब तक आप प्रायः पाँच लाख रुपयों की सहायता कर चुके होंगे, जिसे उनकी आर्थिक स्थिति को देखते हुए विलक्षण उदारता-सूचक ही समझनी चाहिए। आप धन की ओर ऊँचे आदर्श की दृष्टि से देखते हैं। अपने स्वतः उपार्जित धन में भी अपना भाग कितना समझना और राष्ट्र को कितना वापिस लौटा देना चाहिए, इसका सदा ध्यान रखते हैं और उसी के अनुसार कार्य भी करते हैं।

चंदा करने में तो बड़े सिद्धहस्त हैं। मारवाड़ी शिक्षा मण्डल वर्धा, मारवाड़ी विद्यालय बंबई, मारवाड़ी अग्रवाल

महासभा आदि संस्थाओं के लिए तथा सर जगदीश चंद्र बोस की वैज्ञानिक संस्था के लिए बंबई में चंदा हुआ और हाल ही में हिन्दू युनिवर्सिटी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए बंबई में, मारवाड़ी जाति में चंदा हुआ था, इन सब का अधिकांश श्रेय आप ही को है।

सामाजिक सुधार मे भी आप दत्तचित्त रहे हैं। मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के जनक आप ही हैं। इस महासभा के प्रथम अधिवेशन का सब खर्च आपने ही उठाया और दूसरे अधिवेशन में आठ लाख का चंदा इकट्ठा हुआ, उसके लिए भी विशेष परिश्रम आपने ही किया। सामाजिक सुधार की बातें स्वयं आचरण में लाते हैं। उसमें प्यारे से प्यारे रिश्तेदार भी नाराज़ हों तो भी संकोच नहीं मानते। सामाजिक विषयों में साधारणतः उदारमतवादी हैं।

सेवासमाज के काम मे भी आप बड़े तत्पर हैं। और मामूली स्वयंसेवकों के साथ मिल कर काम करना अपना गौरव समझते हैं। इस वर्ष के नासिक के कुंभ पर भिन्न भिन्न सेवा-समितियों ने जो कार्य किये उनमे आपने पूरा योग दिया। उनकी आर्थिक सहायता का श्रेय आपको ही है।

आपने गत दो तीन वर्षों में देश की राजनीतिक स्थिति की ओर अच्छा ध्यान दिया है, और देश की राजनीतिक स्थिति सुधारने के लिए जो जो संस्थाएं और व्यक्ति काम कर रहे हैं उनको खूब सहायता की है। राष्ट्रीय पक्ष के समाचार पत्रों ने आपसे सहायता पाई है और हिन्दी के प्रचार के लिए भी आपने बहुत यत्न किया है। बंबई का 'गांधी हिन्दी पुस्तक भांडार' आपकी कृपा का ही फल है। आपने धार्मिक पुस्तकें भी प्रकाशित करवाई हैं।

राजनीतिक आन्दोलन में प्रत्यक्ष प्रकट रीति से भाग लेना आपने इतने में ही शुरू किया है पर अब इस काम में दिलो-जान से लग गये हैं। आपका यह स्वभाव है कि आप जिस काम मे लगते हैं उसके लिए आपसे जितना बनता है उतना परिश्रम कर लेते हैं। आपकी इस तत्परता का परिणाम यह होता है कि अनेक सहायक सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं और बहुधा सफलता भी हुआ करती है।

आप कई वर्षो से म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य तथा आन-रेरी मजिस्ट्रेट थे और सरकार से रायबहादुरी भी प्राप्त कर चुके थे परन्तु अब आप पूर्ण रूप से असहकारिता के पक्ष मे है। अतएव आपने मेम्बरी, मजिस्ट्रेटी और राय-बहादुरी विशेष कांग्रेस की आज्ञा मान कर छोड़ दी है। विज्ञान, धर्मशास्त्र, संगीत, चित्रकारी, राजनीति, व्यापार इत्यादि सभी विषयों के पंडितों से, सारांश यह कि सभी प्रकार के बड़े आदमियों से मिलने का तथा मेलमिलाप रखने का आपका स्वभाव है। महात्मा गाँधी पर आपकी विशेष भक्ति है। महात्माजी देशहित के लिए जो जो कार्यक्रम निश्चित करते हैं उसे आप अपना ही समझकर धार्मिक जोश के साथ सफल करने मे कुछ भी उठा नहीं रखते।

आपका मस्तिष्क बड़ा सच्चा, हृदय बड़ा विमल, स्वभाव बड़ा सरल और मन बड़ा मिलनसार है। लगभग दश वर्ष हुये, पहले पहल फतहपुर (जयपुर) में मेरा आपसे परिचय हुआ। तब से आपके विषय में मेरी जानकारी बराबर बढ़ती जा रही है और मैं आपको बराबर उन्नति की ओर बढ़ता हुआ देख रहा हूँ। मैंने आपको किसी सभा मंच पर जनता

के सामने जिस रूप में देखा है वैसा ही अपने घर के भीतर भी। मैंने आपको आत्मा के मुख से बोलते हुये सुना है, मन के मुख से नहीं। मैंने आपके मस्तिष्क, हृदय और हाथ में बहुत कम अन्तर देखा है।

भारतवर्ष भर में जितने हिन्दीहितैषी हैं, उनके मुखियों में से एक आप भी हैं। आपने हिन्दी की उन्नति के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया है। आप आगे भी करने के लिये प्रयत्नशील हैं।

आपका रहन सहन बहुत साधारण, वेष बहुत सीधा सादा—सिरपर मारवाड़ी पगड़ी, शरीर पर हाथसे बुने हुये मोटे कपड़े का कुर्ता या कोट, पैरों मे देशी जूते—और रूप रंग बहुत सौम्य है।

आपकी समस्त विशेषताओ में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप सच्चरित्र हैं। आपका चरित्र बड़ा उज्ज्वल और अनुकरणीय है। इस वर्ष (सं० १९७७ में) आप नागपूर में कांग्रेस की स्वागत-कारिणी समिति के सभापति चुने गये। यह गौरव आपके ही लिये नहीं, बल्कि मारवाड़ी जाति के लिये भी अभिमान की वस्तु है।

ईश्वर से निवेदन है कि वह आपके जीवन-रचना के मार्ग में सहायक हो और आपके पद-चिन्हो को देखकर मारवाड़ी समाज में अनुसरण करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करे।

रामनरेश त्रिपाठी

कविता-कौमुदी

भूमिका

कविता-कौमुदी का दूसरा भाग भी हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित करने में मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। इस भाग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आजतक के प्रायः सब सुप्रसिद्ध हिन्दी कवियों का वर्णन आ गया है। यह कहने का साहस मैं नहीं कर सकता कि इनके सिवाय वर्तमान काल में और कवि ही नहीं। कितने ही ऊँचे दरजे के कवि अप्रकट रूप से होंगे, लेकिन मेरे सामने उनके जानने का कोई साधन नहीं। इस संग्रह मे एक दो को छोड़कर शेष ऐसे कवियों को ही स्थान दिया गया है, जिन्होंने कविता की पुस्तकें लिखी हैं, और वे प्रकाशित भी हो चुकी हैं। पुस्तकों को देखकर ही मुझे उनकी कवित्व-शक्ति का पता चला है, और उन्हें जानने का कारण मिला है। ऐसी दशा में यदि कोई सुकवि महाशय छूट गये हों तो इसका यह कारण नहीं कि उनकी उपेक्षा की गई है, बल्कि उनके छूट जाने का यह कारण है कि मैं उन्हें जान ही न सका। न तो उनका कोई ग्रंथ ही मुझे पढ़ने को मिला और न किसी अन्य मार्ग से ही मैं उनकी कवित्व-शक्ति से परिचित हो सका।

संगृहीत कवियों की संख्या चालीस है। इनमें से पाँच छः को छोड़कर सब जीवित हैं। जिनका देहान्त हो चुका है, उनकी प्रतिभा की सीमा भी निश्चित हो चुकी है; किन्तु जो

जीवित हैं, उनकी प्रतिभा के सामने विकास का बड़ा मैदान पड़ा हुआ है। अभी कौन कह सकता है कि उनकी जो जो कविताएँ इस संग्रह में चुन चुन कर रक्खी गई हैं, वे ही उनकी प्रतिभा की सब से उत्कृष्ट रचना हैं। सम्भव है संगृहीत कविताओं से कहीं अच्छी कविता वे आगे चल कर लिखें। अतएव उस समय इस पुस्तक में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ेगी।

कवियों का क्रम जन्म-संवत् से रक्खा गया है। दो तीन कवियों की जीवनियाँ देर में मिलीं, अतएव वे जन्म-क्रम से नहीं रक्खी जा सकीं। किसी किसी कवि की जीवनी के लिये मुझे बहुत परेशान होना पड़ा, जब बार बार पत्र लिखने पर भी कोई फल न हुआ और जीवनचरित नहीं जाना जा सका, तब जिस कवि के विषय में मुझे जितना मालूम था उतना ही मैंने लिख दिया है। उद्योग कर रहा हूँ, विस्तृत जीवनी मिल जायगी तो अगले संस्करण में यह त्रुटि भी दूर कर दी जायगी।

पहले यह इच्छा थी कि कविता-कौमुदी के दूसरे भाग के कवियों के चित्र भी दिये जायँ। किन्तु यह कार्य साधारण नहीं, बहुव्ययसाध्य और बहुसमय सापेक्ष है। कितने ही कवियों ने अपना चित्र ही नहीं बनवाया है, और कितने ही कवि अपना चित्र बनवाने को तैयार भी नहीं। और सबसे मुख्य बात तो यह है कि कागज की मँहगी को देखकर मैंने ही हिम्मत हार दी। चित्र देने में पुस्तक का दाम इतना अधिक बढ़ाना पड़ता कि पुस्तक के प्रचार में बाधा पड़ती। कागज सस्ता होगा, तब यह मनोरथ भी पूर्ण होगा।

कागज़ और पुस्तक-सम्बन्धी अन्य सामानों के महँगे होने पर भी कागज छपाई सफ़ाई और जिल्द में किफ़ायत नहीं की गई। फिर भी दाम बहुत मामूली ही रक्खा गया है।

इस संग्रह के तैयार करने में मैंने सरस्वती, मर्यादा, मिश्रबंधु विनोद और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की रिपोर्टों से सहायता ली है। मैं इन सबके सम्पादकों और लेखकों का बहुत कृतज्ञ हूँ।

मुझे इस बात का बहुत खेद है कि मैं कई अनिवार्य कारणों से इस संग्रह को शीघ्र न निकाल सका। कविता-कौमुदी के प्रेमी पाठकों ने इस भाग के लिये मेरे पास कई सौ पत्र भेजे होंगे। मैं सब को उनकी कृपा के लिये धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ, कि पहले भाग ही की तरह वे इसे भी अपना कर मेरा परिश्रम सफल करेंगे।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष १२-७७ } रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

[२]

गद्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हिन्दी-गद्य का विकास बड़ी तेज़ी से हुआ। इसके पहले लोगों का ध्यान पद्य की ही ओर विशेष रहा, गद्य में पुस्तकें कम लिखी गईं। किन्तु हरिश्चन्द्र के बाद गद्य लिखने की ओर विद्वानों की इतनी रुचि हुई कि पद्य का स्थान पीछे पड़ गया। पद्य से गद्य की विशेष उन्नति हुई, पद्य पिछड़ गया और गद्य ने एक परिमार्जित रूप धारण कर लिया। यहाँ हम हिन्दी-गद्य के नये युग के क्रम-विकास के कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं:—

सं० १६११—राजा शिवप्रसाद

जब विपत के दिन आते है तो सारे सामान ऐसे ही बंध जाते हैं। निदान राजा नल ने चलते समय दमयंती की साड़ी काटकर आधी उसमें से अपने पहरने को ली और आधी उसके बदन पर रहने दी।

सं० १६२०—स्वामी दयानन्द

यह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय, किन्तु जो पदार्थ जैसा है, वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

सं० १६२६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

फिर महाराज अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ़ किये। फैशन ने तो बिल और टोटल

के इतने गोले मारे कि बंटाढार कर दिया, और सिफ़ारिश ने भी खूबही छकाया।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट

शब्द की आकर्षण शक्ति न्यूटन की आकर्षण शक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती। बल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षण शक्ति से विशेष कहना चाहिये। इस लिये कि जिस आकर्षण शक्ति को न्यूटन ने प्रकट किया वह केवल प्रत्यक्ष में काम दे सकती है।

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

उनके कथन का अवतरण देकर मल्लिनाथ ने उन्हें फट-कार बताई है और लिखा है कि प्रसंग भी देखते हो या मन-मानी हाँकते हो। तुम्हें इस प्रयोग को सही साबित ही करना है तो पाणिनि-व्याकरण के पीछे न पड़कर और व्याकरण देखो। (किरातार्जुनीय)

अनाज महँगा होने से किसानों ही पर आफ़त नहीं आती; किन्तु मेहनत मज़दूरी करने वाले और लोगों पर भी आती है, यही नहीं, सभी लोगों पर उसका असर पड़ता है। (सम्पत्ति शास्त्र)

बाबू श्यामसुन्दर दास

इस गद्य की उत्पत्ति से यह तात्पर्य नहीं है कि पहले गद्य था ही नहीं; किसी न किसी रूप में था। नहीं तो क्या लोग पद्य में बातचीत करते थे? गद्य बोलचाल में अवश्य था; पर भिन्न भिन्न प्रान्तों और स्थानों में भिन्न भिन्न रूप में था। जिन्हें हम आजकल बोलियों का नाम देते हैं, जैसे आगरे के निकट ब्रजभाषा बोली जाती है।

बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन

ईश्वरीय सौन्दर्य को-प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्तव्य है। जितना ही गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य-सागर में डूबता है, उतनाही अधिक वह अपने कर्तव्य में सफल होता है।

पंडित पद्मसिंह शर्मा

बिहारी की सखी का परिहास बड़ा ही लाजवाब है। रसिक मोहन सुनकर फड़क ही गये होंगे। इससे अच्छा साफ़ सच्चा सीधा और दिल में गुदगुदी करनेवाला मीठा मज़ाक साहित्य-संसार में शायद ही हो।

हिन्दी-कविता

हिन्दी-कविता के दो रूप हैं, एक ब्रजभाषा का, दूसरा हिन्दी, का जिसे खड़ी बोली भी कहते हैं। ब्रजभाषा का भाण्डार भी खड़ी बोली के भाण्डार से बहुत बढ़ा चढ़ा है। ब्रजभाषा के कवियों के टक्कर का एक भी कवि अभी तक खड़ी बोली में नहीं, हुआ है। किन्तु खड़ी बोली की कविता की ओर लोगों की रुचि जिस तेज़ी से बढ़ रही है, उसे देख कर यह कहना पड़ता है कि यह खड़ी बोली के किसी महाकवि के शीघ्र आविर्भूत होने की शुभ सूचना है। सैकड़ों हज़ारों सोते निकल रहे हैं, शीघ्र ही वे महानद के रूप में परिणत हो जायँगे; नन्हीं नन्हीं लकड़ियाँ प्रज्वलित हो रही हैं, शीघ्र ही किसी बड़े कुंदे में अग्नि का अवतार होने वाला है, प्रकाश फैल जायगा, दिशा उज्वल हो जायगी, फिर कोई इस बात को कभी याद भी न करेगा कि इस कुंदे के सुलगाने में कितनी चैलियों ने आत्मत्याग किया है।

ब्रजभाषा के कवियों को भाषा के सम्बन्ध में जितनी स्वतंत्रता थी, हिन्दी के कवियों को उसकी चौथाई भी नहीं। ब्रजभाषा का कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार शब्दों को तोड़ मरोड़ कर सड़क तैयार कर लेता है। आवश्यकतानुसार कंकड़ पत्थर को काट छाँट कर वह सहज मे ही उन्हें जमा देता है। उसपर उसके भावों से लदा हुआ छकड़ा आसानी से चल निकलता है। वह आनन्द को आनँद, अनंद और अनन्दा कर सकता है, तुलसीदास ने ग़रीबनेवाज़ को ग़रीबनिवाज़ू कर के पराई चीज़ को भी अपने साँचे मे ढाल लिया, खाता है को खात, गाता है को गावत और अंक को आँक, निःशंक को निसाँक, और बंक को बाँक कर सकता है। कारकों का प्रयोग भी वह मनमाना कर लिया करता है। उसे बड़ी स्वतंत्रता है, किन्तु हिन्दी-कवियो को ऐसा सौभाग्य नहीं प्राप्त है। उनके सामने बड़ा बंधन है। जो रोड़ा जैसा है, उसे वैसा ही—विना काट छाँट किये जमाना पड़ता है। उसे जरा भर भी तराश ख़राश करने का उसे अधिकार नहीं। वह आनंद को आनँद भी नहीं कर सकता, जाओगे को जावगे भी नहीं बना सकता। उसके आस पास की ज़मीन बड़ी ऊबड़ खाबड़ है। उसी में से होकर उसका सँकरा रास्ता; इससे वह अपने छकड़े पर थोड़ा थोड़ा माल लाद कर लाता है। बताइये, कैसी मुसीबत है। जितना माल ब्रजभाषा का कवि एक बार में लाता है, हिन्दी का कवि उसे चार बार में। ग्राहकों को उसके लिये बहुत देर तक इन्तज़ार करनी पड़ती है। उर्दू कवियों ने इस तकलीफ़ को समझा है, उन्होंने कुछ उद्दंडता से काम भी लिया है। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अपना नियमित मार्ग छोड़ कर इधर उधर

भी हाथ पैर फैला दिया है। वे अपना काम निकालना जानते हैं, किसी का कुछ बिगड़े इसकी उन्हें परवा नहीं। उर्दू का एक शैर सुनिये :—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आजाता है तू इसमें किधर से॥

(ज़ौक़)

इस शैर में "है", "जाने", "जाता है", और "इसमें", इन बेचारों का ढाँचा तो देखने में पूरा है, पर इनमें जान अधूरी है। "है", "ने", "ता", और "में", का रूप देखने में तो दीर्घ है, किन्तु उच्चारण में वे ह्रस्व हैं। हिन्दी वाले बेचारों को इतनी स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं। उर्दू वाले और को औ और पर को प लिखकर भी अपना भाव प्रकट कर सकते हैं, किन्तु हिन्दी में यह गुनाह माना जाता है। हिन्दी में शब्दो के रूप और उच्चारण में अंतर नहीं होना चाहिये। नियमित सँकरे रास्ते से ही चलना चाहिये; किन्तु हर एक बार माल पूरा आना चाहिये, थोड़े माल से ग्राहकों का जी नहीं भर सकता। ऐसा करने के लिये हिन्दी के कुछ कवि उर्दू वालों का ही रास्ता पकड़ना चाहते हैं, वर्तमान कवियों में इस मत के पोषक पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय कहे जा सकते हैं। दूसरा दल कहता है कि नहीं, रास्ता सँकरा है तो क्या, मर्यादा का उल्लङ्घन करना ठीक नहीं, रास्ते ही पर चलो, माल थोड़ा आवे तो ग्राहकों को उतने में ही संतुष्ट होने का अभ्यास बढ़ाना चाहिये, इस दल के मुखियों में बाबू मैथिली शरण जी गुप्त का नाम लिया जा सकता है। तीसरा एक दल और है। वह कहता है कि व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों

के रास्ते के बीच से चलो। क्रिया तो खड़ी बोली ही की रक्खो किन्तु थोड़े से ब्रजभाषा के संज्ञा शब्द और क्रिया विशेषणों को भी मिला लो। इस दल के अगुआ राय देवीप्रसाद पूर्ण और पंडित नाथूरामशंकर शर्मा हैं। पूर्ण तो अपनी मानव-लीला पूर्ण कर गये। शंकर जी उस मार्ग पर खड़े होकर लोगों को उसकी सुगमता सुझा रहे हैं। किन्तु अधिक संख्या दूसरे दल वालों की है। वे गद्य-पद्य दोनों का भाग एक करना चाहते हैं। मार्ग संकरा है, इसकी उन्हें चिंता नहीं, वे कहते हैं कि संस्कृत वालों को देखो उन्होंने मर्यादा के भीतर रहकर कैसा कमाल किया है, कैसा कठिन व्रत निभाया है, हम लोग अभी ऐसा नहीं कर सकते, इसमें रास्ते के सँकरेपन का दोष नहीं, अभी हम लोगों में प्रतिभा ही नहीं जागृत हुई। प्रतिभाशाली के लिये सीधे टेढ़े किसी रास्ते में भी रुकावट नहीं।

यह तो रास्ते की बात हुई। अब यह देखना है कि ब्रज-भाषा और हिन्दी दोनों में कैसा माल आ चुका है और अब कैसा आरहा है।

हिन्दी-कविता में प्रारम्भ से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक मुख्य चार विषयों का प्राधान्य रहा है—भक्ति, शृङ्गार, वीर और नीति। इनमे सब से बड़ा समुद्र शृङ्गार का हुआ। कितने ही कवि तो उसमें आजीवन डूबे रहे, कुछ बीच में उतराये भी तो आगे तैरने की उनमें शक्ति ही न रही, और कितने उसके किनारे ही पर नहाते धोते और खेलते रह गये।

भक्त कवियों ने अपने अनुभव की बात कही है। वे प्रेमी थे, ज्ञानी थे और सदाचारप्रिय थे। हिन्दू समाज की जीवन-शक्ति को उन्होंने बल प्रदान किया है। हिन्दुओं में जो कुछ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और सदाचार की चर्चा है, उसमें से

अधिकांश हिन्दी कवियों की सम्पत्ति है। कौन कह सकता है कि हिन्दुओं के दैनिक व्यवहार में तुलसी, सूर और कबीर की प्रेरणा नहीं है! हिन्दी का भक्ति-साहित्य, बड़ा उज्वल, बड़ा सुन्दर और बड़ा मधुर है। उसमें प्राणो को आराम, मन को आनन्द और आत्मा को शान्ति मिलती है।

वीररस की कविता हिन्दी मे अधिक नहीं। जो कुछ है, उसका सम्बन्ध हृदय से कम, शरीर से अधिक है।

नीति की कविता वीर रस की कविता से अधिक है। और समाज में उसका प्रचार भी है। हिन्दी की यह सम्पदा अवश्य देखने की चीज़ है।

शृङ्गार के विषय में मुझे कुछ अधिक कहना है, इसी से मैंने उसे सब से अंत मे चुना है। हिन्दी कवियो में शृङ्गारी कवियों की संख्या सब से अधिक है। इनमें कुछ तो बहुत उच्च कोटि के हैं, उन्होंने हृदय के सौन्दर्य पर बड़ी ललित कविता की है, भक्त कवियो ने जहाँ कहीं प्रसंगवश शृङ्गार का वर्णन किया है, उसमे विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पड़ती है। वे सदाचार की सीमा के बाहर नहीं गये हैं। किन्तु सिर से पैर तक शृङ्गार मे डूबे हुये कवियो ने सदाचार को लात मारी है। उन्होने नायक नायिका-भेद को कविता का सब से प्रधान अंग बना डाला है। नायिकाओ को पता ही नहीं, किन्तु कवियों ने उनके सैकड़ो भेद कर डाले। सब की अलग अलग भाषा, सब के अलग अलग भाव, वेष, भूषा और चाल; बिल्कुल नया संसार ही रच दिया। इस संसार में सदाचार की गंध नहीं। अभिसार स्थान की सजावट है, दूतियो की दौड़ है, वाक्यविलास है, विरह की उच्छ्वास से और बेकली है। कोकिल और पपीहो

के हज़ारों अपराध गिनाये जा रहे हैं; उन्हें लाखों गालियाँ दी जा रही हैं। उन बेचारों को इसका पता भी नहीं। विरह के वर्णन में तो और भी ग़ज़ब ढाया गया है। एक विरहिणी पार्वती की पूजा करने गई थी, जैसे ही उसने हाथ में माला लेकर पार्वती के गले में डालना चाहा; वैसे ही हाथ लगते ही माला राख हो गई, तब वह विभूति शिव जी को चढ़ाकर वह वापस आई। विरह की आँच हृदय में ही होती है; किन्तु कवियों को वहीं तक उसे रखने मे संतोष नहीं हुआ। उन्होंने हाथ मे भी उसकी दाहक शक्ति पहुंचा दी। बिहारी ने एक विरहिणी का वर्णन किया है कि:—

इत आवत चलि जाति उत, चली छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे से रहै लगी उसासनि साथ॥

अर्थात् विरह के मारे वह इतनी कमज़ोर हो गई है कि साँस लेने और छोड़ने के साथ वह छ सात हाथ इधर उधर आती जाती रहती है। साँसों के साथ हिंडोले पर चढ़ी हुई इधर से उधर झूलती रहती है।

ऐसा तो उस नायिका का हाल था। अब यह बात यहाँ समझ में नहीं आती कि जब वह हवा से भी इतनी हलकी हो गई थी तो तितली का पंख लगा कर अपने प्रियतम के पास क्यों नहीं उड़कर चली गई।

ग्वाल कवि ने एक विरहिणी का हाल ऐसा लिखा है:—

ताँदुर ले आई तिया आँगन में ठाढ़ी रही,
करके पसारबे में भात हाथ में भयो।

देखिये, ज़माना कितनी जल्दी बदल गया। ग्वाल कवि के ज़माने में गृहस्थों को कितने सुभीते थे। आजकल ऐसी

विरहिणियाँ मिलें तो होटलों में उन्हें अच्छी तनख्वाह मिल सकती है।

इस देश में जब से अंग्रेज़ी राज आया तबसे विरही-विरहिणियों की संख्या तो बढ़ गई, किन्तु पहले जैसी घटनायें अब नहीं होतीं। लाखों विरही तो रोज़ रेल पर चढ़े फिरते हैं, बीसों हजार कालेजों में भरे पड़े हैं, डाक और तार का भी पूरा प्रबन्ध है फिर भी किसी विरही के घर से यह खबर नहीं आती कि उसकी विरहिणी की आह से उसका घर जल गया या किसी कोयल या पपीहे की बोली से उसकी स्त्री मर गई। मालूम होता है, इस बला को पुराने कवि अपने साथ ही स्वर्ग ले गये।

दूसरा नम्बर नखशिख वर्णन करने वाले कवियों का है। इन्होंने नायिका के जिस अंग को छुवा है उसे अंतिम सीमा तक पहुंचा दिया है। चितवन से किसी को घायल होते सुना तो उसे वज्र और बिजली बना डाला। बीच में ज़रा सी उठी हुई नाक अच्छी लगी तो उसे इतना उठाया कि तोते की सी नाक बनाकर तब दम लिया। चाहे वे अपनी स्त्री की तोते ऐसी टेढ़ी नाक को स्वयं पसंद न करें। स्तनों की कठोरता अच्छी लगी तो उसे पहाड़ बना डाला, नायिका दबकर मर जाय तो मरे इनका क्या बिगडा! नायिका की कमर पतली होने में कुछ सुभीता समझ पड़ा तो उसके पीछे पड़ गये। संसार की पतली से पतली चीज़ें याद की गईं और कमर को उनसे भी पतली कहा गया। पतलेपन की दौड़ यहाँ तक बढ़ी कि केशवदास ने इसका अस्तित्व ही मिटा दिया। बस, अब आगे कहाँ जाओगे, जो चीज ही नहीं, उससे अधिक पतली और क्या हो सकती है। केशवदास ने कहा है:—

सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान

× × × ×

यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है ॥

चलो छुट्टी हुई। इस प्रकार के कविगण प्रतिदिन नितम्ब और स्तनों के बीच में नाभि के पास कटि देखते रहे हैं, फिर भी कहते हैं कि कटि हई नहीं। इस झुठाई का भी कुछ ठिकाना है! कल्पना के पीछे ये लोग ऐसे उड़े कि असली वस्तु ही को भूल गये। अत्युक्ति और उत्प्रेक्षा को इतना महत्व दिया कि स्वाभाविकता से ही हाथ धो बैठे।

उर्दू के सौदा कवि ने एक शैर में कहा है:—

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सबने कह कह कर।
हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखो से बह बह कर॥

यह झूठ की अंतिम सीमा है। इससे आगे कोई बढ़ नहीं सकता। एकही पिनक में चले जाते हुये इन कवियों को देखकर कोई कोई कवि इनकी दिल्लगी भी उड़ाने लगे। एक कवि कहता है:—

मास की गरेथी कुच कंचन कलस कहैं
मुख चन्द्रमा जौ असलेषमा को घर है,
दोऊ कर कमल मृनाल नाभी कूप कहैं
हाड़ ही को जंघा ताहि कहैं रंभा तर है।
हाड़ को दसन ताहि हीरा मूँगा मोती कहैं
चाम को अधर ताहि कहैं बिम्बा फर है,
एती झूठी जुगती बनावैं औ कहावैं कवि
तापर कहत हमें शारदा को वर है॥

उर्दू-कवियों की मिथ्यावादिता से मौलाना हाली भी नाराज़ हुये थे। वे कहते हैं:—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है,
अबस झूठ बकना अगर ना रवा है।
तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी खुदा है,
मुक़र्रर जहाँ नेक व बद की जज़ा है।
गुनहगार वाँ छूट जावेंगे सारे,
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे।

शृङ्गारी कवि मंडल के सब से अंतिम कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। शृङ्गार में जो कुछ कहना सुनना बाकी था, उसे उन्होंने कह कर समाप्त किया। इसके सिवाय उन्होंने कुछ और भी कहा। उसे देखकर नये कवियों ने अपना रुख बदलना प्रारंभ किया। वह रुख यहाँ तक बदला कि अब शृङ्गार का कोई नाम भी नहीं लेता। आजकल के कवि हाथ धोकर भारत के पीछे पड़ गये हैं। कोई भारत को कायर बनाता है, कोई अभागा कहता है, कोई उसे पुरानी कहानी सुनाकर उठाना चाहता है, और कोई उसकी जी भर कर भर्त्सना करता है। कविता में कुछ दम नहीं किन्तु जय जय की इतनी भरमार है कि ऐसी आशंका होती है कि इतने जय जयकार के भय से कहीं भारत यह देश छोड़ कर भाग न जाय। भारत के पीछे रो धो कर यह भेड़िया-धसान किसी और तरफ चलेगी, तब उसे भी अंतिम सीमा तक खदेड़ कर दूसरे को पकड़ेगी। हिन्दी-कवियों में यह विशेषता देखी जाती है कि वे जिधर पिल पड़े, उधर से वे तब तक नहीं मुड़ते जब तक उसमें कुछ अस्तित्व रहता है। आजकल की हिन्दी कविता शृङ्गार रस से बड़ी घृणा करते

लगी है। मेरे मित्र बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन कहते हैं कि वह कांग्रेस की समस्या हो गई है।

खड़ी बोली की कविता को सब से अधिक प्रोत्साहन पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी से मिला है। द्विवेदी जी के ही उद्योग से आज खड़ी बोली की कविता का एक रूप देखने को मिल रहा है। सरस्वती ने इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है। अब भविष्य मे बहुत आशा है कि विशुद्ध खड़ी बोली मे भी ब्रजभाषा के समान भावपूर्ण कविता होने लगेगी। अभी खड़ी बोली की कविता में भावों का चमत्कार देखने को बहुत कम मिलता है।

हिन्दी और उर्दू

उर्दू हिन्दी से कोई भिन्न भाषा नहीं, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है। इस देश में मुसलमानो के आने पर, शाहजहाँ के वक्त में हिन्दी का एक नया रूप उर्दू के नाम से स्थिर हुआ।

मुसलमानों ने बोलचाल समझने के सुभीते के लिये हिन्दी के वाक्यो मे तुर्की, अरबी और फ़ारसी के शब्द मिला दिये। उसका एक खास रूप हो गया, उसे वे उर्दू कहने लगे। यद्यपि जबतक क्रिया पद न बदले तबतक नये संज्ञा और अव्ययो के मिश्रण से कोई नई भाषा नहीं मानी जा सकती है। जैसे आजकल कालेजों में अंग्रेज़ी संज्ञा और अव्ययों से लसी हुई हिन्दी बोली जाती है। किन्तु उसे कोई नई भाषा नहीं कहता। उसी तरह अरबी फ़ारसी के थोड़े शब्दों के मिला देने से हिन्दी में से कोई नई भाषा नहीं निकल सकती। जब दोनों का व्याकरण एक है, तब भाषा भिन्न नहीं हो सकती। आग्रहवश कोई कुछ कहे तो उसका

कुछ मूल्य नहीं। द्विवेदी जी इस सम्बन्ध में "हिन्दी भाषा की उत्पत्ति" में एक स्थान पर लिखते हैं :—

'उर्दू' कोई जुदी भाषा नहीं, वह हिन्दी ही का एक भेद है। अथवा यों कहिये कि हिन्दुस्तानी की एक शाखा है। हिन्दी और उर्दू में अन्तर इतना ही है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और संस्कृत के शब्दों की उसमें अधिकता रहती है; उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है, और उसमें फ़ारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता रहती है।"

उर्दू के प्रसिद्ध हिमायती मौलाना आज़ाद उर्दू का इतिहास इस तरह लिखते हैं :—

"इतनी बात हर शख़्स जानता है कि हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है और ब्रजभाषा ख़ास हिन्दुस्तानी ज़बान है। लेकिन वह ऐसी ज़बान नहीं कि दुनिया के पर्दे पर हिन्दुस्तान के साथही आई हो। उसकी उमर ८०० बरस से ज्यादा नहीं और ब्रज का सब्ज़ःज़ार उसका वतन है।" (आबेहयात पृष्ठ ६)

हिन्दी की वर्त्तमान दशा

हिन्दी की वर्त्तमान दशा बहुत आशा-जनक है। गद्य के उत्तम उत्तम लेखक बढ़ते जा रहे हैं, तो पद्य रचयिताओं में से सुकवि भी निकलते आ रहे हैं। इस सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि हिन्दी की उन्नति इतनी तेज़ी से हो रही है कि वर्तमान काल कितने समय का कहा जाय इसी का निर्णय नहीं हो सकता।

रामनरेश त्रिपाठी

कविता-कौमुदी

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बङ्गाल के इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में थे। सेठ अमीचन्द के दोनों पुत्र राय रतनचन्द बहादुर और शाह फतहचन्द काशी मे आ बसे थे। शाह फतहचन्द के पौत्र बाबू हरखचन्द ने बहुत धन कमाकर उसका सद्-व्यय किया और बड़ी प्रसिद्धि लाभ की। बाबू हरखचन्द के पुत्र बाबू गोपालचन्द हुये, जिन्होंने हिन्दी में चालीस ग्रन्थ रचे। कविता-कौमुदी के प्रथम भाग में उनकी जीवनी प्रकाशित हुई है। उन्ही बाबू गोपालचंद के सुपुत्र बाबू हरिश्चंद्र हुये।

बाबू हरिश्चंद्र का जन्म भाद्रपद शुक्ल सप्तमी सं० १९०७ (ता० ९ सितम्बर, १८५०) में हुआ। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। जब ये ५, ६ वर्ष के थे, उस समय इनके पिता बाबू गोपालचंद्र जी बलिराम कथामृत की रचना कर रहे थे। इन्होंने उनके पास जाकर खेलते खेलते कहा "हम भी कविता बनावेंगे।" पिता ने हँस कर कहा—तुम्हें उचित तो यही है। उस समय बाणासुर का प्रसंग लिखा जा रहा था। इन्होंने तुरन्त यह दोहा बना कर पिता को दिखाया—

लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान ।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान ॥

पिता ने प्रेम-गद्गद होकर प्यारे पुत्र को गले से लगा लिया और कहा—"तू हमारे नाम को बढ़ावेगा ।"

एक दिन बाबू गोपालचंद्र की सभा में कुछ कवि लोग बैठे थे । उनके "कच्छप कथामृत" के मङ्गलाचरण के एक पद की कवि लोग व्याख्या कर रहे थे । पद यह था—"करत चहत जस चारु, कछु कछुवा भगवान को ।" बालक हरिश्चंद्र भी वहाँ आ बैठे थे । किसी ने "कछु कछुवा (उस) भगवान को," किसी ने "कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को" ऐसा अर्थ किया । हरिश्चंद्र चट बोल उठे," नहीं नहीं, बाबू जी, आपने कुछ कुछ जिस भगवान को छू लिया है, (कछुक छुवा भगवान को) उसका यश आप वर्णन करना चाहते हैं । बालक की इस नई उक्ति पर सभा के सब लोग मुग्ध हो गये और पिता ने आँखों में आँसू भर के अपने प्यारे पुत्र का मुँह चूम कर अपने भाग्य की सराहना की ।

एक दिन पिता को तर्पण करते देख ये पूछ बैठे, "बाबू जी, पानी में पानी डालने से क्या लाभ ?" यह सुन कर पिता ने माथा ठोंका और कहा—"जान पड़ता है तू कुल बोरैगा ।" समय पाकर पिता का आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही फलीभूत हुए ।

नौ वर्ष की अवस्था में ही हरिश्चंद्र जी पितृहीन हो गये । इससे इनकी स्वतंत्र प्रकृति को और भी स्वच्छन्दता मिल गई । उसी समय इनकी पढ़ाई का सिलसिला शुरू हुआ । ये कालिज में भरती किये गये । परीक्षा में ये सदा उत्तीर्ण होते

रहे। उस समय काशी के रईसो में राजा शिवप्रसाद ही अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे। ये भी कुछ दिनो तक उनके पास अंग्रेज़ी पढ़ने जाया करते थे। तीन चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम ज्यों त्यों करके चला; परन्तु सन् १८६४ में जब ये अपनी माता के साथ श्रीजगदीशजी की यात्रा को गये, उस समय से इनका पढ़ना लिखना बिल्कुल छूट गया।

यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देशहित की ओर विशेष फिरी। इनको निश्चय हो गया कि पाश्चात्य शिक्षा के बिना कुछ नहीं हो सकता। इसलिये इन्होंने स्वयं पठित विषयों का अभ्यास प्रारम्भ किया और अपने घर पर एक स्कूल भी खोल दिया, जिसमें महल्ले के लड़के आकर पढ़ने लगे। यही स्कूल उन्नति करते करते आज "हरिश्चंद्र हाई स्कूल" के नाम से शिक्षा का विस्तार कर रहा है। सन् १८६८ में इन्होंने "कविवचन सुधा" नामक मासिक पत्र निकाला, जिसमें नये पुराने सब हिन्दी कवियों के अप्रकाशित ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे। कुछ समय के उपरान्त "कविवचन सुधा" को इन्होंने पाक्षिक और साप्ताहिक कर दिया। उस समय उसमें केवल पद्य ही नहीं, बल्कि राजनीति तथा समाज- सुधार-विषयक गद्य लेख भी निकलते थे।

सन् १८७० में ये आनरेरी मेजिस्ट्रेट बनाये गये। किन्तु कुछ दिनो के बाद इन्होंने स्वयं इस पद को छोड़ दिया। सन् १८७३ में इन्होंने "हरिश्चंद्र मेगजीन" भी निकालना प्रारम्भ किया, किन्तु वह केवल आठ ही अंक निकल कर बन्द हो गया। १८७३ में ये खूब परिमार्जित भाषा में गद्य पद्य लेख लिखने लग गये थे। इसी वर्ष इन्होंने "पेनीरीडिंग" नामक समाज स्थापित किया था। जिसमें भद्र लोग स्वयं विविध

विषयों के अच्छे अच्छे लेख लिखकर लाते और पढ़ते थे। इसी समय "कर्पूरमंजरी," "सत्य हरिश्चन्द्र," और "चन्द्रावली" की रचना हुई। १८७३ में इन्होंने "तदीय समाज" नाम की सभा स्थापित की। जिसमें प्रेम और धर्मसम्बन्धी विषयों पर विचार हुआ करता था। दिल्ली दरबार के समय इस समाज ने गोरक्षा के लिये एक लाख प्रजा के हस्ताक्षर करवाये थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बड़े उदार पुरुष थे। कितने ही लोगों को पुरस्कार दे देकर इन्होंने कवि और सुलेखक बना दिया। वे सौन्दर्य के वड़े प्रेमी थे। गाने बजाने, चित्रकारी, पुस्तक संग्रह, अद्भुत पदार्थों का संग्रह, सुगंध संग्रह, उत्तम कपड़े, खिलौने, पुरातत्व की वस्तु, लैम्प, अलबम, फोटोग्राफ आदि सभी प्रकार की वस्तुओं से इनको बड़ा शौक था। इनके पास कोई गुणी आ जाता तो वह विमुख कभी नहीं फिरता था। बीस बाईस वर्ष में इन्होंने अपने तीन चार लाख रुपये खर्च कर डाले। कवि परमानन्द को "विहारी सतसई" का संस्कृत अनुवाद करने पर ५००) पारितोषिक दिया था। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी को निम्न-लिखित एक दोहे पर १००) और अंग्रेज़ी रीति पर अपनी जन्मपत्री बनवाकर ५००) दिये थे:—

राजघाट पर बँधत पुल, जहँ कुलीन की ढेर।
आज गये कल देख के, आजहि लौटे फेर॥

उदारता से ही अंत में ये ऋणग्रस्त हो गये।

हिन्दी को राजभाषा बनाने का हरिश्चन्द्र ने ही पहले पहल उद्योग किया था। अपनी कौतुक-प्रियता के कारण

"लेवी प्राण लेवी" और मर्सिया लिखकर ये गवर्नमेंट की कोपदृष्टि में भी पड़े थे, किन्तु इन्होंने किसी की कुछ परवा नहीं की। अपने अटल प्रेम और आनन्द में ये मस्त रहे।

हिन्दी के प्रचार में बाबू साहब ने बड़ा उद्योग किया। हिन्दी इनकी चिरऋणी रहेगी। हिन्दी के समस्त समाचार पत्रों ने १८८० में इन्हें भारतेन्दु की पदवी से विभूषित किया था। इस उपाधि का आदर राजा और प्रजा दोनों ने किया।

सब से पहली सवैया इन्होंने यह बनाई थी:—

यह सावन सोक नसावन है मनभावन यामैं न लाजैं भरो।
जमुना पै चलौ सु सबै मिलिकै अरु गाइ बजाइ कै सोक हरो॥
इमि भाषत हैं हरिचंद प्रिया अहो लाड़िली देर न या में करो।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको यहि पावैं पतिव्रत ताखैं धरो॥

भारतेन्दु आशु कवि थे। बातें करते जाते थे, कविता रचते जाते थे। अन्धेर-नगरी एक ही दिन में लिखी गई, विजयिनी-विजय-वैजयन्ती भी एक ही दिन की रचना है। स्वरचित ग्रन्थों में इन्हें ये ग्रन्थ बहुत पसन्द थे–प्रेम फुलवारी, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, तदीय सर्वस्व, काश्मीर कुसुम, भारत दुर्दशा।

इनके लिखे सम्पूर्ण ग्रन्थों के नाम निम्नलिखित हैं:—

नाटक

प्रवास (अपूर्ण, अप्रकाशित), सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, विद्यासुन्दर, धनञ्जय विजय, चन्द्रावली, कर्पूर मंजरी, नील-देवी, भारत दुर्दशा, भारत जननी, पाषण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम्, प्रेम योगिनी (अपूर्ण), दुर्लभबन्धु (अपूर्ण), सती प्रताप

(अपूर्ण), नव मल्लिका (अपूर्ण, अप्रकाशित), रत्नावली (अपूर्ण), मृच्छकटिक (अपूर्ण, अप्रकाशित, अप्राप्य)।

आख्यायिका, उपन्यास

रामलीला, हमीरहठ (अपूर्ण, अप्रकाशित), राजसिंह (अपूर्ण), कुछ आप बीती कुछ जग बीती (अपूर्ण), सुलोचना, मदालसोपाख्यान, शीलवती, सावित्री चरित्र ।

काव्य

गीत गोविन्दानन्द (गाने के पद्य), प्रेम माधुरी (शृङ्गाररस के कवित्त सवैया), प्रेम फुलवारी (गाने के पद्य), प्रेम मालिका (गाने), प्रेम प्रलाप (गाने), प्रेम तरङ्ग (गाने), मधुमुकुल (गाने), होली, मानलीला, दानलीला, देवी छद्मलीला, कार्तिक स्नान, विनय पचासा, प्रेमाश्रु वर्षण, प्रेम सरोवर (दोहे) फूलों का गुच्छा (लावनी), जैन कुतूहल, सतसई शृङ्गार (बिहारी सतसई पर कुण्डलियां), नये ज़माने की मुकरी, विनोदिनी (बङ्गला), वर्षा विनोद (गाने), प्रात समीरन, कृष्ण चरित्र, उरहना, तन्मय लीला, रानी छद्मलीला, चित्र काव्य, होली लीला ।

स्तोत्र

श्री सीता वल्लभ स्तोत्र (संस्कृत), भीष्मस्तवराज, सर्वोत्तम स्तोत्र, प्रातस्मरण मङ्गल पाठ, स्वरूप चिन्तन, प्रबोधिनी, श्रीनाथाष्टक ।

अनुवाद

नारदसूत्र, भक्ति सूत्र वैजयन्ती, तदीय सर्वस्व, अष्टपदी

का भावार्थ, श्रुति रहस्य, कुरान शरीफ का अनुवाद (अपूर्ण), श्री वल्लभाचार्य कृत चतुश्श्लोकी, प्रेम सूत्र (अपूर्ण)

परिहास

पाँचवें पैगम्बर, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, सर्वजाति गोपाल की, वसन्त पूजा, वेश्या स्तोत्र (पद्य), अंगरेज़ स्तोत्र (गद्य), मदिरास्तवराज, कंकड़ स्तोत्र, बकरी विलाप (पद्य), स्त्री दण्ड संग्रह, परिहासिनी, फूल बुझौवल, मुशाइरा, स्त्री सेवा पद्धति, रुद्री का भावार्थ, उर्दू का स्यापा, मेला झमेला, बन्दर सभा ।

धर्म, इतिहास आदि

भक्त सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, युगल सर्वस्व, पुराणोपक्रमणिका, उत्तरार्द्ध भक्तमाल, भारतवर्ष और वैष्णवता ।

माहात्म्य

गो महिमा, कार्तिक कर्म विधि, वैशाख स्नान विधि, माघ स्नान विधि, पुरुषोत्तम मास विधि, मार्गशीर्ष महिमा, उत्सवावली, श्रावण कृत्य ।

ऐतिहासिक

काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण, महाराष्ट्र देश का इतिहास, उदयपुरोदय, बूंदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति, खत्रियों की उत्पत्ति, पुरावृत्त संग्रह, पञ्च पवित्रात्मा, रामायण का समय, श्री रामानुज स्वामी का जीवनचरित्र, जयदेव जी का जीवनचरित्र, सूरदास जी का जीवन चरित्र, कालिदास का जीवन चरित्र, विक्रम और विल्हण, काष्ठ-

जिह्वा स्वामी, पण्डित राजाराम शास्त्री, श्री शङ्कराचार्य, श्री वल्लभाचार्य, नैपोलियन, जज द्वारकानाथ मित्र, लार्ड म्यो, लार्ड लारेंस, जार, कालचक्र, सीतावट निर्णय, दिल्ली दर्बार दर्पण।

राजभक्ति

भारत वीरत्व, भारत भिक्षा, मुँह दिखावनी, मानसोपायन, मनोमुकुल माला, डुड्सा विवाह, राजकुमार विवाह वर्णन, विजयिनी विजय वैजयन्ती, सुमनोञ्जलि, रिपनाष्टक विजय वल्लरी, जातीय संगीत, राजकुमार सुस्वागत पत्र।

स्फुट ग्रन्थ, लेख, व्याख्यान, यात्रा आदि

नाटक, हिन्दी भाषा, संगीतसार, कृष्णपाक, हिन्दी व्याकरण, शिक्षा कमीशन में साक्षी, तहक़ीक़ात पुरी की तहक़ीक़ात, प्रशस्ति संग्रह, प्रतिमा पूजन विचार, रस रत्नाकर, खुशी, हिन्दी, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, मेवाड़ यात्रा, जनकपुर यात्रा सरयूपार की यात्रा, वैद्यनाथ यात्रा, भूगोल सम्बन्धी बातें, भंडरी, वर्षमालिका, मध्यान्ह सारिणी, मूक प्रशस्ति, वृत्त संग्रह, राजा जन्मेजय का दानपत्र, मङ्गलीश्वर का दानपत्र, मणिकर्णिका, काशी, पम्पासर का दानपत्र, कन्नौज, नागमङ्गला का दानपत्र, चित्रकूटस्थ रमाकुण्ड प्रशस्ति, गोविन्ददेव जी के मन्दिर की प्रशस्ति, प्राचीनकाल का सम्वत निर्णय, शिवपुर का द्रौपदी कुण्ड, भ्रूणहत्या, हाँ हम मूर्तिपूजक हैं, दुर्जन चपेटिका, ईशूखृष्ट और ईश कृष्ण, शब्द में प्रेरक शक्ति, भक्ति ज्ञानादिक से क्यों बड़ी है? पबलिक ओपिनियन, बङ्गभाषा की कविता, विनय पत्र, कुरान दर्शन, इन्द्रजाल, चतुरङ्ग, लाजवन्ती, पतिव्रत, कुलवधूजनों को चितावनी, स्त्री, वर्षा.

सती चरित्र ? रामसीता सम्वाद ? बसन्त और कोकिला ? सरस्वती और सुमति का सम्वाद ? लवली और मालती सम्वाद ? प्रेम पथिक ? (? चिन्ह वाले लेख सन्दिग्ध हैं, वे हरिश्चन्द्र ही के लिखे हैं वा दूसरों के), मित्रता, अपव्यय, किसका शत्रु कौन है ? भूकम्प, नौकरों को शिक्षा, बुरी रीतें, सूर्य्योदय, आशा, लाख लाख बात की एक बात, बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धान्त, भगवत् स्तुति, अङ्कमय ,जगत् वर्णन, ईश्वर के वर्तमान होने के विषय में, इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष, वज्राघात से मृत्यु, त्यौहार, होली, बसन्त, लेवी प्राण लेवी, मर्सिया ।

सम्पादित, संगृहीत

सुन्दरी तिलक, राधासुधा शतक, सुजानशतक, कवि हृदय सुधाकर, चमनिस्ताने हमेशा बहार चार भाग, गुलज़ारे पुर बहार, जरासन्ध वध महाकाव्य, भागवत शङ्का निरासवाद, मलारावली, श्रृङ्गार सप्तशती, भाषा व्याकरण (पद्य), इत्यादि ऐसे सम्पादित और संगृहीत पुस्तकों की संख्या ७५ है ।

भारतेन्दु जी बड़े रसिक और प्रेमी जीव थे । जिस समय ये प्रेमावेश में होते थे, इन्हें अपने शरीर की सुध न रहती थी । भगवान् श्री कृष्ण के ये अनन्य भक्त थे । ये प्रायः कहा करते थे :—

श्री राधा माधव युगल प्रेम रस का अपने को मस्त बना ।
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ॥
इतबार न हो तो देख न ले क्या हरिश्चंद्र का हाल हुआ ।
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ॥

सांसारिक भोग विलास में फँसे रहने पर भी ये अपने को भूले न थे। एक स्थान पर ये कहते हैं:--

जगत जाल में नित बँध्यो, पर्‌यो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित, झूठो कवि हरिचंद॥

"प्रेम-जोगिनी" में सूत्रधार के मुँह से कहलाते हैं—

"कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारतेन्दु जी का यह कथन अक्षरशः सत्य हुआ।

अपने विषय में वे अभिमानपूर्वक कहा करते थे:--

चन्द टरै सूरज टरै, टरैं जगत के नेम।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न अविचल प्रेम॥

मेवाड़नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर बड़ा स्नेह था। उनसे मिलने के लिये ये सन् १८८२ में उदयपुर गये, वहाँ से लौटने पर बीमार हो गये। बीमारी की हालत में भी इनका लिखना पढ़ना न छूटा। शरीर क्षीण होने लगा, क्षय का रोग होगया, मरने से महीना डेढ़ महीना पहले इनका हृदय शांति रस की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ था। १८८५ की दूसरी जनवरी को इन्हें एकायक भयानक ज्वर आया। तीसरे दिन खाँसी का प्रकोप हुआ। ६ जनवरी को सवेरे तबीयत बहुत ठीक रही। अन्तपुरः से दासी स्वास्थ्य का समाचार पूछने आई। इन्होंने हँस कर कहा :—

"हमारे जीवन-नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है, पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है।"

उसी दिन दोपहर को स्वास्थ्य फिर खराब हो चला। धीरे धीरे रात के नौ बजे का समय आ पहुँचा। ये यकायक पुकार उठे—"श्री कृष्ण! राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं, मुख दिखलाओ।" कंठ कुछ रुकने लगा, एक दोहा सा कहा, जो साफ़ साफ़ सुना नहीं गया। बस, पौने दस बजे भारतेन्दु अस्त हो गया। इनकी मृत्यु से भारतवर्ष भर के विद्वान् बहुत दुःखी हुये थे। सारे देश में शोक सभायें हुईं, अँग्रेज़ी, उर्दू, बँगला, गुजराती, मराठी आदि सब भाषाओं के पत्रों ने बड़ा शोक प्रकट किया। हिन्दी पत्रों ने तो महीनों शोक चिन्ह धारण किया।

भारतेन्दु अपने समय के एक सर्वप्रिय विद्वान् और सुकवि थे। इनकी सबसे अंतिम रचना यह पद है :—

डङ्का कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पंथी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलनाही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचंद हरिपद बिनु नहिं तौ रहि जैहो मुँह बाई॥

नीचे हम भारतेन्दु के काव्यग्रन्थों से कुछ ललित रचनाओं का नमूना उद्धृत करते हैं :—

[१]

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मन-द्रवित सुधारस।

ब्रह्म कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरवस ॥
शिव सिर मालनि माल भगीरथ नृपति पुण्य फल ।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल ॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जलमात उधारन ।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई ।
सपने हूं नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बँधे नव-घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत ।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत ।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि वदन करन अतिही छवि पावत ।
वारिधि नाते ससि-कलङ्क मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
कमल वेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहं जात रहत तितहीं ठहराई ।
गङ्गा-छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

[२]

प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले ॥
दसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो ॥

तुव जस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ ।
अति सुख पाइ असीस देत कोइ करि अँगुरिन चट अलियाँ॥
भये धरम में थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द, जन चक्रवाक अनुरागे ॥
मरव सरिस उपहार लिये नृप ठाढे तिनकहँ तोखौ ।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ ॥

[३]

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यो ।
सोई अँग जेहि प्रिय करि जान्यौ ॥
सोई भुज जो प्रिय गर डारें ।
सोइ भुज जिन नर विक्रम पारें ॥
सोई पद जिहि सेवक वन्दत ।
सोई छवि जेहि देखि अनन्दत ॥
सोइ रसना जहँ अमृत बानी ।
जेहि सुनि के हिय नारि जुड़ानी ॥
सोई हृदय जहँ भाव अनेका ।
सोई सिर जहँ निज बच टेका ॥
सोई छवि-मय अंग सुहाये ।
आजु जीव बिनु धरनि सुहाये ॥
कहाँ गई वह सुन्दर सोभा ।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ॥
प्रानहु ते बढ़ि जा कहँ चाहत ।
ताकहँ आजु सबै मिलि दाहत ॥
फूल बोझ हू जिन न सहारे ।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे ॥

सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी ।
करत कपाल क्रिया तिन केरी ॥
छिनहूँ जे न भये कहुँ न्यारे ।
तेऊ बन्धु मन छोड़ि सिधारे ॥
जो द्रुगकोर महीप निहारत ।
आजु काक तेहि भोज विचारत ॥
भुज बल जे नहिं भुवन समाये ।
ते लखियत मुख कफन छिपाये ॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे ।
गनै काल सब एकहि लेखे ॥
सुभग कुरूप अमृत विख साने ।
आजु सबै इक भाव बिकाने ॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं ।
रहे नाँवहीं ग्रन्थन माँहीं ॥

[४]

रुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी ।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी ॥
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव ।
गिद्ध-गरुड़-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव ॥
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूँकि डरपावई ।
सँग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई ॥

[५]

सहत विविध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग ।
पै निज सत्य न छाड़हीं, जे जग साँचे लोग ॥

वरु सूरज पच्छिम उगै, विन्ध्य तरै जल माहिं ।
सत्य वीर जन पै कबहुँ, निज वच टारत नाहिं ॥

[६]

जय जय जगदीस राम, श्याम धाम पूर्ण काम, आनन्द घन ब्रह्म विष्णु, सत्‌चित सुखकारी । कंस रावनादि काल, सतत प्रनत भक्तपाल, सोभित गल मुक्तमाल, दीनताप-हारी ॥ प्रेम भरण पापहरन, असरन जन सरन चरन, सुखहि करन दुखहि दरन, वृन्दावनचारी । रमावास जग निवास राम रमन समन त्रास, विनवत हरिचंद दास, जय जय गिरिधारी ॥

[७]

जिनके हितकारक पंडित हैं तिनकों कहा सत्रुन को डर है ।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग विदेस मनो घर है ॥
जिन मित्रता राखी है लायक सों तिनकों तिनकाहू महा सर है ।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिनकी जय ही सब ही थर है ॥

[८]

जगत मैं घर की फूट बुरी । घर के फूटहि सों बिनसाई सुवरन लंकपुरी ॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो । जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहिं पुजयो ॥ फूटहि सों जयचन्द बुलायो जवनन भारत धाम । जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥ फूटहि सों नवनन्द विनासे गयो मगध को राज । चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज ॥ जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय । तो अपुने घर मैं भूले हू फूट करौ मति कोय ॥

[९]

करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछतैहौ रे भाई । अन्त दगा खैहौ सिर धुनिहौ रहिहौ सबै गँवाई ॥ मूरख जो कछु

हितहु करै तो तामैं अंत बुराई। उलटो उलटो काज करत सब दैहै अन्त नसाई॥ लाख करौ हित मूरख सों पै ताहि न कछु समझाई। अन्त बुराई सिर पै ऐहै रहि जैहौ मुँह वाई॥ फिर पछितैहौ रे भाई॥

[१०]

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै न सज्जन नेहु कवौं विचलै।
धन संपति सर्वस गेहु नसौ नहिं प्रेम की मेंड़ सों एंड़ टलै॥
सतवादिन कों तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै।
निज मीत की प्रीति प्रतीत रहौ इक और सबै जग जाउ भलै॥

[११]

विचक्षणा।—गोरे तन कुमकुम सुरंग, प्रथम न्हवाई बाल।
राजा।—सो तो जनु कंचन तप्यो, होत पीत सों लाल॥
विच०।—इन्द्रनीलमणि पैंजनी, ताहि दई पहिराय।
राजा।—कमल कली जुग घेरि कै, अलि मनु बैठे आय॥
विच०।—सजी हरित सारी सरिस, जुगुल जंघ दृहँ घेरि।
राजा।—सो मनु कदली पात निज, खंभन लपट्यो फेरि॥
विच०।—पहिराई मनि किंकिनी, छीन सुकटि तट लाय।
राजा।—सो सिंगार मंडप बँधी, वंदनमाल सुहाय॥
विच०।—गोरे कर कारी चुरी, चुनि पहिराई हाथ।
राजा।—सो साँपिन लपटी मनहुँ, चंदन साखा साथ॥
विच०।—निज कर सों बाँधन लगी, चोली तब वह बाल।
राजा।—सो मनु खींचत तीर भट, तरकस ते तेहि काल॥
विच०।—लाल कंचुकी मैं उगे, जोवन जुगुल लखात।
राजा।—सो मानिक संपुट बने, मन चोरी हित गात॥
विच०।—बड़े बड़े मुक्तान सों, गल अति सोभा देत।
राजा।—तारागन आये मनौं, निज पति ससि के हेत॥

विच०।—करनफूल जुग करन मे, अति ही करत प्रकास।
राजा।—मनु ससि लै द्वै कुमुदिनी, वैठ्यो उतरि अकास॥
विच०।—वाला के जुग कान मे, वाला सोभा देत।
राजा।—स्रवत अमृत ससि दुहुँ तरफ, पियत मकर करि हेत॥
विच०।—जिअ रञ्जन खंजन दृगनि, अञ्जन दियो वनाय।
राजा।—मनहुँ सान फेरो मदन, जुगुल वान निज लाय॥
विच०।—चोटी गुथि पाटी सरस, करिकै बाँधे केस।
राजा।—मनहुँ सिंगार एकत्र है, बँध्यो वार के वेस॥
विच०।—वहुरि उढ़ाई ओढ़नी, अतर सुवास वसाय।
राजा।—फूललता लपटी किरिन, रवि ससि की मनु आय॥
विच०।—एहि विधि सो भूपित करी, भूषण वसन वनाय।
राजा।—काम वाग झालरि लई, मनु वसन्त ऋतु पाय॥

(कर्पूर मंजरी से)

[१२]

परम-प्रेम-निधि रसिकवर, अति उदार गुन-खान।
जग-जन रंजन आशु कवि, को हरिचन्द समान॥
जिन श्री गिरधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचन्द को, को न नवावै सीस॥
जग जिन तृन-सम करि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नाँव॥

[१३]

लगौहीं चितवनि औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति॥
घूँघट मैं नहि थिरत तनिक हूँ अति ललचौहीं वानि।
छिपत न कैसहु प्रीति निगोड़ी अन्त जात सब जानि॥

[१४]

हौं तो याही सोच मैं विचारत रही री काहें
दरपन हाथ ते न छिन विसरत है॥
त्यौंहीं हरिचन्द जू वियोग औ सँयोग दोऊ
एक से तिहारे कछु लखि न परत है॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात
तू तौ परम पुनीत प्रेमपथ विचरत है॥
तेरे नैन मूरति पियारे की वसति ताहि
आरसी मैं रैन दिन देखिबो करत है॥

[१५]

इन दुखियान कों न सुख सपने हूँ मिल्यो
योंहीं सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी॥
प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औध जो पै
जैहै प्रान तऊ ये तो साथ न समायँगी॥
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहिं याते
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी॥
बिना प्रान प्यारे भये दरस तिहारे हाय
देखि लीजौ आँखैं ये खुली ही रहि जायँगी॥

[१६]

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहु सुहाये॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निजनिज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥१॥

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन ।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत निज सोभा ।
कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ॥
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥ २ ॥
कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
कै व्रज तियगन वदन कमल की झलकत झाईं ।
कै व्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ व्रजमण्डल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥३॥
तिन पैं जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छवि इक सी नभ तीर की ॥४॥
परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जलमधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो ॥
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जल-उर हरि मूरति बसति वा प्रीतिबिम्ब लखात है ॥५॥
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ॥

मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥
कै वाल गुड़ी नभ मै उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ॥ ६ ॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि वैठत कसरत करत ॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ वसत कहूँ वक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविधि पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥
कहूँ वालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये ।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु वगराये ॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी श्याम नीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं ब्रजनिवास लखि हिय हरसि ॥९॥

[१७]

तू केहि चितवति चकित मृगी सी ।
केहि ढूँढ़त तेरो कहा खोयो क्यों अकुलाति लखाति ठगीसी ।

तन सुधि करु उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी।
उतर न देत जकी सी बैठी मद पीया कै रैन जगी सी॥
चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगी सी।
भूल वैखरी मृगछौनी ज्यौ निज दल तजि कहुँ दूर भगी सी॥
करति न लाज हाट घर वर की कुल मरजादा जाति डगी सी।
हरीचन्द ऐसिहि उरझी तौ क्यों नहिं डोलत संग लगी सी॥

[१८]

जहाँ विसेसर सोमनाथ माधव के मन्दर।
तहँ महजिद बन गई होत अब अल्ला अकबर॥
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे वर।
तहँ अब रोअत सिवा चहूँ दिशि लखियत खँडहर॥
जहँ धन विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही विधि बेबसी अब तो चेतौ वीर बर॥

[१९]

कहँ गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै थिर॥
कहँ छत्री सब मरे बिनसि सब गये किते गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर॥
कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग।
उठि अजौं न मेरे वत्सगन, रच्छहिं अपुनो आर्य मग॥

[२०]

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ध्रुव॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥

सब के पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सब के पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ १॥
जहँ भये शाक्य हरिचन्द रु नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती॥
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ २॥
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी॥
भय अन्ध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ३॥
अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख़ारी॥
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ४॥

[२१]

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहिं घुसाये।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाये॥

जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो ।
खान पान सम्बन्ध सबनसों बरजि छुड़ायो
जन्मपत्र विधि मिले व्याह नहिं होन देत अब ।
बालकपन में व्याहि प्रीति बल नास कियो सब ॥
करि कुलीन के बहुत व्याह बल बीरज मास्यो ।
विधवा व्याह निषेध कियो विभिचार प्रचास्यो॥
रोकि विलायत गमन कूपमण्डूक बनायो ।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो ॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई ।
ईश्वर सो सब विमुख किये हिन्दू घबराई ॥

[२२]

जागो जागो रे भाई।
सोअत निसि बैस गँवाई । जागो जागो रे भाई ॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यौ काल राति चलि आई ॥
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई ।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ॥
अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई ।
फिर पछिताये कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुँह बाई ॥

[२३]

सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन ।
नैनन के तारे दुलारे मेरे वारे,
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन ।
भई आधीरात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हलन ॥ सोओ० ॥

झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सीरी पवन चलन ॥ सोओ॰
सोये जग के सब नींद घोर,
जागत कामी चिंतित चकोर,
बिरहिन बिरही पाहरू चोर,
इन कहँ छन रैनहुँ हाय कल न ॥ सोओ॰

[२४]

प्यारी बिन कटत न कारी रैन।
पल छिन न परत जिय हाय चैन ॥
तन पीर बड़ी सब छुट्यो धीर,
कहि आवत नहिं कछु मुखहु बैन ॥
जिय तड़फड़ात सब जरत गात,
टप टप टपकत दुख भरे नैन ॥
परदेस परे तजि देस हाय,
दुख मेटनहारो कोउ है न ॥
सजि बिरह सैन यह जगत जैन,
मारत मरोरि मोहि पापी मैन ॥

[२५]

सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु बीर वर भारत की सब आसा ॥ ध्रुव
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वै है।
सो दिन फिर इत अब सपनेहू नहिँ ऐहै ॥
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै ॥

दुख ही दुख करिहैं चारहु ओर प्रकासा।
अब तजहु बीर वर भारत की सब आसा ॥१॥
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करि है।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै।
वीरता एकता ममता दूर सिधरिहैं।
तजि उद्यम सबही दासवृत्ति अनुसरिहै॥
ह्वै जैहैं चारहु बरन शूद्र बनि दासा।
अब तजहु बीर वर भारत की सब आसा ॥२॥
ह्वैहैं इतके सब भूत पिशाच उपासी।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयंप्रकासी॥
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी।
निज हरि सो ह्वैहैं विमुख भरत भुववासी॥
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ बिलासा।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥३॥
अपनी वस्तुन कहं लखिहैं सबहिँ पराई।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई॥
तुरकन हित करिहैं हिन्दू संग लराई।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई॥
तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ॥४॥
रहे हमहु कबहु स्वाधीन आर्य बलधारी।
यह दैहैं जियसों सबही बात बिसारी॥
हरि विमुख धरम बिनु धन बलहीन दुखारी।
आलसी मन्द तन छीन छुधित संसारी॥
सुख सों सहिहैं सिर यवनपादुका त्रासा।
अब तजहु बीर वर भारत की सब आसा ॥४॥

[२६]

चलहु वीर उठि तुरत सवै जय ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रनरंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रन कंकन बाँधौ॥
जौं आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृह कलहहिं अपनो कुल मरजाद विचारैं॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी॥
पदतल इन कहँ दलहु कीट तिन सरिस जवन चय।
तनिकहु संक न करहु धर्म्म जित जय तित निश्चय॥
आर्य्यवंश को वधन पुन्य जा अधम धर्म्म मैं।
गोभक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जासु कर्म्म मैं॥
तिनको तुरितहिं हतौ मिलैं रन कै घर माहीं।
इन दुष्टन सों पाप किएहू पुन्य सदाहीं॥
चिउँटिहु पदतल दवे डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक।
ये प्रतक्ष अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक॥
धिक तिन कहँ जे आर्य्य होइ जवनन को चाहैं।
धिक तिन कहँ जे इनसों कछु सम्बन्ध निबाहैं॥
उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कहौ धौसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य सुजस बन्दी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बन्दूक चलावैं॥

चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर ॥
छन महँ नासहिं आर्य नीच जवनन कहं करि छय ।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय ॥

[२७]

चूरन अमल वेद का भारी । जिसको खाते कृष्ण मुरारी ॥
मेरा पाचक है पचलोना । जिसको खाता श्याम सलोना ॥
चूरन बना मसालेदार । जिसमें खट्टे की बहार ॥
मेरा चूरन जो कोइ खाय । मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय ॥
हिन्दू चूरन इसका नाम । विलायत पूरन इसका काम ॥
चूरन जबसे हिन्द में आया । इसका धन बल सभी घटाया ॥
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा । कीना दाँत सभी का खट्टा ॥
चूरन चला डाल की मंडी । इसको खायेंगी सब रंडी ॥
चूरन अमले सब जो खावैं । दूनी रुशवत तुरत पचावैं ॥
चूरन नाटकवाले खाते । इसकी नक़ल पचा कर लाते ॥
चूरन सभी महाजन खाते । जिससे जमा हजम कर जाते ॥
चूरन खाते लाला लोग । जिनको अकिल अजीरन रोग ॥
चूरन खावैं एडिटर जात । जिनके पेट पचै नहिं बात ॥
चूरन साहेब लोग जो खाता । सारा हिन्द हजम कर जाता ॥
चूरन पूलिसवाले खाते । सब क़ानून हजम कर जाते ।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर ।

[२८]

जग में पतिव्रत सम नहिं आन ।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान ॥
अनुसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान ।
पतिदेवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ॥

धन्य देस कुल जहँ निवसत हैं नारी सती सुजान ।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान ॥
सब समर्थ पतिवरता नारी इन सम और न आन ।
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान ॥

[२६]

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होइ ॥
श्याम हरित दुति होइ, परै जा तन की झाईं ।
पाँय पलोटत लाल, लखत साँवरे कन्हाईं ॥
श्रीहरिचन्द वियोग, पीतपटमिलि दुति हेरी ।
नित हरि जा रँग रँगे, हरौ बाधा सोइ मेरी ॥१॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात ।
मनौं नील मनि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात ॥
आतप पर्‌यो प्रभात, किधौं बिजुरी घन लपटी ।
जरद चमेली तरु तमाल, मैं सोभित सपटी ॥
प्रिया रूप अनुरूप, जानि हरिचन्द विमोहत ।
स्याम सलोने गात, पीत पट ओढे सोहत ॥२॥
इन दुखियाँ अँखियान कों, सुख सिरजोई नाहिं ।
देखे बनै न देखते, विनु देखे अकुलाहिं ॥
विनु देखे अकुलाहिं, बावरी ह्वै ह्वै रोवैं ।
उघरी उघरी फिरैं, लाज तजि सब सुख खोवैं ॥
देखे श्री हरिचन्द, नयन भरि लखैं न सखियाँ ।
कठिन प्रेम गति रहत, सदा दुखिया ये अँखियाँ ॥३॥

(सतसई शृङ्गार से)

[३०]

भई सखि ये अँखियाँ बिगरैल ।
बिगरि परी मानत नहिं देखे बिना साँवरो छैल ॥
भईं पतवार धरन पग डगमग नहिं सूझत कुल गैल ।
तजि कै लाज साज गुरुजन को हरि की भईं रखैल ॥
निज चवाव सुनि औरहु हरखत करत न कछु मन मैल ।
हरीचन्द सब संक छाड़ि कै करहिं रूप की सैल ॥

[३१]

राधे तुव सोहाग की छाया जग में भयो सोहाग ।
तेरो ही अनुराग छटा हरि सृष्टि करन अनुराग ॥
सत चित तुव कृति सों बिलगाने लीला प्रिय जन भाग ।
पुनि हरिचन्द अनन्द होत लहि तुव पद पदुम पराग ॥

[३२]

पियारे याको नाँव नियाव ।
जो तोहि भजै ताहि नहिं भजनो कीनो भलो बनाव ॥
बिनु कछु किये जानि अपनो जन दूनो दुख तेहि देनो ।
भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो ॥
हरीचन्द यह भलौ निवेरयो ह्वै के अंतरजामी ।
चोरन छाड़ि छाड़ि कै डाँड़ौ उलटो धन के स्वामी ॥

[३३]

भरोसो रीझन ही लखि भारी ।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी ॥
जो ऐसो सुभाव नहिं हो तो क्यों अहीर कुल भायो ।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा हार धरायो ॥

क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धास्यो
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यों स्वाद बिसास्यो ॥
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस ।
जग निन्दत हरिचन्द हु को अपनावहिंगे करि दास ॥

[३४]

सम्हारहु अपने को गिरधारी ।
मोर मुकुट सिर पाग पेंच कसि राखहु अलक सँवारी ॥
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी ।
चक्रादिकन सान दै राखो कंकन फँसन निवारी ॥
नूपुर लेहु चढ़ाय किंकिनी खीचहु करहु तयारी ।
पियरो पट परिकर कटि कसि कै बाँधौ हो बनवारी ॥
हम नाहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीनों तारी ।
बानो जुगओ नीके अब की हरीचन्द की बारी ॥

[३५]

रहै क्यों एक म्यान असि दोय ।
जिन नैनन में हरि रस छायो तेहि क्यों भावै कोय ॥
जा तन मन मैं रमि रहे मोहन तहाँ ज्ञान क्यों आवै ।
चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्याँ को जो पतियावै ॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै ।
हरीचन्द ब्रज तो कदलीबन काटौ तो फिरि फूलै ॥

[३६]

चमकसे बर्क की उस बर्कवस की याद आई है ।
घुटा है दम, घटी है जाँ, घटा जलसे ये छाई है ॥
कौन सुनै कासों कहो, सुरति बिसारी नाह ।
बदा बदी जिय लेत हैं, ए बदरा बदराह ॥

बहुत इन ज़ालिमों ने आह अब आफ़त उठाई है।
अहो पथिक कहियो इती, गिरधारी सों टेर।
दृग झरलाई राधिका, अब बूड़त व्रज फेर॥
बचाओ जल्द इस सैलाब से प्यारे दुहाई है।
विहरत बीतत श्याम सँग, जो पावस की रात।
सो अब बीतत दुख करत, रोअत पछरा खात॥
कहाँ तो वह करम था अब कहाँ इतनी रुखाई है॥
विरह जरी लखि जींगनिन, कहे न उहि कइ बार।
अरी आव भजि भीतरै, बरसत आज अँगार॥
नहीं जुगनू हैं यह बस आग पानी ने लगाई है।
लाल तिहारे विरह की, लागी अगिन अपार।
सरसै बरसै नीरहू, मिटै न झर झंझार॥
बुझाने से है बढ़ती आग यह कैसी लगाई है।
बन बागनि पिक बटपरा, तकि विरहिन मन मैन।
कुहो कुहो कहि कहि उठै, करि करि राते नैन॥
ग़ज़ब आवाज़ ने इन जालिमों के जान खाई है।
पावस घन अँधियार सें, रह्यो भेद नहिं आन।
रात द्यौस जान्यौ परै, लखि चकई चकवान॥
नहीं बरसात है यह इक क़यामत सिर पर आई है।
वेई चिरजीवी अमर, निधरक फिरौ कहाइ।
छिन बिछुरे जिनको न कहि, पावस आयु सिराइ॥
यहाँ तो जाँ बलब है जब से सावन की चढ़ाई है॥
बामा भामा कामिनी, कहि बोली प्रानेस।
प्यारी कहत लजात नहिं, पावस चलत विदेस॥
भला शरमाओ कुछ तो जी में यह कैसी ढिठाई है।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग
तुलसी चातक प्रेम की, नित नूतन रुचि रंग ।
दिलों पर ख़ाक उड़ती है मगर मुँह पर सफ़ाई
जौ घन बरसै समय सिर, जो भरि जनम उद
तुलसी जाचक चातकहि, तऊ तिहारी आ
सिवा खंजर यहाँ कब प्यास पानी से बुझाई है ।
चातक तुलसी के मते, स्वातिहुँ पियै न पानि
प्रेम तृषा बाढ़त भली, घटे घटैगी कानि
शहीदों ने तेरे बस जान प्यासे ही गँवाई है ।
ऐसो पावस पाइहू, दूर बसै ब्रजराइ ।
धाइ धाइ हरिचन्द क्यों, लेहु न कंठ लगाइ ॥
रसा* मंजूर मुझ को तेरे क़दमों तक रसाई है ॥

[३७]

प्रीति तुव प्रीतम कौ प्रगटैयै ।
कैसे के नाम पगट तुव लीजे कैसे कै विथा सुनैयै ॥
को जानै समुझै जग जिन सों खुलि कै भरम गँवैयै ।
प्रगट हाय करि नैननि जल भरि कैसे जगहि दिखैयै ॥
कबहुँ न जानै प्रेम रीति कोउ मुख सों बुरे कहैयै ।
हरीचन्द पै भेद न कहियै भले ही मौन मरि जैयै ॥

[३८]

काहे तू चौका लगाये जयचँदवा ।
अपने स्वारथ भूलि लुभाये काहे चोटी कटवा बुलाए जय
अपने हाथ से अपने कुल कै काहें तै जड़वा कटाये जय
फूट कै फल सब भारत बोये वैरी कै राह खुलाये जय
औरो नासि तै आपौ बिलाने निजमुँह कजरी पुताये जय

[३९]

ई जे आमाय तो मय छिल कथा मने आछे किना आछे वल।
ोई जे छिल जत भालवासा मने आछे किना आछे वल॥
ात कत छिल मने आशा कत छिले हृदे भालोवासा।
ेशे होलो आशाये नेराशा मने आछे किना आछे वल॥
ेइ जे प्रेम प्रेम करि कईते कथा से प्रेम रईल एखन कोथा।
ृदय दियेछ कतेक व्यथा मने आछे किना आछे वल॥
ुमी हेकि किछुई जानना मम मने आछे सब वेदना।
ामि हृदय पेए छि व्याथा नाना मने आछे कना आछे वल।
दिए छिल कत चन्द्रिका बाधाओ हे चन्द्र तव प्रेमे बाधा॥
ाछे मन प्रान सब साधा मने आछे किना आछे बल॥

[४०]

दिल मेरा ले गया दग़ा कर के।
बेवफ़ा हो गया वफ़ा कर के॥
हिज्र की शव घटा ही दी हमने।
दास्ताँ ज़ुल्फ़ की बढ़ा कर के॥
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझ को।
दिल जलों को जला जला कर के॥
वक्ते रेहलत जो आए बालीं पर।
खूब रोए गले लगा कर के॥
सर्वक़ामत ग़ज़ब की चाल से तुम।
क्यों क़यामत चले बपा कर के॥
खुद ब खुद आज जो वो बुत आया।
मैं भी दौड़ा खुदा खुदा कर के॥
क्यो न दावा करे मसीहा का।
मुर्दे ठोकर से वह जिला कर के॥

क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ।
इक झलक सी मुझे दिखा कर के॥
दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर।
रो रहा है रसा रसा कर के॥

[४१]

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेर रूप सुधा मधि कीनो नैनहूँ पयान है। हँसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुघराई रसिकाई मिलि मति पय पान है॥ मोहि मोहि मोहन मई री मन मेरो भयो 'हरीचन्द' भेद ना परत कछु जान है। कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय हिय मैं न जान्यो परै कान्ह है कि प्रान है॥

[४२]

बोल्यो करै नूपुर श्रवन के निकट सदा पद तल लाल मन मेरे बिहरो करै। बाजी करै वंशी धुनि पूरि रोम रोम मुख मन मुसुकानि मन्द मनहिं हरो करै॥ 'हरीचन्द' चलनि मुरनि बतरानि चित छाई रहै छबि जुग दृगन भरो करै। प्रान हूँ ते प्यारो रहै प्यारो तू सदाई तेरो पीरो पट सदा जिय बीच फहरो करै॥

[४३]

जिय पै जु होइ अधिकार तो बिचार कीजे लोक लाज भलो बुरो भले निरधारिये। नैन श्रौन कर पग सबै परबस भये उतै चलि जात इन्हे कैसे कै सम्हारिये॥ 'हरीचन्द' भई सब भाँति सों पराई हम इन्हैं ज्ञान कहि कहो कैसे के निवारिये। मन में रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन आपै बसै जामें ताहि कैसे कै बिसारिये॥

[४४]

भूली सी भ्रमी सी चौकी जकी सी थकी सी गोपी दुखी सी रहत कछू नाहि सुधि देह की। मोही सी लुभाई कछु मोदक से खाये सदा बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की ।। रिस भरी रहे कबौं फूलि न समाति अङ्ग हंसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की। पूछेते खिसानी होय उत्तर न आवै तोहि जानी हम जानी है निसानी या सनेह की ।।

[४५]

थाकी गति अङ्गन की मति पर गई मन्द सूख झाँझरी सो ह्वै कै देह लागी पियरान। बावरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई सुख के समाज जित तित लागे दूर जान ।। 'हरीचन्द' रावरे विरह जग दुख मयो भयो कछु और होनहार लागे दिखरान। नैन कुम्हिलान लागे बैनहु अथान लागे आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान ।।

[४६]

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गंगाजल ।।
धन विदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल।
जड़ समान ह्वै रहत अकल हत रचि न सकत कल ।।
जीवत बिदेस की वस्तु लै ता बिन कछु नहिं करि सकत।
जागो जागो अब साँवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत ।।

इनकी सुशिक्षा ने इन्हें कविता में अनुराग उत्पन्न कर साहित्यरसोन्मुख किया और यही मानों इनके कविता गुरु भी हुए। इन्हीं के कवित्वशक्ति अभिज्ञान से हमारे चरित नायक के हृदय में उसी समय से कविता करने की अपनी शक्ति में विश्वास हो गया। किन्तु सम्पत्तिवान होने के कारण इसी शिक्षा के साथ आनन्दविनोद की ओर भी प्रकृति उन्मुख हुई और सामग्रियाँ प्रस्तुत हो चलीं। साहित्य के साथ संगीत से भी अनुराग हो गया। ताल सुर की परख बेहद बढ़ चली, और चित्त दूसरे ही ओर लग चला। इसी के साथ घर के भांति २ के कार्य्यों से भिन्न २ नगरों के परिभ्रमण से अनेक भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त हुआ जिसका उदाहरण "भारत सौभाग्य" में मिलता है। संवत् १९२८ में ये प्रथम वार कलकत्ते गए और वहाँ से लौटने पर बरसों बीमार पड़े रहे। इसी समय इनको साहित्य-सम्बन्धी ब्रजभाषा के बहुत से प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने और सुनने का अवसर मिला। इसी समय इनसे पं० इन्द्रनारायण शंगलू से मित्रता हुई जो बहुत कुशाग्रबुद्धि, कार्य्यपटु और नवीन विचार तथा देशहित करनेवाले थे। इन्हीं के द्वारा सभा, समाज, समाचारपत्रों

थापित कीं। इस समय चौधरी जी ने कई कविताएं लिखीं। सं० १९३३ में "कवि वचन सुधा" प्रकाशित होती थी इससे उसमें भी इनके कई एक लेख छपे। उत्साह, मित्रों की रसिकता और गुणग्राहकता से बढ़ चला और १९३८ मे 'आनन्द कादम्बिनी' मासिक पत्र की प्रथम माला प्रकाशित हुई। मासिक पत्र से न सन्तुष्ट हो इन्होंने १९४९ में 'नागरी नीरद' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन आरम्भ किया। इनमें इनके अनेक गद्य और पद्य लेख और ग्रन्थ छपे, जो अद्यावधि स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित न हो सके। इसकी सूचना देते हुये हर्ष होता है कि अब स्वयं चौधरी जी उन्हें ग्रन्थ रूप में शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहते हैं। इनकी अनेक कविताएँ और सद्ग्रन्थ वरं यों कहना चाहिये कि इनकी कविता का उत्तमांश उन पत्र पत्रिकाओं में भी नहीं मिल सकता। इससे इन पत्रों का संग्रह विशेष कष्टसाध्य समझ चौधरी जी ने छोड़ दिया। इनकी केवल वही कविताएं प्रकाशित हो सकीं जो समय के अनुरोध से अत्यावश्यक जान पड़ीं और शीघ्र निकल गईं। जैसे 'भारत सौभाग्य नाटक' 'हार्दिक हर्षादर्श' 'भारत बधाई' 'आर्य्याभिनन्दन' इत्यादि; अथवा जो बहुत आग्रह की माँग के कारण लिखी गईं; यथा 'वर्षा विन्दु' 'कजली कादम्बिनी' और 'प्रयाग रामागमन'। चौधरी जी के ग्रन्थों के प्रकाशित न होने का एकमेव कारण यह है कि इनकी कविता का उद्देश्य निजमन का प्रसादमात्र था। इसीसे ये उसके प्रचार वा प्रकाशित करने के विशेष इच्छुक न हुए, और न उसके द्वारा धन, मान या ख्याति के अभिलाषी हुए, जैसे कि सदा कवि हुआ करते हैं। मन की मौज जिस समय जिस विषय पर आयी, उसे लिखा और जहाँ से मन उचटा,

जिनकी सुशिक्षा ने इन्हें कविता में अनुराग उत्पन्न कर, साहित्यरसोन्मुख किया और यही मानों इनके कविता गुरु भी हुए। इन्हीं के कवित्वशक्ति अभिज्ञान से हमारे चरित नायक के हृदय में उसी समय से कविता करने की अपनी शक्ति में विश्वास हो गया। किन्तु सम्पत्तिवान होने के कारण इसी शिक्षा के साथ आनन्दविनोद की ओर भी प्रकृति उन्मुख हुई और सामग्रियाँ प्रस्तुत हो चलीं। साहित्य के साथ संगीत से भी अनुराग हो गया। ताल सुर की परख बेहद बढ़ चली, और चित्त दूसरे ही ओर लग चला। इसी के साथ घर के भांति २ के कार्य्यों से भिन्न २ नगरों के परिभ्रमण से अनेक भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त हुआ जिसका उदाहरण "भारत सौभाग्य" में मिलता है। संवत् १९२८ में ये प्रथम वार कलकत्ते गए और वहाँ से लौटने पर वरसों वीमार पड़े रहे। इसी समय इनको साहित्य-सम्बन्धी व्रजभाषा के वहुत से प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने और सुनने का अवसर मिला। इसी समय इनसे पं० इन्द्रनारायण शंगलू से मिलता हुई जो बहुत कुशाग्रबुद्धि, कार्य्यपटु और नवीन विचार तथा देशहित करनेवाले मनुष्य थे। इन्हीं के द्वारा सभा, समाज, समाचारपत्रों और उर्दू शायरी में उत्साह बढ़ा। यहाँ तक कि इन्होंने अपना उपनाम उस भाषा के लिए 'अब्र' रखा और हिन्दी के लिए "प्रेमघन"। शंगलू जी के द्वारा ही भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी से जान-पहचान हुई और 'सतां सप्तपदी मैत्री' क्रमशः बड़ी घनिष्ट हो गई। जिसका अन्त तक पूर्ण निर्वाह भी हुआ। संवत् १९३० में इन्होंने "सद्धर्म सभा" और १९३१ में "रसिक समाज" मिरजापुर में स्थापित की, तथा योंही क्रमश और कई सभाएं

गई सरस्वति जी अधार दुर्गा जो परम सहाई।
राजसिरी जो पालनिहारी और कई कतराई॥
नाहि गई इत सों मैं अवलों लाख निरादर पाई।
पै अब वै खींचत निसिबासर पच्छिम को अकुलाई॥
ढोवत रेल न थकत मोहि अरु सिन्धु जहाज अघाई।
कल बल करि बल मोहिं बुलावत तासों जात सिधाई॥

[२]

भागो भागो अब काल पड़ा है भारी।
भारत पै घेरी घटा बिपत की कारी॥
सब गये बनज व्यापार इतै सों भागी।
उद्यम पौरुष नसि दियो बनाय अभागी॥
अब बची खुची खेतीहू खिसकन लागी।
चारहु दिसि लागी है महँगी की आगी॥
सुनिये चिलायँ सब परजा भई भिखारी।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी॥ १॥
हम बनज करैं पर उलटी हानि उठावैं।
हम उद्यम करके लागत भी नहिं पावैं॥
हम खेती करके बेंग बिसार गँवावैं।
औ करजा कै सरकारी जमाँ चुकावैं॥
फिर खायँ कहाँ से यह नहिं जाय विचारी।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी॥ २॥
हम करैं नौकरी बहुत, तलब कम पाते।
थे किसी तरह से अब तक पेट जिलाते॥
इस महँगी से नित एकादशी मनाते।
लड़के वाले सब घर में है चिल्लाते॥

छोड़ दिया। तब भी जो कुछ अब तक प्रकाशित हुआ है इनकी विशद कवित्वशक्ति, रसज्ञता और बहुज्ञता का पूर्ण परिचय देता है। हमारे चौधरी जी को व्रजभाषा से बड़ा प्रेम है उसे ही ये कवियों की भाषा मानते हैं। इसीसे इनकी कविताएँ खड़ी बोली में "आनन्द अरुणोदय" के अतरिक्त और नहीं है और यह इन्होंने केवल यह देखने को लिखा था कि कविता खड़ी बोली में कैसी होती है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने, जिसका तीसरा अधिवेशन कलकत्ते में, १९१२ में, हुआ था इनको सभापति का आसन देकर अपनी गुणग्राहकता प्रकट की थी। उस अवसर पर जो वक्तृता इन्होंने दी थी वह बड़ी गवेषणापूर्ण है।

कई महीने हुये, चौधरी जी ने एक दिन संध्या समय साहित्य-भवन मे स्वयं पधार कर मुझे दर्शन दिया था। अब ये बहुत वृद्ध हो चुके हैं, और उस समय गृहस्थी-सम्बन्धी कुछ मानसिक चिंता से भी पीड़ित दिखाई पड़े।

चौधरीजी की जीवनी मुझे श्रीयुत पंडित नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय एम० ए० एल-एल० बी० (वकील हाईकोर्ट, प्रयाग) द्वारा प्राप्त हुई, अतएव मैं उनका बहुत उपकृत हूँ।

यहाँ चौधरी जी की कविता के कुछ नमूने उनके प्रकाशित ग्रन्थों से लेकर प्रकाशित किये जाते हैं—

[१]

लक्ष्मी-अबलौं रही कोऊ भाँतिन पै अब तो रह्यो न जाई॥
सोमनाथ मथुरा थानेसर नगर कोट तें भाई।
देव दुर्ग काशी कनौज दिल्ली सो बची बचाई॥

महा मन्त्रि को वचन मेटि तुमहीं बिन कारन।
गोरन राजसभा में कारन के बैठारन॥
के कारन तुम अहौ, अहो प्रिय साँचे लिबरल।
कारन के अवतौ तुमहीं कारन कारन बल॥
कारो निपट नकारो नाम लगत भारतियन।
यदपि न कारे तऊ भागि कारी बिचारि मन॥
अचरज होत तुमहुँ सन गोरे बाजत कारे।
तासों कारे कारे शब्दहु पर है वारे॥
अरु बहुधा कारन के हैं आधारहिं कारे।
विष्णु कृष्ण कारे कारे सेसहु जगधारे॥
कारे काम, राम, जलधर जल बरसनवारे।
कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे॥
तासो कारे ह्वै तुम लागत औरहु प्यारे।
यातैं नीको है तुम कारे जाहु पुकारे॥
यहै असीस देत तुम कहँ मिल हम सब कारे।
सफल होहिं मन के सब ही संकल्प तुमारे॥
वे कारे घन से कारे जसुदा के बारे।
कारे मुनिजन के मन में नित विहरन हारे॥
मङ्गल करैं सदा भारत को सहित तुमारे।
सकल अमङ्गल मेटि रहैं आनँद बिस्तारे॥

[४]

हार्दिक हर्षादर्श।

(हीरक जुबली के अवसर पर लिखा गया। १८९६ ई०।)

तिन सब में है मुख्य राज भारत को उत्तम।
जाहि विधाता रच्यो जगत के सीस भाग सम॥

है देखो हाहाकार मचो दिसि चारी ।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी ॥ ३ ॥
अब नहीं यहाँ खाने भर को भी जुरता ।
नहिं सिरपर टोपी नहीं बदन पर कुरता ॥
है कभी न इसमें आधा चावल चुरता ।
नहिं साग मिलै नहिं कन्दमूल का भुरता ॥
नहिं ज्ञात भूख की भई पीर संभारी ।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी ॥ ४ ॥

[३]

(दादाभाई नौरोजी के पार्लामेंट के मेम्बर होने के
अवसर पर, १८६२ ई० में विरचित ।)

कारन सों गोरन की घिन को नाहिन कारन ।
कारन तुम हीं या कलङ्क के करन निवारन ॥
कारन ही के कारन गोरन लहत बड़ाई ।
कारन ही के कारन गोरन की प्रभुताई ॥
कार नहीं है कारन को गोरन गोरन मैं ।
कारन पै जिय देन चहत गोरन हित मन मैं ॥
कारन की है गोरन मैं भगती साँचे चित ।
कारन की गोरन हीं सों आशा हित की नित ॥
कारन की गोरन की राजसभा मैं आवन ।
को कारन केवल कहि कै निज दुख प्रगटावन ॥
कारन करन नहीं शासन गोरन पै मन मैं।
कारन के तौ का कारन घिन जो कारन मैं ॥
गोरन की जो कहत नकारन कारन रोकौ ।
नहि बैठें ए गोरन मध्य कहूँ अवलोकौ ॥

रह्यो न तब तिन मैं इहि ओर लखन को साहस।
आर्य राज राजेसुर दिग्विजयिन के भय बस॥
पै लखि वीरविहीन भूमि भारत की आरत।
सबै सुलभ समभयो या कहँ आतुर असि धारत॥
तेरो प्रबल प्रताप सकल सम्राट दबायो।
खींस बाय कै फरासीस जाते सिर नायो॥
जरमन जर मन मारि बनो जाको है अनुचर।
रूम रूम सम, रूस रूस बनि फूस बराबर॥
पाय परसि तुव पारस पारस के सम पावत।
पकरि कान अफगान राज पर तुम बैठावत॥
दीन बनो सो चीन, पीन जापान रहत नत।
अन्य छुद्र देशाधिप गन की कौन कहावत॥
जग जल पर तुव राज थलहु पर इतो अधिकतर।
सदा प्रकासत जामैं अस्त होत नहिं दिनकर॥

[५]

"आनन्द बधाई।

[यह हिन्दी के कचहरियों में प्रवेश पाने के उपलक्ष्य में सन् १९०३ में लिखी गई।]

पै भागनि सों जब भारत के सुख दिन आये।
अङ्गरेज़ी अधिकार अमित अन्याय नसाये॥
लह्यो न्याय सब ही छीने निज स्वत्वहि पाई।
दुरभागनि बचि रही यही अन्याय सताई॥
लह्यो देशभाषा अधिकार सबै निज देशन।
राज काज आलय विद्यालय बीच ततच्छन॥

जहाँ अन्न, धन, जन, सुख, सम्पत्ति रही निरन्तर।
सबै धातु, पसु, रतन, फूल, फल, बेलि, वृच्छ वर॥
झील, नदी, नद, सिन्धु, सैल, सब ऋतु मनभावन।
रूप, सील, गुन, विद्या, कला कुसल असंख्य जन॥
जिनकी आशा करत सकल जग हाथ पसारत।
आस्रित औरन के न रहे कबहूँ नर भारत॥
वीर, धर्मरत, भक्त, त्यागि, ज्ञानी, विज्ञानी।
रही प्रजा सब पै निज राजा हाथ बिकानी॥
निज राजा अनुसासन मन, बच, करम धरत सिर।
जगपति सी नरपति मैं राखत भक्ति सदा थिर॥
सदा सत्रु सों हीन, अभय, सुरपति छवि छाजत।
पालि प्रजा भारत के राजा रहे विराजत॥
पै कछु कही न जाय, दिनन के फेर फिरे अब।
दुरभागनि सों इत फैले फल फूट बैर जब॥
भयो भूमि भारत मैं महा भयंकर भारत।
भये वीर वर सकल सुभट एकहि सँग गारत॥
मरे विबुध नरनाह सकल चातुर गुन मण्डित।
बिगरो जन समुदाय विना पथ दर्शक पण्डित॥
सत्य धर्म के नसत गयो बल, विक्रम, साहस।
विद्या, बुद्धि, विवेक विचाराचार रह्यो जस॥
नये नये मत चले, नये झगरे नित बाढ़े।
नये नये दुख परे सीस भारत पै गाढे॥
छिन्न भिन्न ह्वै साम्राज्य लघु राजन के कर।
गयो, परस्पर कलह रह्यो बस भारत मैं भर॥
रही सकल जग व्यापी भारत राज बड़ाई।
कौन विदेसी राज न जो या हित ललचाई॥

साहिब 'किस्ती' चही, पठाई मुनसी 'कसबी'।
'नमक' पठायो भई 'तमस्सुक' की जब तलबी॥
पढ़त 'सुनार' 'सितार' 'किताब' 'कबाब' बनावत।
'दुआ' देतहूँ 'दगा' देन को दोष लगावत॥
मेम साहिबा 'बड़े २ मोती' चाह्यो जब।
बड़ी बड़ी मूली पठवायो तसिल्दार तब॥
उदाहरन कोउ कहँ लगि याके सकै गनाई।
एकहु सबद न एक भाँति जब जात पढ़ाई॥
दस औ बीस भाँति सो तौ पढ़ि जात घनेरे।
पढ़े * हज़ार प्रकारहु सों जाते बहुतेरे॥
ज़ेर ज़बर अरु पेस स्वरन को काम चलावत।
बिन्दी की भूलनि सौ सौ बिधि भेद बनावत।
चारि प्रकार जकार, सकार, अकार तीन बिधि।
होत हकार, तकार, यकार उभय बिधि छल निधि॥
कौन सबद केहि बरन लिखे सों सुद्ध कहावत।
याको नियम न कोऊ लिखित लेखहिं लखि आवत॥
यह विचित्रताई जग और ठौर कहुँ नाहीं।
पँचमेली भाषा लिखि जात बरन उन माहीं॥
जिनसे अधम बरन को अनुमानहुँ अति दुस्तर।
अवसि जालियन सुखद एक उर्दू को दफ़्तर॥
जिहि तैं सौ सौ साँसति सहत सदा बिलखानी।
भोली भाली प्रजा इहाँ की अतिहि अयानी॥
भारत सिंहासन स्वामिनि जो रही सदा की।
जग मे अब लौ लहि न सक्यो कोऊ छवि जाकी॥

---

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक शब्द को १००० प्रकार से पढ़ा जाना सिद्ध किया है।

पै इत विरचि नाम उर्दू को "हिन्दुस्तानी ।"
अरबी बरनहुँ लिखित सके नहिं बुध पहिचानी ॥
"हिन्दुस्तानी" भाषा कौन ? कहाँ तैं आई ।
को भाषत, किहि ठौर कोऊ किन देहु बताई ॥
कोउ साहिब खपुष्प सम नाम धरयो मनमानो ।
होत बड़न सों भूलहु बड़ी सहज यह जानो ॥
हरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं ।
लै पैठारे बीच कचहरी बिना विचारहिं ॥
जाको फल अतिसय अनिष्ठ लखि सब अकुलाने ।
राज कर्म्मचारी अरु प्रजा वृन्द बिलखाने ॥
संसोधन हित बारहिं बार कियो बहु उद्यम ।
होय असम्भव किमि सम्भव, कैसे खल उत्तम ॥
हिन्दी भाषा सरल चह्यो लिखि अरबी बरनन ।
सो कैसे ह्वै सकै बिचारहु नेक, बिचच्छन !
मुग़लानी, ईरानी, अरबी, इङ्गलिस्तानी ।
निय नहिं हिन्दुस्तानी बानी सकत बखानी ॥
ज्यों लोहार गढ़ि सकत न सोने के आभूषन ।
अरु कुम्हार नहिं बनै सकत चाँदी के बरतन ॥
कलम कुल्हाड़ी सों न बनाय सकत कोउ जैसे ।
सूजा सों मलमल पर बखिया होत न तैसे ॥
कैसे हिन्दी के कोउ सुद्ध शब्द लिखि लैहै ।
अरबी अच्छर बीच, लिखेहु पुनि किमि पढ़ि पैहै ॥
निज भाषा को सबद लिखो पढ़ि जात न जामैं ।
पर भाषा को कहौ पढ़ै कैसे कोउ तामैं ॥
लिख्यो हकीम औषधी में 'आलू बोख़ारा' ।
उल्लू बनो मोलवी पढ़ि 'उल्लू बेचारा' ॥

तजि उपेक्षालस निद्रा उठि बैठा भारत ज्ञानी।
ध्याय परम करुणा वरुणालय बोला शुभप्रद बानी॥
"उठो आर्य्य सन्तान सकल मिलि बस न विलम्ब लगाओ।
बृटिश राज स्वातन्त्र्यमय समय व्यर्थ न बैठ बिताओ॥
देखो तो जग मनुज कहाँ से कहाँ पहुँच कर भाई।
धर्म, नीति, विज्ञान, कला, विद्या, बल, सुमति सुहाई॥
की उन्नति निज देश, जाति, भाषा, सभ्यता सुखों की।
तुम सब ने सीखी वह बान रही जो खानि दुखों की॥"
"बीती जो उसको भूलो सँभलो अब तो आगे से।
मिलो परस्पर सब भाई बँध एक प्रेम धागे से॥
आर्य्यवंश को करो एक, अब द्वैत भेद बिनसाओ।
मन वच कर्म एक हो वेद विदित आदर्श दिखाओ॥
बैठो सब थल एक ध्याय सर्वेश एक अविनाशी।
एक विचार करो थिर मिल कर जग आतङ्क प्रकाशी।
मिथ्याडम्बर छोड़ धर्म का सच्चा तत्व विचारो।
चारो वेद कथित चारो युग प्रचलित प्रथा प्रचारो॥
चारो वर्णाश्रम के चारो भिन्न धर्म के भागी।
निज निज धर्माचरण यथाविधि करो कपट छल त्यागी॥"
"सत्य सनातन धर्म ध्वजा हो निश्चल गगन उड़ाओ।
श्रौत स्मार्त कर्म्म अनुशासन के दुन्दुभी बजाओ॥
फूंको शङ्ख अनन्य भक्ति हरि, ज्ञान प्रदीप जलाते।
जगत प्रशंसित आर्य्यवंश जय जय! की धूम मचाते॥

[८]

अब तो लखिये अलि ये अलियन
कलियन मुख चुंबन करन लगे।
पीवत मकरन्द मनो माते, ज्यों अधर सुधा रस में राते,
कहि केलि कथा गुंजरन लगे॥

जासु बरनमाला गुन खानि सकल जग जानत।
बिन गुन गाहक सुलभ निरादर मन अनुमानत॥
राज सभा सों अलग कई सौ बरस बितावत।
दीन प्रबीन कुलीन बीच सोभा सरसावत॥
बरसावत रस रही ज्ञान, हरि भक्ति, धरम नित।
सिच्छा अरु साहित्य सुधा सम्बाद आदि इत॥
कियो न बदन मलीन पीन बरु होत निरन्तर।
रही धीरता धारि ईस इच्छा पर निरभर॥

[६]

आनन्द अरुणोदय।

[श्री प्रयागराज के सनातन धर्म महा सम्मेलन के अवसर पर १९०६ ई० में, लिखा गया।]

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का।
समझ अन्त अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका॥
अरुणोदय एकता दिवाकर प्राची दिशा दिखाती।
देखा नव उत्साह परम पावन प्रकाश फैलाती॥
उद्यम रूप सुखद मलयानिल दक्षिण दिश से आता।
शिल्प कमल कलिका कलाप को विना विलम्ब खिलाता॥
देशी बनी वस्तुओं का अनुराग पराग उड़ाता।
शुभ आशा सुगन्ध फैलाता मन मधुकर ललचाता॥
वस्तु विदेशी तारकावली करती लुप्त प्रतीची।
विद्वेषी उलूक छिपने को कोटर बनी उदीची॥
उन्नति पथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा लखाई।
खग 'वन्देमातरम्' मधुर ध्वनि पड़ने लगी सुनाई॥

लयो मलेच्छन मूसलमान।
जो दुख दिये अनेक महान॥
मारि काटि कीने वीरान।
दीन हीन अब हिन्दुस्तान॥
पास रह्यो नहिं एक छदाम।
विना द्रव्य नहिं सरकत काम॥
दुखी यहाँ के नर औ बाम।
देयँ कहाँ तुमको आराम॥
जब अतृप्त आपै सब जाम।
करै तृप्त किमि तुमहिं अवाम॥
तुम जस कियो भयो सो काम।
होहु दशा लखि तृप्यन्ताम॥

[१०]

पीयूष वर्षा

हेरत दोउन को दोऊ औंचक हीं मिले आलिकै कुञ्ज मँझारी।
हेरत हीं हरिगे हरि राधिका के हिय दोउन ओर निहारी॥
दौरि मिले हिय मेलि दोऊ मुख चूमत हैं घनप्रेम सुखारी।
पूरन दोउन की अभिलाख भई पुरवै अभिलाख हमारी॥

[११]

सम्पति सुजस का न अन्त है विचारि देखा,
तिसके लिये क्यों सोक सिन्धु अवगाहिये।
लोभ की ललक में न अभिमानियो के तुच्छ,
तेवरों को देख उन्हें लंकित सराहिये॥
दीन गुनी सज्जनों से निपट बिनीत बने,
प्रेमघन नित्य नाते नेह के निबाहिये।

रस मनहुँ प्रेमघन बरसत घन, निज प्यारी के करि आलिङ्गन
लिपटे लुभाय मन हरन लगे ॥

[६]

कलिकाल तर्पण ।

ब्रह्मादिक सब सुर मति धाम ।
आए भारत में केहि काम ?
गवनहु निज गृह लेहु प्रणाम ।
सन्तोषहि से तृप्यन्ताम् ॥ १ ॥
विधि केहि विधि औ कवन विधान ?
रच्यो रुचिर यह हिन्दुस्तान ॥
दियो आरजन्ह बल बुधि ज्ञान ।
विद्या सुमति सकल गुन खान ॥
सुखी सराहे सुभट सयान ।
जब वे जाहिर रहे जहान ॥
धन विद्या लहिं सहित सुजान ।
तबै रह्यो उनके हिय ज्ञान ॥
तब करि सादर तुमहि प्रणाम ।
विविध रीति अरचत मतिधाम ॥
ध्यान यज्ञ तरपण अभिराम ।
करत रोज उठि तृप्यन्ताम ॥ २ ॥
अब तुम और लियो मन ठान ।
विरच्यो विविध विरुद्ध विधान ॥
हरो राजबल विद्या ज्ञान ।
कियो भले भारत अपमान ॥

काली सूरत पर काला कपड़ा, देत छिप. रंग दून साँ० गो० ।
अँगरेज़ी कपड़ा छोड़ह कितौ, ल्याय लगावः मुहें चून साँ० गो० ।
दाढ़ी रखिकै बार कटावत और बढ़ाए नाखून साँ० गो० ।
चलत चाल बिगरैल घोड़ सम, बोलत जैसे मजनून साँ० गो० ।
चन्दन तजि मुहँ ऊपर साबुन, काहें मलह दुऔ जून साँ० गो० ।
चूसह चुरुट लाख पर लागत, पान बिना मुहँ सून साँ० गो० ।
अच्छर चारि पढ़ेह अंगरेज़ी, बनि गये अफलातून साँ० गो० ।
मिलहि मेम तोहें कैसे जेकर, फेयर फेस लाइक दी मून साँ० गो० ।
बिसकुट, केक, कहाँ तू पैब्य, चाभः चना भले भून साँ० गो० ।
डियर प्रेमघन हियर दया कर, गीत न गावो लेम्बून साँ० गो० ।

[१५]

भारत-वन्दना ।

जय जय भारत भूमि भवानी ।
जाकी सुयश पताका जग के दसहू दिसि फहरानी ।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ॥
जा श्री सोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी ।
धर्म सूर जित उयो नीति जहँ गई प्रथम पहिचानी ॥
सकल कला गुन सहित सभ्यता जहँ सो सबहिं सुझानी ।
भए असंख्य जहाँ जोगी तापस ऋषिवर मुनि ज्ञानी ॥
बिबुध विप्र, विज्ञान सकल विद्या जिनतैं जग जानी ।
जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहँ न्याय निरत गुन खानी ॥
जिन प्रताप सुर असुरनहू की हिम्मत बिनसि बिलानी ।
कालहु सम अरि तृन समझत जहँ के क्षत्री अभिमानी ॥
बीर वधू बुध जननि रहीं लाखन जित सती सयानी ।
कोटि कोटि जित कोटि पती रत बनिक बनिक धन दानी ॥
सेवत शिल्प यथोचित सेवा सूद समृद्धि बढ़ानी ।

राग रोष औरों से न हानि लाभ कुछ,
उसी नन्द के किसोर कोकृपा की कोर चाहिये॥

[१२]

वशियान बसंत बसेरो कियो, बसिये,तिहि त्यागी तपाइयै ना।
दिन काम कुतूहल के जे बने, तिन बीच बियोग बुलाइयैना॥
घनप्रेम बढ़ाय कै प्रेम अहो, बिथा वारि वृथा बरसाइये ना।
चितै चैत की चाँदनी चाह भारी, चरचा चलिबे की चलाइयै ना॥

[१३]

मन की मौज ।

मन की मौज मौज सागरसी सो कैसे ठहराऊँ
जिसका वारापार नहीं उस दर्या को दिखलाऊँ ?
तुमसे नाज़ुक दिल को भारी भौंरों में भरमाऊँ
कहो प्रेमघन मन की बातैं कैसे किसे सुनाऊँ ॥ १ ॥
तिरछी तिउरी देख तुमारी क्योंकर सीस नवाऊँ
हो तुम बड़े खबीस जान कर अनजाना बन जाऊँ
हर्फ़ शिकायत ज़बाँ प आए कहीं न यह डर लाऊँ
कहो प्रेमघन मन की बातैं कैसे किसे सुनाऊँ ॥ २ ॥
लूट रहे हो भली तरह मैं जानूँ वले छुपाऊँ
करते हो अपने मन की मैं लाख चहे चिल्लाऊँ
डाह रहे हो खूब परा परवस मैं गो घबराऊँ
कहो प्रेमघन मन की बातैं कैसे किसे सुनाऊँ ॥ ३ ॥

[१४]

(कजली कादम्बिनी से)

सोहै न तोके पतलून साँवर गोरवा ।
कोट बूट जाकेट कमीच क्यों पहिनि बने बैबून साँ० गो० ।

सन् १८७६ में मुड़वारा के मिडिल स्कूल में २५) मासिक पर ये अध्यापक नियुक्त हुये। कुछ दिनों के बाद सागर के हाई स्कूल में सहकारी शिक्षक होकर चले गये, और तीन ही मास पीछे ५०) मासिक पर हेडमास्टर होकर फिर मुड़वारा चले आये। वहाँ से डेढ़ वर्ष पीछे ६०) मासिक पर जबलपुर के नार्मल स्कूल में चले गये। वहाँ से ७०) मासिक वेतन पर फिर मुड़वारा गये। डेढ़ वर्ष मुड़वारा में रह कर फिर कुछ दिनों के लिये १५०) मासिक वेतन पर मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग के इन्स्पेक्टर जनरल के दफ़्र में चले गये। कुछ समय पीछे १००) मासिक पर होशंगाबाद हाई कूस्ल के हेडमास्टर नियुक्त होगये। इनकी पढ़ाई का फल बहुत अच्छा हुआ करता था। जिस समय ये होशंगाबाद हाई स्कूल के हेडमास्टर थे, उस समय इनके स्कूल से मेट्रिकुलेशन मे भेजे गये सब छात्र पास होगये थे। उस प्रांत में इनकी बहुत प्रसिद्धि होगई थी। एक बार वहाँ के चीफ़ कमिश्नर ने तार द्वारा इन पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी।

कुछ समय के पश्चात् ये १७५) मासिक पर जबलपुर के नार्मल स्कूल के सुपरिंटेंडेंट नियत हुये, और वहाँ ५ वर्ष तक रहे। फिर २२५) पर नागपुर के ट्रेनिंग इंस्टीट्यूशन में बदल दिये गये, वहाँ इन्होंने कई बी० ए० पास लोगों को पढ़ा कर पास कराया।

इसके पीछे जब ट्रेनिङ्ग इन्स्टीट्यूशन जबलपुर उठ कर चला आया, तब ये भी उसी के साथ वहीं आगये। इस तरह ३४ वर्ष तक इन्होंने शिक्षाविभाग में बड़ी योग्यता से काम करके खूब प्रसिद्धि पाई। चीफ़ कमिश्नर की वार्षिक रिपोर्ट और कितने ही अंगरेज़ अफ़सरों के दिये हुये सार्टिफिकेटों

जाको अन्न खाय ऐंडति जग जाति अनेक अघानी॥
जाकी सम्पति लुटत हजारन बरसनहूँ न खोटानी।
सहस सहस बरिसन दुख नित, नव जो न ग्लानि उर आनी॥
धन्य धन्य पूरब सम जग नृपगन मन अजहुँ लोभानी।
प्रनमत तीस कोटि जन अजहूँ जाहि जोरि जुग पानी॥
जिनमैं झलक एकता की लखि जगमति सहमि सकानी।
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेमघन बनहु सोई छवि छानी॥
सोइ प्रताप गुणजन गर्वित ह्वै भरी पुरी धन धानी।

विनायक राव

पण्डित विनायक राव का जन्म सं० १९१२ की पौष शुक्ला १० को ज़िला सागर में हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनके बचपन में हीं इनके पिता का देहान्त हो गया था। सागर में हीं इनका विद्यारम्भ हुआ। वहीं के हाई स्कूल से इन्होंने एंट्रेंस पास किया। फिर वहाँ से ये जबलपुर चले आये और सन् १८७५ में वहीं से इन्होंने एफ० ए० की परीक्षा पास की। बी० ए० पढ़ने के लिए इन्हें सरकार से १५) मासिक की छात्रावृत्ति मिली। किन्तु उन दिनो बी० ए० पढ़ने के लिए लखनऊ जाना पड़ता था, क्योंकि मध्यप्रदेश में कहीं इसके लिए प्रबन्ध नहीं था। कई कारणों से ये लखनऊ न जा सके, और यहीं इनकी शिक्षा समाप्त हो गई।

का हल, स्वच्छता की पहली पुस्तक, संसार की बाल्य अवस्था, व्याख्या विधि, हिन्दी की चौथी पुस्तक का सुगम पंथ, संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान विटप, आरोग्य विद्या प्रश्नोत्तरी, व्यवहारिक रेखा गणित, जटल काफ़िया, हिन्दी की पहिली, दूसरी, तीसरी, चौथी पुस्तक, परीक्षा पास, शिक्षा प्रबंध, रामचरित मानस की श्री विनायकी टीका, अयोध्या रत्न भण्डार, काव्य कुसुमाकर प्र० भा०, काव्य कुसुमाकर द्वि०, भा०
आगे हम इनकी कविताओं के उदाहरण लिखते हैं:—

[१]

धारिये धीरज धर्म सनातन, सत्य सदा समता न बिसारिये।
सारिये भक्ति करोर कलान कै, मत्त मलीन महासन मारिये॥
मारिये मोह मदादिक मत्सर, गाय गोविन्द गुमानहिं गारिये।
गारिये द्वैत विचार 'विनायक' नायक रामसिया 'चित धारिये'॥

[२]

आतम ही रथवान प्रमान, शरीरहिं जो रथ रूप बनावै।
बुद्धि बनै वर सारथी आय, सु मानस केरि लगाम लगावै॥
इन्द्रिय वाजि जुते जब जाय, कुचाल सयत्न सुचाल चलावै।
सत्य "विनायक" विष्णु समीप अपारहि मारग पारसु पावै॥

[३]

कलिकाल विहाल किये नरनारी कहूँ दुशकाल विरोध अहै।
पुनि फूट परस्पर है न विवेक अजानपने को सँचार रहै।
धरि के मन धीर विचार समेत हमेश रमेश पदाब्ज गहै।
"कवि नायक" पार पयोनिधि को रघुनायक नाम अधार लहै॥

[४]

पुन्यहि पूरण पाप विनाशन निर्मल कीरति भक्ति बढ़ावन।
दायक ज्ञानरु घायक मोह विशुद्ध सुप्रेममयी मुद पावन।

से इनकी योग्यता का अच्छा पता चलता है। आजकल ये सरकारी पेंशन पाते हैं और सकुटुम्ब जबलपुर में रहते हैं। इनके तीन पुत्र तथा तीन कन्याएँ हैं। ज्येष्ठ पुत्र पं० परशुराम बी० ए० पहले हरदा में स्कूलों के डिप्टी इन्स्पेक्टर थे। आजकल नौकरी से इस्तीफा देकर ये विरक्त हो रहे हैं। गीता, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ पर उनमें विशेष श्रद्धा जागृत हुई है, और ये उसीमें तन्मय हो रहे हैं। देखें, ईश्वर इनके द्वारा देशहित का क्या कार्य करना चाहता है। मुड़वारा ज़िला स्कूल में जब पण्डित विनायकरावजी हेडमास्टर थे तब वहाँ इन्होंने एक संस्कृत पाठशाला खोली थी जो अभी तक अच्छी तरह से चल रही है।

पण्डित विनायक राव जी हिन्दी भाषा के बड़े प्रेमी हैं। अब तक इन्होंने १६ पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें से कई मध्य प्रदेश के स्कूलों में पढ़ाई भी जाती हैं। हिन्दी की पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी पुस्तकों के लिए इन्हें १०००) का पारितोषिक भी मिला था। वैज्ञानिक कोश के सम्पादन के समय काशी नागरी प्रचारिणी सभा की प्रार्थना पर मध्य प्रदेश के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर ने इन्हें प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। उसी समय से ये नागरी प्रचारिणी सभा के सभासद होगये।

जबलपुर के श्रीभानु कवि समाज से इन्हें "कवि नायक" और भारत धर्म महामण्डल से "साहित्य-भूषण" की उपाधि मिली है।

पण्डित जी ने नौ वर्ष के परिश्रम से तुलसी कृत रामायण की बड़ी ललित "श्री विनायकी टीका" लिखी है। इनकी लिखी हुई कुल पुस्तकों के नाम ये हैं:—क्षेत्र व्यवहारिक तत्व

[६]

गाथा राम चरित्र की, सांसारिक व्यवहार।
ईश भक्ति नृप गुरु भगति, मात पिता को प्यार॥
मात पिता को प्यार, सत्यता की दृढ़ताई।
अटल तिया पति प्रेम, मंत्रि वर की चतुराई॥
कहत विनायक राव, भाइ भाई को साथा।
सेवक सेव्य सुप्रेम, पूर्ण रघुनायक गाथा॥

[१०]

कन्या सुन्दर वर चहै, मातु चहै धनवान।
पिता कीर्त्ति युत स्वजन कुल, अपर लोग मिष्टान्न॥

[११]

नहिं सराहिये स्वर्ण गिरि, जहँ तरु तरुहि रहाहिं।
धन्य मलयगिरि जहँ सकल, तरु चन्दन हुइ जाहिं॥

[१२]

कविगण कविता करहिं जो, ज्ञानवान रस लेइ।
जन्म देइ पितु पुत्रि को, पुत्रि पतिहि सुख देइ॥



श्री मद् रामचरित्र सुमानस नीर सुभक्ति समेत नहावन।
"नायक" तेजन सूरज रूप जहान के ताप को ताप नशावन।

[५]

भासत एक गुरू मदिरा गुरु दो मिलि मत्त गयन्द गह्यो।
गोल समेत चकोर भयो सुमुखी सत जालग छन्द लह्यो।
आठहु भागन होत किरीट सु दुर्मिल सागण आठ चह्यो।
भासत रा अरसात सुपिंगल जा सत यागण वाम कह्यो॥

[६]

जनक दुलारी सुकुमारी सुधि पाई पिय,
चहत चलन वन इच्छा नरनाह की।
उठि अकुलाय घबराय संग जान हेतु,
सकुचाति विनय सुनाई चित चाह की॥
सासु समझाई राम विविधि बुझाई कहि,
वन दुखदाई कठिनाई बहु राह की।
पति पद प्रेम लखि "नायक" कहत सत्य,
तिया हुती पतिव्रता मानी नाहीं नाह की।

[७]

प्रसन्नता जो न लही सुराज से।
गही न ग्लानी वनवास दुःख से॥
मुखच्छवी श्री रघुनाथ की अहो।
हमें सदा सुन्दर मंगलीय हो॥

[८]

अहो सोच कन्या विवाह का वृथा हृदय नर धरते हैं।
सर्वशक्ति युत ईश कृपानिधि जोड़ी निर्मित करते हैं॥
भावी वर को जन्म प्रथम दे कन्या पीछे रचते हैं।
"नायक" सोच करो मत कोई विधि के अंक बचते हैं॥

प्रतापनारायण बड़े मौजी तबीयत के थे। हमेशा अपने ही रंग में मस्त रहते थे। ये ऐसे स्वच्छन्द स्वभाव के मनुष्य थे कि जब कभी कोई ज़रा भी इनकी तबीयत के ख़िलाफ़ कुछ कह देता या कोई काम कर बैठता, तब ये उसका ज़रा भी मुलाहज़ा न करते थे। कभी कभी ये साधारण बातों पर भी बिगड़ उठते थे। जिन लोगों से इनका मैत्री भाव था, कभी कभी उनके यहाँ ये दिन दिन भर पड़े रहते थे और कभी हज़ार बार आरज़ू मिन्नत करने पर भी न जाते थे।

प्रतापनारायण मिश्र जब स्कूल में थे, बाबू हरिश्चन्द्र का "कवि वचन सुधा" नामक पत्र बहुत उन्नति पर था। उसमें बड़े ही मनोरंजक गद्य पद्य मय लेख रहते थे। मिश्र जी उसे तथा बाबू हरिश्चन्द्र की अन्यान्य रचनाओं को बड़े ही चाव से पढ़ा करते थे। उन्हीं को पढ़ने से प्रतापनारायण की प्रवृत्ति कविता की तरफ़ हुई। उन दिनों कानपुर में लावनी गाने वालों का बड़ा ज़ोर शोर था। प्रसिद्ध लावनीबाज़ बनारसी उस समय प्रायः कानपुर में ही रहा करता था। पंडित प्रतापनारायण मिश्र को लावनी सुनने का बड़ा चस्का लग गया। ये स्वयं भी मौके मौके पर लावनी की रचना करने लगे। कानपुर के प्रसिद्ध कवि पंडित ललिता प्रसाद त्रिवेदी धनुष यज्ञ कराने में बड़े निपुण थे। उन्हीं से प्रतापनारायण ने छंदः शास्त्र के नियम सीखे। "ललित" जी को ही वे अपना गुरु मानते थे।

हिन्दी पत्र पढ़ने का इन्हें लड़कपन से ही शौक था। इसी शौक से उत्साहित होकर १५ मार्च १८८३ से इन्होने "ब्राह्मण" नामक १२ पृष्ठ का एक मासिक पत्र निकालना प्रारंभ किया। ब्राह्मण के लेख हास्यरसमय, व्यंग पूर्ण और शिक्षाप्रद होते थे।

प्रतापनारायण मिश्र

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण ६, सं० १९१३ में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित संकटाप्रसाद था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण बैजे गाँव (जि० उन्नाव) के मिश्र थे। पंडित संकटाप्रसाद अच्छे ज्योतिषी थे। वे प्रतापनारायण को भी ज्योतिर्विद बनाना चाहते थे। पर इनका चित्त ज्योतिष में लगता ही न था। तब इनके पिता ने लाचार होकर इन्हें स्कूल में भर्ती करा दिया। वहाँ भी इनका जी न लगा। तब सं० १९३२ के लगभग इन्होंने स्कूल से अपना पिंड छुड़ाया। इसके कुछ दिन बाद पंडित संकटाप्रसाद की मृत्यु हो गई। इससे इनकी शिक्षा एकदम से बन्द ही हो गई, स्कूल में इनकी दूसरी भाषा हिन्दी थी अंग्रेज़ी का इनको बहुत साधारण ज्ञान था। परंतु अप परिश्रम से बड़े होने पर इन्होंने उर्दू, फारसी और संस्कृत अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

प्रतापनारायण का रंग गोरा, नाक बहुत बड़ी, शर दुबला और कमर जवानी ही में झुक गई थी। ये सिर बड़े बड़े बाल और आगे दोनों ओर काकुलें रखते थे। इन लम्बी दाढ़ी रखने का भी शौक था। इनकी नाक दिन नास फाँका करती थी, इससे इनकी दाढ़ी और मूछों पर थोड़ा बहुत नास छाया रहता था।

झते थे। मद्रास और प्रयाग की कांग्रेस में वे कानपुर से प्रतिनिधि होकर गये भी थे। उनका शरीर रोग का घर था।

प्रतापनारायण हिन्दी हिन्दुस्थान के परम भक्त, सुकवि और लेखक थे। उनकी कविता में उनका देशप्रेम अच्छी तरह झलकता है।

उन्होंने १२ पुस्तकों का भाषानुवाद किया और २० पुस्तकें लिखीं।

अनुवादित पुस्तकों के नाम ये हैं:—

राजसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुलीय, चरिताष्टक, पञ्चामृत, नीति रत्नावली, कथा माला, संगीत शाकुन्तल, वर्णपरिचय, सेनवंश, और सूबे बंगाल का भूगोल।

लिखित पुस्तकों के नाम ये हैं:—

कलिकौतुक-रूपक, कलि प्रभाव नाटक, हठी हमीर नाटक, गोसङ्कट-नाटक, जुआरी खुआरीप्रहसन, प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, शृङ्गार विलास, दंगल खंड, लोकोक्ति शतक, तृप्यन्ताम्, ब्राडला स्वागत, भारत दुर्दशा, शैव सर्वस्व, प्रताप संग्रह, रसखान शतक, मानस विनोद, वर्णमाला, शिशु विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा।

उनकी कविता सरस, और प्रभावोत्पादक होती थी। मन की लहर में उनकी संस्कृत और फ़ारसी कविता के भी नमूने मिलते हैं। उनका देहान्त आषाढ़ शुक्ल ४ सं० १९५१ को हुआ।

यहाँ हम उनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं:—

कभी कभी मिश्र जी "ब्राह्मण" की क़ीमत तक, दानग्राही ब्राह्मण की तरह, कविता में माँगते थे। एक नमूना देखिये:—

थे। यह पत्र कोई दस वर्ष तक चलता रहा। बीच में, १८८ में एक बार कुछ दिनों के लिये यह बन्द भी हो गया था मिश्र जी की मृत्यु के बाद खड्गविलास प्रेस के मालिक बा रामदीन सिंह ने उसे फिर चलाया, किन्तु वह चला नहीं, बं ही हो गया।

सन् १८८६ में पंडित प्रतापनारायण कालाकांकर गये और वहाँ हिन्दी "हिन्दोस्थान" के सहकारी सम्पादक नियत हुये। किन्तु स्वच्छन्द स्वभाव होने के कारण वहाँ अधिक दि रह न सके।

जब मिस्टर ब्रैडला विलायत से यहाँ आये थे, तब उन्होंने 'ब्रैडला स्वागत' शीर्षक एक कविता रची थी। उसकी बड़ी प्रशंसा हुई; विलायत तक में उसकी चर्चा हुई थी।

पंडित प्रतापनारायण बड़े काहिल थे। उनके बैठने के स्थान पर कूड़े करकट, अखबार, चिठ्ठियाँ, कागज बिखरे पड़े रहते थे। चिठ्ठियों के उत्तर देने में बड़े ही लापरवाह थे। पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र को उन्होंने एक चिठ्ठी लिखी थी। उसमें एक जगह चिठ्ठियों का उत्तर न देने के विषय में आप लिखते हैं—को सारेन की खैंहँसि माँ परै।

मिश्र जी नाटक खेलने मे बड़े निपुण थे। एक बार स्त्री का पार्ट लेने के लिये उन्होंने दाढ़ी मोंछ सब मुड़ा डाली थी। वे पूरे मसखरे, दिल्लगीवाज़ और एक प्रकार से फक्कड़ थे। नाटक में अपना पार्ट वे बड़ी खूबी से करते थे।

सामाजिक और धार्मिक बंधनों की वे अधिक परवा न करते थे, धर्मान्धता उनमें न थी। उनका सिद्धान्त था—"प्रेम एव परोधर्मः।" वे कांग्रेस के पक्षपाती थे और उसे अच्छा सम

जब रहिहैं निसिदिन यह ध्यान ।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥ २ ॥

तृप्यन्ताम् ।

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब
कहा बखानत ऋक, यजु, साम ॥
हम सपनेहू में नहिं जानैं
रहैं पेट के बने गुलाम ॥
तुमहिँ लजावत जगत जनम ले
दुहु लोकन में निपट निकाम ॥
कहैं कौन मुख लाइ हाइ फिर
ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम् ॥ १ ॥
देख तुम्हारे फ़रज़न्दों का
तौरो-तरीक़ तुआमो कलाम ॥
ख़िदमत कैसे करूँ तुम्हारी
अक़ल नहीं कुछ करती काम ॥
आवे गङ्ग नज़र गुज़रानूँ
या कि मये-गुलगूँ का जाम ॥
मुंशी चित्तर गुपत साहब
तसलीम कहूँ या तिरपिताम् ॥ २ ॥

फुटकर ।

हाय बुढ़ापा तोरे मारे
अब तो हम नकन्याय गयन ।

विज्ञापन

चार महीने हो चुके, ब्राह्मण की सुधि लेव।
गंगा माई जै करैं, हमैं दक्षिणा देव ॥ १ ॥
जो बिनु माँगे दीजिए, दुहु दिसि होय अनन्द।
तुम निचिंत हो हम करैं, माँगन की सौगंद ॥ २ ॥
तुर्त दान जौ करिय तो, होय महा कल्यान।
बहुत बकाये लाभ का, समुझ जाव जजमान ॥ ३ ॥
रूपराज की कगर पर, जितने होयँ निसान।
तिते वर्ष सुख सुजस युत, जियत रहो जजमान ॥ ४ ॥

हरिगंगा

आठ मास बीते जजमान-अबतो करो दच्छिना दान। हरिगं
आजु कालिह जौ रुपया देव-मानो कोटि यज्ञ करि लेव ॥ "
माँगत हमका लागै लाज-पर रुपया बिन चलै न काज ॥ "
जो कहुँ दैहो बहुत खिझाय-यह कौनिउ भलमंसी आय ॥ "
हँसी खुसी से रुपया देव-दूध पूत सब हमसे लेव ॥ "
कासी पुन्नि गया माँ पुन्नि-बाबा बैजनाथ माँ पुन्नि ॥ "

हिन्दी की हिमायत

चहहु जु साँचौ निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत संतान ॥
जपो निरंतर एक ज़बान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥
तबहिं सुधरिहै जन्म निदान।
तबहिं भलो करिहैं भगवान ॥

जब रहिहै निसिदिन यह ध्यान ।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥ २ ॥

तृप्यन्ताम् ।

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब
कहा बखानत ऋक्, यजु, साम ॥
हम सपनेहूँ में नहिं जानैं
रहैं पेट के बने गुलाम ॥
तुमहिँ लजावत जगत जनम ले
दुहु लोकन में निपट निकाम ॥
कहैं कौन मुख लाइ हाइ फिर
ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम् ॥ १ ॥
देख तुम्हारे फ़रज़न्दो का
तौरो-तरीक़ तुआमो कलाम ॥
ख़िदमत कैसे करूँ तुम्हारी
अक़ल नहीं कुछ करती काम ॥
आवे गङ्ग नज़र गुज़रानूँ
या कि मये-गुलगूँ का जाम ॥
मुंशी चितर गुपत साहब
तसलीम कहूँ या तिरपिताम् ॥ २ ॥

फुटकर ।

हाय बुढ़ापा तोरे मारे
अब तो हम नकन्याय गयन ।

करत धरत कुछु बनतै नाहीं
    कहाँ जान औ कैस करन ।
छिन भरि चटक छिनै मा मद्धिम
    जस बुझात खन होय दिया ।
तैसे निखवख देख परत हैं
    हमरी अक्किल के लच्छन ॥ १ ॥
अस कुछ उतरा जाति है जीते
    बाजी बेरियाँ बाजी बात ।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति
    मूँडुइ काहे न दै मारन ।
कहा चहौ कुछ निकरत कुछु है
    जीभ राँड़ का है यहु हालु ।
कोऊ इहि का बात न समझै
    चाहे बीसन दाँय कहन ॥ २ ॥
दाढ़ी नाक याक माँ मिलगै
    बिन दाँतन मुहुँ अस पोपलान ।
दढ़िही पर बहि बहि आवति है
    कबौं तमाखू जो फाँकन ।
बार पाकि गै रीरौ झुकि गै
    मूँड़ौ सासुर हालन लाग ।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन
    केहि के आगे दुख रवावन ॥ ३ ॥
यही लगुठिया के बूते अब
    जस तस डोलित डालित है ।
जेहि का लै कै सब कामेन मा
    सदा खखारत फिरत रहन ।

जियत रहैं महराज सदा जो
हम ऐस्यन का पालति हैं।
नाहीं तो अब कोधौं पूँछै
केहि के कौने काम के हन ॥ ४ ॥

गैया माता तुमका सुमिरौं, कीरत सब ते बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लरिकन कै, पुरिखन बैतरनी देउ तारि।
तुम्हरे दूध दही की महिमा, जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जिहिं का, गोबर लगे पवित्तर होय ॥१॥
जिनके लरिका खेती करिकै, पालैं सबइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रछ्या माँ, जो कुछ जतन करौ सो ध्वार।
घास के बदले दूध पियावैं, मरि के देंय हाड़ ओ चाम।
धनि वह तन मन धन जो आवै, ऐसी जगदम्बा के काम ॥२॥
आल्ह खण्ड की पोथी लै कै, दाखौ तनुक लिखा कस आय।
"जहाँ रोसैंयाँ है ऊदन कै, भुरवा मुगुल पछारे गाय।"
को अस हिन्दू ते पैदा है, जो अस हालु देखि एक साथ।
रकत के आँसन रोय न उठिहै, माथे पटकि दुहत्था हाथ ॥३॥
सब दुख सुख तो जैसे तैसे, गाइन की नहिं सुनै गुहार।
जब सुधि आवै मोहिं गैयन की, नैनन बहै रकत की धार।
हियाँ की बातें तौ हियनें रहिं, अब कम्पू कै सुनो हवाल।
जहां के हिन्दू तन मन धन से, निस दिन करैं धरम प्रतिपाल ॥४॥

वो बद खू राह क्या जानै वफ़ा की।
'अगर ग़फ़लत से बाज़ आया जफ़ा की' ॥१॥
न मारी गाय गोचारन किया बन्द।
'तलाफ़ी की जो ज़ालिम ने तो क्या की' ॥२॥

मियाँ आये हैं बेगारी पकड़ने।
'कहे देती है शोख़ी नक़शे पा की' ॥३॥
पुलिस ने और बदकारों को शह दी।
'मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' ॥४॥
जो काफ़िर कर गया मन्दिर में विद्अत।
'वो जाता है दुहाई है खुदा की' ॥५॥
शबे क़तलागरे के हिन्दुओं पर।
'हक़ीक़त खुल गई रोज़े जज़ा की' ॥६॥
ख़बर हाकिम को दें इस फिक्र में हाय।
'घटा की रात और हसरत बढ़ा की' ॥७॥
कहा अब हम मरे साहब कलक्टर।
'कहा मैं क्या करूँ मरज़ी खुदा की' ॥८॥
ज़मीं पर किसके हो हिन्दू रहें अब।
'खबर ला दे कोई तहतुस्सरा की' ॥९॥
कोई पूछे तो हिन्दुस्तानियों से।
'कि तुमने किस तवक्क़ा पर वफ़ा की' ॥१०॥
उसे मोमिन न समझो ऐ बरहमन।
'सताये जो कोई ख़िलक़त खुदा की' ॥११॥

त्रिवादी बढ़े हैं यहाँ कैसे कैसे।
'कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे कैसे ॥१॥
जहाँ देखिये म्लेच्छ सेना के हाथों।
'मिटे नामियो के निशाँ कैसे कैसे ॥२॥
बने पढ़ के गौरंड-भाषा द्विजाती।
'मुरीदाने पीरे-मुग़ाँ कैसे कैसे' ॥३॥

बसो मूर्खते देवि, आर्यों के जी में ।
 'तुम्हारे लिये हैं मकाँ कैसे कैसे' ॥४॥
अनुद्योग आलस्य सन्तोष सेवा ।
 'हमारे भी हैं मिहरबाँ कैसे कैसे ॥५॥
न आई दया···गो भक्षियों को ।
 'तड़पते रहे नीमजां कैसे कैसे' ॥६॥
विधाता ने याँ मक्खियाँ मारने को ।
 'बनाये हैं खुशरू जवाँ कैसे कैसे' ॥७॥
अभी देखिये क्या दशा देश की हो ।
 बदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे' ॥८॥
हैं निर्गन्ध इस भारती- वाटिका के ।
 'गुलो लाल ओ अरगवाँ कैसे कैसे' ॥ ६ ॥
हमैं वह दुखद हाय भूला है जिसने ।
 'तवाना किये नातवां कैसे कैसे' ॥ १० ॥
प्रताप अपनी (अव तो ?) होटल में निर्लज्जता के ।
 'मज़े लूटती है ज़बाँ कैसे कैसे' ॥ ११ ॥

रणागतपाल कृपाल प्रभो ! हम को इक आश तुम्हारी है ।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी है ॥
सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना विस्तारी है ।
प्रतिपाल करैं बिन ही बदले अस कौन पिता महतारी है ॥
जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जाति विथा संसारी है ।
बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो अस कौन निदान अनारी है ॥
परवाहि तिन्हे नहिं स्वर्गहु की जिनको तव कीरति प्यारी है ।
धनि है धनि है सुखदायक जो तव प्रेम सुधा अधिकारी है ॥
सब भाँति समर्थ सहायक हौ तव आश्रित बुद्धि हमारी है ।
परताप नारायण तौ तुम्हरे पद पंकज पै बलिहारी है ॥ १ ॥

पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुमही इक नाथ हमारे हौ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हौ॥
सब भाँति सदा सुखदायक हौ दुख-दुर्गुन नासनहारे हौ।
प्रतिपाल करौ सगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ।
भूलैं हमही तुम को तुमतौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हौ।
उपकारन को कछु अंत नहीं छिन ही छिन जो बिस्तारे हौ॥
महराज महा महिमा तुम्हरी समुझैं बिरले बुधिवारे हौ।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे! मन मन्दिर के उजियारे हौ॥
यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हौ।
तुम सो प्रभु पाय प्रताप हरी किहि के अब और सहारे हौ॥२॥

साधो मनुवा अजब दिवाना।
माया मोह जनम के ठगिया तिनके रूप लुभाना॥
छल परपंच करत जग धूनत दुख को सुख करि माना॥
फिकिर तहाँ की तनिक नहीं है अंत समय जहँ जाना॥
मुखते धरम धरम गोहरावत करम करत मन माना॥
जो साहब घट घट की जानै तेहि तै करत बहाना॥
तेहि ते पूछत मारग घर को आपहि जौन भुलाना॥
'हियाँ कहाँ सज्जन कर वासा' हाय न इतनौ जाना॥
यहि मनुवा के पाछे चलि के सुख का कहाँ ठिकाना॥
जो परताप सुखद को चीन्हे सोई परम सयाना॥

जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी॥
औसर चूके फिर पछितैहो हाथ मीजि सिर फोरी॥
काम करो नहिं काम न ऐहे बातें कोरी कोरी॥
जो कछु बीती बीत चुकी सो चिंता ते मुख मोरी।
आगे जामे बनै सो कीजै करि तन मन इक ठौरी॥

कोऊ काहु को नहिं साथी मात पिता सुत गोरी ॥
अपने करम आपने संगी और भावना भोरी ॥
सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी ॥
नाहि तु फिर परताप हरी कोऊ बात न पूछिहि तोरी ॥

मुद्दतों सीखे हैं इल्मे अंजुमो जुग़राफ़िया।
हैं कहाँ जन्नत कहीं लगता पता कुछ भी नहीं ॥
ख़ैर माना, है तो वाँ पर क्या है, जुज़ हूरो शराब।
सो वहीं से क्या है? इस दुनिया में क्या कुछ भी नहीं ॥
जुस्तजू उसके लिये करना जो य मौजूद है।
हज़रते वाइज़! हिमाक़त के सिवा कुछ भी नहीं ॥
सब्ज़ बाग अपने किसी बच्चे को जा दिखलाइये।
ऐसी बातों से बहकता दिल मेरा कुछ भी नहीं ॥
यां तो रिन्दों का अक़ीदा है बक़ौलै बरहमन।
बे मुहब्बत ज़िन्दगानी का मज़ा कुछ भी नहीं ॥

तब लखि हो, जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहुँ कहँ तरसत ॥
जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालैं।
ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहि पालैं ॥
नोन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगे जहँ।
चना चिरौंजी मोल मिलैं जहँ दीन प्रजा कहँ ॥
जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं।
देशिन के हित कछू तत्व कहुँ कैसेहु नाहीं ॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ रिन भारन।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥

पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुमही इक नाथ हमारे हौ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हौ।
सब भाँति सदा सुखदायक हौ दुख दुर्गुन नासनहारे हौ
प्रतिपाल करौ सगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ
भूलैं हमही तुम को तुमतौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हौ
उपकारन को कछु अंत नहीं छिन ही छिन जो बिस्तारे हौ
महराज महा महिमा तुम्हरी समुझैं बिरले बुधिवारे हौ
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे! मन मन्दिर के उजियारे हौ
यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हौ
तुम सो प्रभु पाय प्रताप हरी किहि के अब और सहारे हौ॥

साधो मनुवा अजब दिवाना।
माया मोह जनम के ठगिया तिनके रूप लुभाना॥
छल परपंच करत जग धूनत दुख को सुख करि माना
फिकिर तहाँ की तनिक नहीं है अंत समय जहँ जाना।
मुखते धरम धरम गोहरावत करम करत मन माना॥
जो साहब घट घट की जानै तेहि तै करत बहाना॥
तेहि ते पूछत मारग घर को आपहि जौन भुलाना॥
'हियाँ कहाँ सज्जन कर वासा' हाय न इतनौ जाना॥
यहि मनुवा के पाछे चलि के सुख का कहाँ ठिकाना
जो परताप सुखद को चीन्हे सोई परम सयाना॥

जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी
औसर चूके फिर पछितैहो हाथ मींजि सिर फोरी॥
काम करो नहिं काम न ऐहे बातें कोरी कोरी॥
जो कछु बीती बीत चुकी सो चिंता ते मुख मोरी।
आगे जामे बनै सो कीजै करि तन मन इक ठौरी॥

कोऊ काहु को नहिं साथी मात पिता सुत गोरी ॥
अपने करम आपने संगी और भावना भोरी ॥
सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी ॥
नाहि तु फिर परताप हरी कोऊ बात न पूछिहि तोरी ॥

मुद्दतों सीखे हैं इल्मे अंजुमो जुग़राफ़िया ।
हैं कहाँ जन्नत कहीं लगता पता कुछ भी नहीं ॥
ख़ैर माना, है तो वाँ पर क्या है, जुज़ हूरो शराब ।
सो वहीं से क्या है ? इस दुनिया में क्या कुछ भी नहीं ॥
जुस्तजू उसके लिये करना जो य मौजूद है ।
हज़रते वाइज़ ! हिमाक़त के सिवा कुछ भी नहीं ॥
सब्ज़ बाग अपने किसी बच्चे को जा दिखलाइये ।
ऐसी बातों से बहकता दिल मेरा कुछ भी नहीं ॥
यों तो रिन्दों का अक़ीदा है बक़ौले बरहमन ।
बे मुहब्बत ज़िन्दगानी का मज़ा कुछ भी नहीं ॥

तब लखि हो, जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत ।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहुँ कहँ तरसत ॥
जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालैं ।
ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहि पालैं ॥
नौन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगे जहँ ।
चना चिरौंजी मोल मिलैं जहँ दीन प्रजा कहँ ॥
जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं ।
देशिन के हित कछू तत्व कहुँ कैसेहु नाहीं ॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ रिन भारन ।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥

जहँ महीप लगि रजीडण्ट सों यहि डर डरहीं ।
अस न होय कहुँ तनक रूठि धन धामहिं हरहीं ॥
तहँ साधारन लोगन की तौ कहा चलाई ।
नित घेरे ही रहत दुसह दारिद दुचिताई ॥
यहि कर केवल हेतु यहै जो नए नए नित ।
कर अरु चन्दा देन परैं प्रति प्रजहि अपरिमित ॥
कछू काम कोउ करैं कहूँ ते कोऊ आवै ।
कहुँ कछु घटना होय हिन्द ही द्रव्य लगावै ॥
लेनहार सुख दुःख आय व्यय कबहुँ न पूछैं ।
देत देत सब भांति होहिं हम छिन छिन छूछैं ॥
जे अनुशासन करन हेत इत पठये जाहीं ।
ते बहुधा बिन काज प्रजा सों मिलत लजाहीं ॥
जिते दिवस ह्याँ रहहिं तितेकहु लघु अवसर महँ ।
जन रञ्जन हित करहिं न स्वीकृत कछुक कष्ट कहँ ॥
तनिकहु भोग विलास माहिँ त्रुटि करन न चहहीं ।
नेकहि ग्रीषम लखे पर्वतन कर पथ गहहीं ॥
निज इच्छा अनुसार करहिं सब सेत कृष्ण कृति ।
कछु दिन महँ चल देहिं विलायत यह कुजोग अति ॥
चलत जिते कानून इहाँ उनकी गति न्यारी ।
जस चाहहिं तस फेरि सकहिं तिन कहँ अधिकारी ॥
बड़े बड़े बारिस्टर बहुधा बकि बकि हारैं ।
पै हाकिम जन जस जिय चाहैं तस करि डारैं ॥
निर्धन निहछल निरसहाय कर कहुँ न निवाहू ।
धनिक चलाक सपच्छ पुरुष पावहिं जय लाहू ॥
प्रजा न जानहिं कौन इकट केहि अर्थ बन्यो कब ।
पै यह अचरज ! तेहि बन्धन महँ कसे रहैं सब ॥

समय परे पर खोय मान धन दण्ड सहै हैं।
घर वाहर के काज छोड़ि दौरतहि रहै हैं॥
उदर हेत जे शिर बेंचन पलटन महँ जाहीं।
गोरे रँग विनु ठीक आदरित वेऊ नाहीं॥
गौर स्याम रँग भेद भाव अस दस दिस छायो।
जिहि नेटिव-नामहिं कहँ तुच्छ प्रतिच्छ दिखायो॥
वे वधहू करि कवहुँ कवहुँ कोरे वचि जाहीं।
पै ये कहुँ कहुँ लकुट लेतहू धमकी खाहीं॥
उनके सुख हित जतन करत हाकिम सब रहहीं।
इनके जिय शत शंक उठहि जब निज दुख कहहीं॥

अम्बिकादत्त व्यास

साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने विहारी विहार में "संक्षिप्त निज वृत्तान्त" स्वयं लिखा है। उनके ही शब्दों में हम यहाँ उनके संक्षिप्त वृत्तान्त का भी संक्षिप्त उद्धृत करते हैं। इससे पाठकों को जीवनी के साथ ही साथ व्यास जी के गद्य का भी ढंग मालूम हो जायगा।

"राजपुताने मे जयपुर के समीप भानपुर (मानपुर) नामक ग्राम चिरकाल से प्रसिद्ध विद्वत्थान है। वहां के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पं० ईश्वरराम जी गौड़ थे*। इनके प्रपौत्र पंडित हरिजी रामजी राजाश्रय के कारण रावतजी

* कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि डेढ़ दो सौ वर्ष और पहले ये मडावा ग्राम से आये थे।

की धूला नामक ग्राममें रह गये। परंतु उनके पुत्र पंडित राजा-रामजी धूला से सम्बन्ध छोड़ सकुटुम्ब काशी में आ बसे, और अपने गुण गौरव से काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी कहाये। इनके अनेक संतानों में चिरंजीवी दोही पुत्र हुए, ज्येष्ठ पंडित दुर्गादत्तजी और कनिष्ठ पंडित देवीदत्तजी। ये पंडित दुर्गादत्तजी वेही हैं जो कविमंडल में दत्त कवि प्रसिद्ध हैं।

ये कभी जयपुर में भी जाके कुछ दिन रह जाते थे और कभी काशी में भी रहते थे। इनके द्वितीय पुत्र का जन्म जयपुर ही में सिलावटों के महल्ले में सं० १९१५ चैत्र शुक्ल ८ को हुआ। वही मैं हूँ। सं० १९१९ में मेरे पूज्य पिता पंडित दुर्गादत्तजी जयपुर से काशी आये।

शास्त्रानुसार पंचम वर्ष से मेरी शिक्षा का आरंभ किया गया। मेरी माता, बड़ी बहनें और दादी तथा चाची भी पढ़ी थीं। मेरी शिक्षा चतुरस्र होने लगी। दस वर्ष के वय मे मैं हिन्दी भाषा में कुछ कुछ कविता करने लग गया था। परंतु मेरी कविता जो सुनता था, वह कहता था कि इनकी बनाई कविता नहीं है पिताजी से बनवाई है। सं० १९२९ में जोध-पुर के राजगुरु ओझा तुलसीदत्तजी काशी में आये। इनने भी मेरी कविता सुन वही आशंका की कि इस छोटे वय में ऐसी अच्छी कविता का होना बहुत कठिन है। इस संदेह की निवृत्ति के लिए उनने एक दिन समस्या दी और कहा कि मेरे सामने पूरी करो।

समस्या—मूँदि गईं आंखैं तब लाखैं कौन काम की।

मैंने तत्क्षण कवित्त बनाया सो यह है:—

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु
सोहत चहूँधा धूम धाम धन धाम की ।
फूल फुलवारी फल फैलि कै फबे हैं तऊ
छवि छटकीली यह नाहिन अराम की ॥
काया हाड़ चाम की लै राम की बिसारी सुधि
जामकी को जानै बात करत हराम की ।
अम्बादत्त भाखैं अभिलाषैं क्यों करत झूठ
मूँदि गईं आंखैं तब लाखैं कौन काम की ॥

ओझाजी ने पारितोषिक, सर्वाङ्ग के दिव्य वस्त्र तथा प्रशंसापत्र देकर गुणग्राहिता प्रकट की। गुणियों के समाज में इसी समय मेरा नाम फैला।

ग्यारह वर्ष के वय में मैं अमरकोष, रूपावली और कुछ काव्य समाप्त कर पंडित कृष्णदत्तजी से लघुकौमुदी पढ़ने लगा। श्रीमद्भागवत दशम स्कंध पिताजी से पढ़ता था। और पंडित ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य के यहां साहित्य दर्पण और सिद्धान्त लक्षण पढ़ना आरंभ किया।

जिस समय मेरा बारह वर्ष का वय था उसी समय एक तैलङ्ग वृद्ध अष्टावधान काशी में आये और प्रसिद्ध गुणिप्रिय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के यहां अपना अष्टावधान कौशल दिखलाया। बाबू हरिश्चन्द्रजी ने पंडितों की ओर दृष्टि देकर कहा कि इस समय काशीवासी भी कोई चमत्कार इनको दिखलाते तो काशी का नाम रह जाता। यह सुन सब तो चुप रहे परंतु मेरे पूज्य पिता ने कहा कि अच्छा यह बालक एक सरस्वती मंत्र कविता करता है सो देखिये। मेरे आगे लेखनी, मसि, पत्र खसकाये गये। मैंने एक पत्र पर आठ

आठ कोष्ठ की चार पंक्ति वाला आयत यंत्र बनाया और पूछा कि किस पदार्थ का वर्णन हो। बाबू हरिश्चन्द्र के सहोदर अनुज बाबू गोकुलचन्दजी ने कौतुकपूर्वक कहा कि इस घड़ी का वर्णन कीजिए। मैंने कहा "इन कोष्ठों में जहां जहां कहिये मैं कोई कोई अक्षर लिखता जाऊँ सूधा बांचने में श्लोक होगा"। इसका भावार्थ तैलङ्ग शतावधान को समझा दिया गया, वे जिस जिस कोष्ठ में बताते गये वहां वहां मैं अक्षर लिखता गया, अंत में यह श्लोक प्रस्तुत हुआ।

घटी सुवृत्ता सुगति र्द्वादशाङ्क समन्विता।
उन्निद्रां सततं भाति वैष्णवीव विलक्षणा॥

साधुवाद के अनन्तर शतावधान ने कहा—"सुकविरेषः" बाबू हरिश्चन्द्रजी ने "इससे बढ़ के आपको क्या दें" कहा, ए प्रशंसापत्र लिख दिया, उसमें "काशी कविता वर्द्धिनी सभा से सुकवि पद मिला, इसकी सूचना दी।

तेरह ही वर्ष के वय मे मैं पितृचरण सहित डुमरांव रा धानी में आया। यहां के राजा महाराज राधिकाप्रसाद सि मेरी कविता सुन अति प्रसन्न हुये।

क्रमशः मुझको इधर तो सांख्ययोग वेदान्त पढ़ने का व्यस हुआ और उधर संगीत मे सितार, जलतरंग, नसतरंग आ का। सं० १६३२ में काशी के गवर्नमेंट कालिज मे एँग संस्कृत विभाग में मैंने नाम लिखाया। अंग्रेज़ी भी कुछ कु समझ चला। अपने बहनोई पंडित वासुदेवजी से जीवनादि छोटे छोटे वैद्यक ग्रंथ भी पढ़ने लगा। मैंने बंगभा में भी परिश्रम आरंभ किया और धीरे धीरे हिन्दी के लिखने लगा। इन दिनों मेरा और भारत जीवन के सम्पा

बाबू रामकृष्ण का अधिक संघट्ट रहता था और बाबू देवकीनन्दन, बाबू अमीर सिंह और बाबू कार्तिकप्रसाद प्रभृति हम लोगों के अंतरंग मित्र थे।

महाराज मिथिलेश का राज्याभिषेक समय आसन्न था, उनके पं० युगल किशोर पाठकजी के द्वारा राजाज्ञा पाकर मैंने महाराज के लिए प्रसिद्ध सामवत नाटक बनाया।

सं० १९३४ मे एंग्लो की उत्तम वर्ग तक की पढ़ाई मैंने समाप्त की। इसी वर्ष अभिनव स्थापित काश्मीराधीश के संस्कृत कालेज में मैंने नाम लिखवाया। वहां परीक्षा दी। कालिज की प्रधान अध्यक्षता जगत्प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द जी के हाथ में थी, इनने यावत्पण्डितों के समक्ष मुझे व्यास पद दिया। यों तो मैं पहले ही से व्यास जी कहा जाता था, परंतु अब वह पद और भी पक्का हो गया।

सं० १९३७ मे काशी गवर्नमेंट कालिज में मैंने आचार्य परीक्षा दी। इस वर्ष साहित्य मे १३ और व्याकरण में १५ छात्र परीक्षा देने गये थे, उनमें साहित्य से केवल मैं उत्तीर्ण हुआ और व्याकरण में २ छात्र उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के कारण गवर्नमेंट से मुझे साहित्याचार्य पद मिला। सं० १९३१ में तो मेरी माता का परलोक होगया था, सं० १९३७ के आरंभ ही में मेरे पूज्य पिता का भी काशीवास हो गया। इस कारण मैं अति दुःखित था, ऋण अधिक हो गया, और आश्चर्य यह है कि इसी अवस्था में मुझे आचार्य परीक्षा पास करना पड़ा था जो ईश्वर की कृपा ही से हुआ।

थोड़े ही दिनों के अनन्तर पोर बन्दर के गोस्वामी वल्लभ कुलावतंस श्री जीवनलाल जी महाराज से मुझे परिचय हुआ।

वे मुझसे कुछ पढ़ने लगे, उनके साथ साथ कलकत्ते गय
वहाँ सनातन-धर्म के विभिन्न विषयों पर मेरी २८ वक्तृत
हुईं। कई सभाओं में वङ्गदेशीय पण्डितों से गहन शास्त्र
हुए।

काशी में आने पर मैंने वैष्णव पत्रिका नामक मासि
पत्र निकाला। उस समय मुझे ऐसा अभ्यास हो गया थ
कि २४ मिण्ट में १०० श्लोक बना लेता था। इसको देख क
काशी के ब्रह्मामृत-वर्षिणी सभा के सभ्य पण्डितों ने स
१९३८ के माघ मास में मुझे "घटिकाशतक" पद सहि
एक चाँदी का पदक दिया।

जीविका के अभाव से मैं कष्टग्रस्त था, और ऋण सि
पर सवार था। सं० १९४० में बनारस कालिज के प्रिंसिप
ने मुझे मधुबनी संस्कृत स्कूल का अध्यक्ष बना दरभंगे ज़ि
में भेज दिया। (सं० १९४३ में) इन्स्पेक्टर ने मुज़फ़्फ़रपुर जि
स्कूल में मुझे हेड पण्डित नियत किया। (सं० १९४४
भागलपुर ज़िला स्कूल क्षतिग्रस्त हो रहा था, इन्स्पेक्टर
मुझे वहाँ भेज दिया। सं० १९४५ में सामवत नाटक खड्ग
लास में छप कर तैयार हुआ। महाराज मिथिलेश के अपि
हुआ। महाराज बहादुर ने भी अपनी योग्यतानुसार मे
सम्मान किया। सं० १९४८ में बिहारी बिहार कई वर्ष
परिश्रम से मैंने बनाकर समाप्त किया। पर किसी ने थ
पुस्तक हस्तलिखित ही चुरा लिया। पुनः इसको बहुत श्र
से तैयार किया। सं० १९५० में छुट्टी लेकर देश-भ्रमण
लिए मैं चला। काशी की महासभा में काँकरौली नरे
गोस्वामी बालकृष्णलाल महाराज ने मुझे "भारतरत्न"
सहित सुवर्ण-पदक दिया। सनातन-धर्म महामण्डल दिल्ली

"विहारभूषण" पद के साथ सोने का तगमा मुझे मिला। महाराजाधिराज श्री अयोध्यानरेश ने मुझे "शतावधान" पद सहित सुवर्ण पदक तथा सम्मान-पत्र दिये और बम्बई में श्री गोस्वामी घनश्याम लाल जी महाराज ने सभा कर भारत भूषण पद सहित सुवर्ण पदक दिया।

एक समय महाराज जयपुर के प्रधान सेनापति ठाकुर हरिसिंह ने मुझे वेद के मन्त्रार्थ की समस्या दी। मैं उसी दिन आमेर का महल * देख के आया था सो यह पूर्ति की—

प्रविष्टो राजभवने प्रतिबिम्बैर्न को भवेत्।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥"

भागलपुर से व्यास जी की बदली छपरा को हुई थी। उस समय व्यास जी की संतान में सात वर्ष के एक पुत्र राधाकुमार ? और एक कन्या थी। व्यास जी ने यहाँ तक अपनी जीवनी स्वयं लिखी है, जो बिहारी बिहार में प्रकाशित है। इसके बाद इन्हें गवर्नमेंट पटना कालेज में प्रोफेसर का पद मिला। परन्तु ये शरीर से अस्वस्थ रहते थे, मानो दैव ने उस पद का भोग इनके भाग्य में लिखा ही न था। सं० १९५७ (१९ नवम्बर सन् १९००) में, काशी में व्यास जी ने शरीर त्याग किया।

---

* इसी महल की प्रशंसा में विहारी ने भी कहा है:—

प्रतिबिम्बित जयसाह दुति, दीपति दर्पन धाम।
सब जग जीतन को कियो कायव्यूह जनु काम॥

? खेद है कि पंडित राधाकुमार का भी इस वर्ष (१९७७ में) देहान्त हो गया।

विहार में जो सब से बड़ा काम व्यास जी ने किया, वह संस्कृत संजीवनी समाज का स्थापित करना है। इस समाज के द्वारा बिहार की अनिश्चित शिक्षा-प्रणाली का ऐसा सुधार हुआ कि जिससे अब सैकड़ों छात्र प्रति वर्ष संस्कृत शिक्षा पाकर उपाधि प्राप्त करते हैं। व्यास जी शतावधान थे। अनेक गुणों के लिए प्रख्यात थे, राजा महाराजाओं के यहाँ सम्मान पाते थे। संस्कृत के सिवाय बंगला, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी आदि भाषायें भी जानते थे, किन्तु इतने पर भी अर्थाभाव से दुःखी और ऋणग्रस्त थे।

व्यास जी ने छोटी बड़ी मिलाकर संस्कृत और हिन्दी में कुल ७८ पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से कुछ प्रकाशित, कुछ अप्रकाशित और कुछ अपूर्ण हैं। सब पुस्तकों के नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

प्रस्तार दीपक, गणेश शतक, शिव विवाह, सांख्य सागर सुधा, पातञ्जल प्रतिबिम्ब, कुण्डली दर्पण, सामवत नाटक, इतिहास संक्षेप, रेखा गणित (श्लोकबद्ध), ललिता नाटिका, रत्नपुराण, आनन्द मंजरी, चिकित्सा चमत्कार, अबोध निवारण, गुप्त शुद्धि प्रदर्शन, ताश कौतुक पचीसी, समस्या पूर्ति सर्वस्व, रसीली कजरी, द्रव्य स्तोत्र, चतुरंग चातुरी, गोसंकट नाटक, महाताश कौतुक पचासा, तर्क संग्रह भाषाटीका, सांख्य तरंगिणी, क्षेत्र कौशल, पंडित प्रपंच, आश्चर्य वृत्तान्त, छन्दः प्रबंध, रेखागणित भाषा, धर्म की धूम, दयानन्द मत मूलोच्छेद, दुःख द्रुम कुठार, पावस पचासा, दोषग्राही ओ गुणग्राही, उपदेश लता, सुकवि सतसई, मानस प्रशंसा, आर्य भाषा सूत्रधार, भाषा भाष्य, पुष्पवर्षा, भारत सौभाग्य, बिहारी बिहार, रत्नाष्टक, मन की उमंग,

कथा कुसुम, पुष्पोपहार, मूर्ति पूजा, संस्कृताभ्यास पुस्तक, कथा कुसुम कलिका, प्राकृत प्रवेशिका, संस्कृत संजीवन, प्राकृत गूढ़ शब्द कोष, अनुष्टुब्लक्षणोद्धार, शिवराज विजय, बाल व्याकरण, हो हो होरी, झूलन झमंक, स्वर्ग सभा, विभक्ति विभाग, पढ़े पढ़े पत्थर, सहस्र नाम रामायण, गद्य काव्य मीमांसा (संस्कृत), मरहट्टा नाटक, साहित्य नवनीत, वर्ण व्यवस्था, विहारी चरित, आश्रम धर्म निरूपण, अवतार कारिका, अवतार मीमांसा, विहारी व्याख्याकार चरितावली, पश्चिम यात्रा, स्वामि चरित, शीघ्र लेखप्रणाली, गद्य काव्य मीमांसा (हिन्दी), घनश्याम बिनोद, राँची यात्रा, निज वृत्तान्त ।

"विहारी विहार" में व्यास जी ने विहारी के दोहों पर कुंडलियाँ रची हैं। विहारी ने दोहे रूपी छोटे छोटे घड़ों में जो अमृत भरा है, व्यास जी ने कुंडलियो की लपेट से उसे छलका कर बाहर लाने का प्रयत्न किया है । यहाँ हम व्यास जी की हिन्दी कविता के कुछ नमूने उनके ग्रन्थो से उद्धृत करते हैं:–

[१]

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे, श्याम हरित दुति होय ॥
श्याम हरित दुति होय परत तन पीरी झाईं ।
राधाहू पुनि हरी होत लहि स्यामल छाईं ॥
नयन हरे लखि होत रूप अरु रङ्ग अगाधा ।
"सुकवि" जुगुल छवि धाम हरहु मेरी भव बाधा ॥

[२]

सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात ॥

आतप पस्यो प्रभात ताहि सों खिल्यो कमल मुख ।
अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख ॥
चकवा से दोउ नैन देखि इहिं पुलकत मोहत ।
"सुकवि" विलोकहु स्याम पीतपट ओढ़े सोहत ॥

[३]

इन दुखियाँ अँखियान कौं सुख सिरजोही नाहिं ।
देखै बनैं न देखते अनदेखे अकुलाहिं ॥
अनदेखे अकुलाहिं हाय आँसू बरसावत ।
नेह भरेहू रूखे ह्वै अति जिय तरसावत ॥
"सुकवि" लखतहू पलक कलप सत सरिस सुहाइ ना ।
प्रान जाइ जो तोऊ दोऊ दृग को दुख जाइ न ॥

[४]

गुंजा री तू धन्य है, बसत तेरे मुख स्याम ।
यातें उर लाये रहत, हरि तोकों बसु जाम ॥

[५]

खसना दसना सों घिरा, बनो झूठ को ठाम ।
रसना रस ना जगत मैं, कस ना भाषति स्याम ॥

[६]

मोर सदा पिउ पिउ करत, नाचत लखि घनश्याम ।
यासो ताकी पाँखहू, सिर धारी घनश्याम ॥

लाला सीताराम





ला सीताराम का जन्म २० जनवरी सन् १८५८ को अयोध्या में हुआ। ये जाति के श्रीवास्तव (दूसरे) कायस्थ हैं। इनके पूर्वज पहले जौनपुर में रहते थे, किन्तु इनके पिता बाबा रघुनाथदास के शिष्य थे, इससे वे अयोध्या में जा बसे थे।

लाला सीताराम का विद्यारम्भ बाबा रघुनाथदास ने ही कराया था। पीछे से एक मौलवी साहब इन्हें उर्दू फ़ारसी पढ़ाने के लिए नियत हुये। मौलवी साहब हिन्दी भी जानते थे। इन्होने उनसे हिन्दी भी सीख ली। इनके पिता वैष्णव धर्मावलम्बी थे। उन्हें धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थो से बड़ा प्रेम था। इनके संसर्ग से इन्हें भी उन ग्रन्थों के पढ़ने का शौक हुआ। इसीसे धर्म की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के साथ ही साथ इन्हें हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान हो गया।

इनका क्रमशः संक्षिप्त जीवन-चरित्र इस प्रकार है:—

विद्योपार्जन।

सात बरस की अवस्था से घरपर फ़ारसी, अरबी, हिन्दी पढ़कर जुलाई १८६६ ईस्वी में अयोध्या स्कूल के चौथे क्लास में भरती हुये, सितम्बर मास की परीक्षा में कक्षा से पहिला नम्बर पाकर उत्तीर्ण हुये। दो बरस में चार क्लास उत्तीर्ण

स्कृत अध्ययन किया और वेद, उपनिषद, ज्योतिष, दर्शन
ास्त्र, काव्य, नाटक पढ़ डाले और भाषा कविता करने लगे।

१८८७ ई० में फैजाबाद की बदली हुई, पर तीन महीना
ोछे कानपुर हाईस्कूल के हेडमास्टर कर दिये गये।

इसी साल एक महीना पीछे इलाहाबाद डिवीज़न के
सिस्टेंट इंस्पेक्टर हुये।

१८८८ ई० में मेरठ हाई स्कूल के हेड मास्टर हुए। पत्नी
रोगग्रस्त होने के कारण छुट्टी लेली।

१८८६ ई० में फैज़ाबाद अपने स्थान पर लौट आये।

१८८३ ई० में फैज़ाबाद हाई स्कूल के हेड मास्टर रहे और
ो बरस तक कालेज के दर्जे को पढ़ाया। जिसका परिणाम
ह हुआ कि उनके शिक्षित लड़कों ने परीक्षा में प्रथम और
द्वितीय स्थान पाया।

१८६४ ई० में आगरे के असिस्टंट इंस्पेक्टर हुये।

१८६५ ई० में डिप्टी कलक्टर हुये और १६११ में ३२ बरस
ारकार की सेवा करके पेन्शन ले ली।

साहित्य सेवा

१८७६ ई० में कालेज छोड़ने पर उर्दू के प्रसिद्ध समाचार
त अवध अख़बार में तीन बरस तक विज्ञान-विषयके लेख
लिखे।

१८८१ ई० में उर्दू में मिस्बाहुल अर्ज़ (प्राकृतिक भूगोल)
छपाया।

१८८२ ई० में उर्दू में शेक्सपियर के तीन नाटकों का अनु-
ाद किया।

१८८३ ई० में मेघदूत का और चाणक्य शतक का पद्यात्मक
ाषानुवाद छपाया।

१८८४ ई० में पार्वती पाणिग्रहण के नाम से
के सात सर्गों का पद्यात्मक भाषानुवाद छपाया। इसी
शेक्सपियर के कमिडी आफ़ एरर्स का उर्दू अनुवाद
भुलैयाँ के नाम से छपा।

१८८५ ई० में श्रीसीताराम चरितामृत के नाम से
के सात सर्गों का पद्यात्मक भाषानुवाद प्रकाशित किया
और पंचतन्त्र का पाँचवाँ तंत्र भी भाषा गद्य पद्य में छपा।

१८८६ ई० में रघुवंश के सात सर्गों का पद्यात्मक
नुवाद रघुचरित के नाम से छपा।

१८८७ ई० में नागानन्द का गद्य पद्यात्मक भाषानुवाद

१८८८ ई० में शेक्सपियर के मच अडू अबौट नथिंग
उर्दू अनुवाद दाम मुहब्बत छपा।

१८६० ई० में शेक्सपियर के टेम्पेस्ट का उर्दू अनु
दरियाय तिलिस्म नाम से छपा।

१८६१ ई० में श्रीअयोध्या नरेश की आज्ञा से शंकरोपास
चिह्न छपा।

१८६२ ई० में सावित्री और संपूर्ण रघुवंश का पद्यात
भाषानुवाद प्रकाशित किया गया।

१८६३ में मेघदूत आदि के साथ ऋतु संहार का भाषा
वाद छपा। शेक्सपियर का लियर उर्दू में छपा।

१८६७ ई० में प्राचीन नाटक मणिमाला के तीन ना
महावीर चरित, उत्तमरामचरित, मालती माधव के भाषानु
छपे।

१८६८-६६ ई० में शेष तीन नाटक मालविकाग्निमित्र, मृ
कटिक और नागानन्द (शुद्ध करके) छापे गये।

१९०० ई० में हिन्दी शिक्षावली के छ भाग लिखे गये।

१९०१ ई० में प्रजा के कर्त्तव्यकर्म नामक ग्रन्थ अनुवादित किया गया।

१९०२ ई० में किरातार्जुनीय का पूर्वार्द्ध भाषा छन्दों में प्रकाशित किया गया। इसी साल हितोपदेश पूर्वार्द्ध का भाषानुवाद छपा।

१९०३ ई० में हितोपदेश उत्तरार्द्ध का भाषानुवाद प्रकाशित किया गया।

१९०४ ई० में प्राचीन ज्योतिष मरीचिमाला का अंकगणित प्रकाशित किया गया।

१९०५ ई० में इपिकटिटस का उर्दू अनुवाद प्रकाशित किया गया। इसी साल इंडियन प्रेस रीडर्स की आलोचना की गई और गुलस्ताँ पूर्वार्द्ध का भाषानुवाद नीतिबाटिका के नाम से लिखा गया।

१९०७ ई० में प्राचीन ज्योतिष मरीचिमाला का दूसरा अंक बीजगणित प्रकाशित हुआ।

१९१३ ई० में भारतवर्ष का इतिहास छपा।

१९१४ ई० में भारतीय इतिहास के नायक, हिन्दुस्तान के इतिहास की सरल कहानियाँ, सूर्यकुमारी सीताराम, कृष्णचन्द की बाललीला, पंचतंत्र की कहानियाँ छपीं और मैकमिलन की स्टोर्स रीडर्स के ५ भाग फिर से लिखे गये।

१९१५ ई० में शेक्सपियर के ५ नाटकों के अनुवाद रामकथा और महाभारत के उपाख्यान अबतक छप चुके हैं।

लाला सीताराम बड़े विद्याव्यसनी हैं। इस समय ये युक्त प्रदेश की सरकार के रिपोर्टर, टेक्स्टबुक कमिटी के

मेम्बर और स्पेशल मजिस्ट्रेट हैं। इतने झंझटों के होते हुये इस वृद्धावस्था में भी ये हिन्दी साहित्य की उन्नति करते रहते हैं। आजकल तुलसीदास कृत अयोध्याकांड, राजापुर की प्रति से ठीक ठीक मिलाकर छपवा रहे हैं। कलकत्ता युनिवर्सिटी के लिए इन्होंने छः खंडों में हिन्दी का कोर्स बड़े परिश्रम से तैयार किया है, वह भी छप रहा है। इन्हीं दिनों इनका लिखा हुआ सिरोही राज्य का इतिहास (अँगरेज़ी में) छप कर प्रकाशित हुआ है।

लाला सीताराम सीताराम के बड़े भक्त हैं। सरकारी काम से इन्हें जो कुछ अवकाश मिलता है, उसे ये भगवद्भजन या साहित्य के अनुशीलन में लगाते हैं। हिन्दी साहित्य के सर्वोत्तम ज्ञाताओं में से ये एक हैं। भारतधर्म महामण्डल ने इनको साहित्य-रत्न की उपाधि दी है।

इनके चार पुत्र हैं। चारो ग्रेजुएट हैं। एक डाक्टरी पढ़ रहा है, तीन भिन्न भिन्न विभागों में सरकारी नौकर हैं।

लाला सीताराम निम्नलिखित भिन्न भिन्न सरकारी और ग़ैर सरकारी संस्थाओं के सदस्य, सहायक और कार्यकर्ता रह चुके हैं। और इनमें से कितने पदों पर अभी तक ये हैं भी।

१-आनरेरी फेलो आफ़ दि युनिवर्सिटी आफ़ एलाहाबाद।
२-मेम्बर आफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ़ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड।
३-मेम्बर आफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बँगाल।
४-मेम्बर आफ़ प्रोविंशल टेक्स्ट बुक कमिटी यू० पी०
५-मेम्बर आफ़ प्रोविंशल म्यूज़ियम कमिटी।
६-मेम्बर आफ़ एलाहाबाद पब्लिक लाइब्रेरी कमिटी।

७-मेम्बर आफ़ यू० पी० हिस्टोरिकिल सोसाइटी।
८-जेनरेल सेक्रेटरी वर्नाक्युलर साइंटिफ़िक सोसाइटी।
९-मेम्बर आफ़ आल इण्डिया मिंटो मेमोरियल कमिटी।
१०-एग्ज़ामिनर इन कलकत्ता एण्ड एलाहाबाद युनिवर्सिटी।
११-वाइस प्रेसिडेंट हिन्दू सभा, एलाहाबाद।
१२-प्रेसिडेंट स्मार्त धर्मावलम्बिनी सभा।
१३-आनरेरी लेकचरर आन रेलिजन एन्ड मोरेलिटी टू दी जुवेनाइल्स इन एलाहाबाद न्सेंट्रल प्रिज़न।
१४-मेम्बर आफ़ दी रूरल एजुकेशन एण्ड एक्सपर्ट कमिटी, डिस्ट्रिक फैमिन रिलीफ कमिटी एलाहाबाद, डिस्ट्रिक वार फंड कमिटी, डिस्ट्रिक्ट वार लोन कमिटी इत्यादि।

लाला सीताराम हिन्दी, अँग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी, फ्रेंच, संस्कृत, बँगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं तथा कई बोलियों के ज्ञाता हैं।

यहाँ हम रघुवंश के पद्यानुवाद में से लाला जी की रचना का कुछ नमूना उद्धृत करते हैंः—

रघुवंश

भये प्रभात धेनु ढिग जाई। पूजि रानि माला पहिराई॥
बच्छ पियाइ बाँधि तब राजा। खोल्यो ताहि चरावन काजा॥
परत धरनि गो चरन सुहावन। सो मग धूरि होत अति पावन॥
चली भूप तिय सोइ मग माँही। स्मृति श्रुति अर्थ संग जिमि जाहीं॥
चौ सिन्धुन थन रुचिर बनाई। धरनिहिं मनहु बनी तहँ गाई॥
प्रिया फेरि अवधेश कृपाला। रक्षा कीन्ह तासु तेहिं काला॥
ब्रत महँ चले गाय करि आगे। सेवक शेष सकल नृप त्यागे॥
इक केवल निज वीर्य्य अपारा। मनु सन्तति तन रक्षनहारा॥

कबहुँक मृदु तृन नोचि खिलावत। हाँकि माछि कहुँ तनहिँ खुजावत॥
जो दिसि चलत चलत सोई राहा। यहि विधि तेहि सेवत नरनाहा॥
जहँ बैठी सोइ धेनु अनूपा। बैठे तहहिँ अवधपुर भूपा॥
खड़े ताहि ठाढ़ी नृप जानी। चले चलत धेनुहि अनुमानी॥
पियत नीर कीन्हों जल पाना। रहे तासु सँग छाँह समाना॥
राज चिह्न यद्यपि सब त्यागे। तऊ तेज बस नृप सोइ लागे॥
छिपे दान रेखा के संगा। होत मनहु मद मत्त मतंगा॥
केश लता सब बाँधि बनाये। बन बिचस्यो धनु बान चढ़ाए॥
ऋषय धेनु रक्षक जनु होई। आयो पशुन सुधारन सोई॥
बरुन सरिस धरि तेज प्रभाऊ। चले जदपि सेवक बिनु राऊ॥
तरु पंछिन करि शब्द सुहावा। जनु चहुँ दिसि जयघोष सुनावा॥
जानि निकट कोशलपति आए। फूल वायु बस लता गिराए॥
जिमि नरेश निज पुर जब आवहिं। धान नगर कन्या बरसावहिं॥
चले जदपि नृप कर धनु धारी। तउ दयाल तेहि हरिनि बिचारी॥
निरखत तासु शरीर मनोहर। लोचन फल पायो तेहि अवसर॥
भरि भरि पवन रन्ध्र युत बाँसा। वेणु शब्द तब करत प्रकासा॥
बन देविन कुंजन महँ जाई। नृप कीरति तहँ गाइ सुनाई॥
जानि घाम बस म्लान शरीरा। लै सुगन्ध सोइ मिलत समीरा॥
बन रक्षक तेंहि आवत जानी। विना वृष्टि बन अग्नि बुझानी॥
बाँध्यो सबल निबल पशु नाहीं। भे फल फूल अधिक बन माहीं॥
करि पवित्र दिसि चहुँ दिसि जाई। धेनु साँझ आश्रम कहँ आई॥
यज्ञ श्राद्ध साधन सोई साथा। इमि सोहत तहँ कोशल नाथा॥
श्रद्धा मनहुँ दृश्य तनु धारी। सोहत सन्त प्रयत्न मझारी॥
जल सन उठत वराह समूहा। चलत रूखा दिश नभचर जूहा॥
हरी वास जहँ वैठ कुरंगा। चल्यो लखन सोइ सौरभि संगा॥
एक भरे थन भार दुखारी। धरे शरीर एक अति भारी॥

मन्द चाल सन दोउ तहँ आई। तपवन सोभा अधिक बढ़ाई॥
चलत बशिष्ठ धेनु के पाछे। लौटत अवध भूप छबि आछे॥
प्यासे दृगन विलास बिसारी। लख्यो ताहि मगधेस कुमारी॥
आगे खड़ी रानि मग माहीं। पीछे भूप मनहु परछाहीं॥
सोहत बीच्च धेनु यहि भाँती। संध्या संग मनहुँ दिन राती॥
अछत पात्र कर धरे सयानी। फिरीगाय चहुंदिसि सतबरानी॥
चरनि वन्दि गो माथ विसाला। पूज्यो अवध रानि तेहि काला॥
मिलन हेत बच्छहिं अकुलानी। यद्यपि रहीं धेनु गुन खानी॥
पूजन काज रही सोई ठाढ़ी। सो लखि प्रीति भूप मन बाढ़ी॥
समरथ चहत देन फल जेही। प्रथम प्रसाद जनावत तेही॥
पुनि सन्ध्या बिधि नृप निपटाई। सादर गुरु पद कमल दबाई॥
जिन नृप भुज बल शत्रु गिराए। दुहन अन्त गो सेवन आए॥
पुनि पत्नी सँग भूप दिलीपा। धारि धेनु आगे बलि दीपा॥
सोए तहँ तेहिँ सोवत जानी। जागे जगी धेनु अनुमानी॥
सन्तति हित सेवत यहि भाँती। बीते त्रिगुण सप्त दिन राती॥
भक्त चित्त परखन इक बारा। हिम गिरि गुहा धेनु पग धारा॥
मनहुं न सकहिँ जन्तु यहि मारी। यह नरेश मन माँहि विचारी॥
नग छवि लगे लखन नरराई। धेनुहि धस्यो सिंह इक धाई॥
तड़पत सिंह गुहा के द्वारा। भयो तुरत तहँ शब्द अपारा॥
भूप दृष्टि भूधर पति लागी। परी धेनु पर नग दिसि त्यागी॥
सिंहहि लख्यौ धेनु पर कैसा। गेरू गुहा लोध तरु जैसा॥
भयो क्रोध नाहर वध काजा। खैंचन चह्यो तीर तब राजा॥
नख छबि कंक पत्र महँ डारी। अँगुरिनविशिखपुंख तहँ धारी॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा

कविराज पंडित नाथूराम शङ्कर शर्मा का जन्म संवत् १९१६ की चैत्र शु० पंचमी को हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ था। इनके पिता पं० रूपराम जी शर्मा गौड़ ब्राह्मण थे। शङ्कर जी की माता इन्हें साल सवा साल का छोड़ कर परलोकवासिनी हो गई थीं। अतएव बचपन में इनका लालन पालन इनकी नानी और बुआ ने किया था।

शङ्कर जी, पढ़ाई समाप्त करके कानपुर चले गए और वहाँ नहर के दफ़्र में नक़शानवीस होगए। कानपुर में कोई साढ़े छै बरस रहकर ये फिर हरदुआगंज वापिस आए और इन्होंने चिकित्सा कार्य प्रारम्भ कर दिया। इनकी चिकित्सा की बड़ी प्रसिद्धि हुई। अब ये पीयूषपाणि वैद्य समझे जाते हैं।

शङ्कर जी को कविता करने का शौक़ कोई तेरह साल की अवस्था से है। ये स्कूल में पढ़ते समय इतिहास और भूगोल के पाठ को पद्य का रूप देकर याद किया करते थे। इस प्रकार के पचासों शेर इनको अबतक याद हैं। कानपुर में स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र से इनकी गहरी मित्रता हो गई थी। वहाँ खूब साहित्य चर्चा रहती थी। कानपुर से लौटने पर शङ्कर जी की प्रतिभा शक्ति का खूब विकास हुआ। उस समय समस्यापूर्ति सम्बन्धी पत्रों और कवि समाजों का

बड़ा ज़ोर था । सभी साहित्यसेवी सज्जन पूर्तियाँ करते थे, पर शङ्कर जी की पूर्तियाँ विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं । इनका नम्बर प्रायः सबसे ऊँचा रहता था । इनको उत्तम पूर्तियों के उपलक्ष में पदक, पुस्तक, उपाधि, घड़ी, पगड़ी, दुशाले आदि उपहार-स्वरूप मिले । जिन्हें इस विषय में अधिक जानना हो और समस्यापूर्तियाँ पढ़नी हों उन्हे 'कवि व चित्रकार' काव्य सुधाधर, रसिकमित्र आदि पत्रों की पुरानी फ़ायलें देखनी चाहिए ।

इसके बाद शङ्कर जी ने सामयिक प्रसिद्ध पत्र पत्रिकाओं में लिखना आरम्भ किया । इससे इनकी कविता की और भी ख्याति हुई । समस्या पूर्ति करने तक शङ्कर जी अधिकतर व्रज-भाषा में कविता करते थे । पर पीछे इन्होंने खड़ी बोली को अपनाया और उसमें ये बड़ी सरल, सरस और सुन्दर कविता करने लगे । जो लोग कहा करते हैं कि खड़ी बोली की कविता में व्रजभाषा का सा आनन्द नहीं आता उन्हें शङ्कर जी की कविता पढ़नी चाहिए ।

शङ्कर जी को कविता करने का बड़ा अभ्यास है, ये मिनटों में अच्छी कविता कर डालते हैं । एक बार कविता करने में ये इतने तल्लीन हो गए कि सामने गाजे बाजे से गुज़रती हुई बारात की भी इनको कुछ ख़बर न हुई । ये सब रसों में विविध विषयों पर कविता लिखते हैं । कोई १० वर्षों से ये अपनी कविता में एक बड़े कड़े नियम का निर्वाह कर रहे हैं । वह यह कि ये मात्रिक और मुक्तक छन्दों में भी वर्णों की समान संख्या रखते हैं । वर्ण वृत्त में तो ऐसा होता ही है पर मात्रिक छन्दों में इस नियम का निभाना बहुत कठिन काम है ।

शङ्कर जी, एक समस्या की अनेक रसों में पूर्ति कर सकते हैं। एक बार जयपुर के एक सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी संस्कृत विद्वान् ने इनको "इमि कंज पै सोहि रह्यो चतुरानन" समस्या देकर उसकी पूर्ति बीभत्स रस में चाही। कवि जी ने उक्त समस्या की पूर्ति ऐसी उत्तमत्ता से की कि पण्डित जी महाराज दंग होगए और इनकी कल्पनाशक्ति की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

बहुत दिनों से हिन्दी में कितने ही छन्द बिना नाम के प्रचलित हो रहे थे। शङ्कर जी ने उनका नामकारण कर दिया और अब वे छन्द इनके दिए नामों से पुकारे जाने लगे। 'मिलिन्दपाद' 'शङ्कर छन्द' 'राजगीत' आदि शङ्कर जी के रक्खे हुए छन्दों के ही नाम हैं।

शङ्कर जी को कई संस्थाओं से कितने ही सोने चाँदी के पदक प्राप्त होने के सिवाय 'कविराज' 'भारत प्रज्ञेन्दु' 'कविता कामिनी कान्त' इत्यादि उपाधियाँ भी मिल चुकी हैं। हाल ही में शारदा मठ के जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य महाराज ने इन को 'कवि शिरोमणि' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया है।

शङ्कर जी ने छोटी मोटी कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें से कुछ तो छप गईं और कुछ अप्रकाशित और अपूर्ण पड़ी हैं। छपी हुई पुस्तकों में, 'शङ्कर सरोज' 'अनुराग रत्न' 'गर्भरण्डा रहस्य' और 'वायस विजय' मुख्य हैं। इन पुस्तकों की काव्यमर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यदि कविजी के फुटकर लेखों का संग्रह किया जाय तो एक बड़ी किताब बन सकती है।

शङ्कर जी, उर्दू में भी अच्छी कविता कर लेते हैं। ये संस्कृत और फ़ारसी में भी दखल रखते हैं। स्वभाव के ये बड़े ही सरल और मिलनसार हैं। प्रेम और दया के भाव इन में कूट कूट कर भरे गए हैं। इन की हँसमुखता, सचाई और स्पष्टवादिता प्रसिद्ध गुण हैं। घंटों बैठे रहने पर भी इनके पास से उठने को जी नहीं चाहता। साफ़ कहने में इन किसी की रियायत नहीं करते। दियानतदारी इनकी यहाँ तक है कि जायदाद सम्बन्धी कितने ही बड़े बड़े मुक़दमों में ये पंच और सरपंच बनाए गए और इनके निर्णय को दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। इनको अपने गाँव से बाहर जाना बहुत नापसन्द है। अधिक आर्थिक लाभ होने पर भी ये चिकित्सार्थ बहुत कम बाहर जाते हैं। अनेक सभा समाज, राजे महाराजों के निमंत्रण पाकर भी ये कहीं नहीं गए। अधिक आग्रहपूर्वक बुलाने पर ये छतरपुर और अमेठी इन दो राज्यों के अतिथि हुए थे पर दो दो चार चार दिन रह कर अपने घर चले आए। कवि जी की वक्तृत्व शक्ति बहुत अच्छी है। इनका भाषण बड़ा प्रभावपूर्ण होता है। जीविकार्थ चिकित्सा में समय लगाने के अतिरिक्त ये अपना शेष समय कविता और ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी बातों के विचारने में व्यय करते हैं।

कविताप्रेमी सज्जन शङ्कर जी की कविता का बड़ा आदर करते हैं। इनके पास बड़े बड़े विद्वानों के प्रायः नित्य प्रशंसा परक पत्र आते रहते हैं। शङ्कर जी का सम्बन्ध आर्यसमाज से है अतएव इन्होंने अधिकतर समाज-सम्बन्धी कविताएँ ही लिखी हैं। पर, समाज में अच्छी कविता की कद्र न होने से कभी कभी इनको बड़ा दुःख होता है। समाज की आनं-

धान-सम्बन्धी भ्रष्टता और लोगों की अनधिकार चेष्टा को अच्छा नहीं समझते। शङ्कर जी की सन्तति में चार पुत्र अ एक पुत्री है। शङ्कर जी पर हिन्दी भाषा को बड़ा अभिमान ईश्वर करे इनके द्वारा अभी बहुत दिनों तक साहित्य-भाण्ड की श्रीवृद्धि होने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे। यहाँ इन कविता के नमूने लिखे जाते हैं :—

[१]

शंकर के सेवक दुलारे सब लोगन के नीति के निबं निगमागम पढ़त हैं। जीवन के चारों फल चाखन की च कर उन्नति की ओर निशि बासर बढ़त हैं॥ भारत के भूषण प्रतापशील पूषण से जिनकी कृपा से पर दूषण कढ़त हैं। ऐसे नर नागर तरेंगे भवसागर को प्यारे परमारथ के पोत पै चढ़त हैं॥

[२]

नीकी करनी संसार में, नामी नर कर जाते हैं। टेक। जो ध्रुव धर्मवीर होते हैं, पर दुख देख देख रोते हैं, सो विशाल संसृत सागर को पल में तर जाते हैं॥ वृथा काल को खोने वाले, बीज पाप के बोने वाले, कायर क्रूर कुपूत कुचाली यों हीं मर जाते हैं। धर्म कर्म को मर्म न जानै, केवल मनमानी तर्क तानै, ऐसे बकवादी समाज में संशय भर जाते हैं॥ मिट गये नाम नीच कपटिन के, शंकर सुयश शेष हैं तिनके, जिनके जीवन के अनुगामी जीव सुधर जाते हैं॥

[३]

साँची मान सहेली परसों पीतम लैवे आवै गौरी॥ टेक॥ मात पिता भाई भौजाई, सब सों राख सनेह लगाई, दो -दिन हिलमिल काट, वहाँ से फिर को तोहिं पठावै गौरी॥

अब कौ छेता नाहिं टरैगो, जानो पिय के संग परैगो, हम सब को तेरे बिछुरन कौ दारुण शोक सतावै गौरी ॥ चलने की तैयारी करले, तोशा बाँध गैल को धर ले, हालाँ हाल बिदा की बिरियाँ को पकवान बनावै गौरी ॥ पुर बाहरलौं पीहर वारे, रोवत साथ चलैंगे सारे शंकर आगे आगे तेरौ डोला मचकत जावै गौरी ॥

[४]

सैयाँ न ऐसी नचावो पतुरियाँ ।
गाने पै रीझौ बजाने पै रीझौ, बन्दी की छाती में छेदौ न छुरियाँ। पापो की पूंजी पचैगी न प्यारे, खाते फिरौगे हकीमों की पुरियाँ ॥ डोलेगो डाली डुलाते:डुलाते, हाथों में पूरी न होंगी अँगुरियाँ । जो हाय शंकर दशा होगी ऐसी, तो मेरी कैसे बचालोगे चुरियाँ ॥

[५]

शैल विशाल महीतल फोड़ बढ़े तिनको तुम तोड़ कढ़े हौ ।
लै लुड़की जलधार धड़ाधड़ ने धर गोल मटोल गढ़े हौ ॥
प्राण विहीन कलेवर धार विराज रहे न लिखे न पढ़े हौ ।
हे जड़ देव शिला सुत शंकर भारत पै करि कोप चढ़े हौ ॥

[६]

द्विज वेद पढ़ैं सुविचार बढ़ैं बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को ।
अविरुद्ध रहैं ऋजुपन्थ गहैं परिवार कहैं वसुधा भर को ॥
ध्रुव धर्म धरैं पर दुःख हरैं तन त्याग तरैं भवसागर को ।
दिन फेर पिता वरदे सविता करदे कविता कवि 'शंकर' को ॥

[७]

विदुषी उपजैं क्षमता न तजैं व्रत धार भजैं सुकृती बर को।
सधवा सुधरैं विधवा उबरैं सकलंक करैं न किसी घर को॥
दुहिता न बिकैं कुटनी न टिकैं कुलबोर छिकैं तरसैं दर को।
दिन फेर पिता वरदे सबिता कर दे कबिता कवि 'शंकर' को॥

[८]

नृपनीति जगे न अनीति ठगे भ्रम भूत लगे न प्रजाधर को।
झगड़ें न मचें खल खर्च लखें मद से न रचें भट संगर को॥
सुरभी न कटें न अनाज घटें सुख भोग डटें डपटें डर को।
दिन फेर पिता वरदे सविता कर दे कविता कवि 'शंकर' को॥

[९]

महिमा उमड़े लघुता न लगे जड़ता जकड़े न चराचर को।
शठता सटके मुदिता मटके प्रतिभा भटके न समादर को॥
विकसे बिमला शुभकर्म कला पकड़े कमला श्रम के कर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि 'शंकर' को॥

[१०]

मत जाल जलें छलिया न छलें कुल फूल फलें तज मत्सर को।
अघ दम्भ दबें न प्रपञ्च फबें गुनमान नवें न निरक्षर को॥
सुमरें जप से निरखें तप से सुरपादप से तुझ अक्षर को।
दिन फेर पिता वरदे सविता कर दे कविता कवि 'शंकर' को॥

[११]

मैं समझता था कहीं भी कुछ पता तेरा नहीं।
आज 'शंकर' तू मिला तो अब पता मेरा नहीं॥

[१२]

अबलों न चले उस पद्धति पै जिस पै व्रतशील विनीत गये। वह आज अचानक सूझ पड़ी भ्रम के दिन बाधक बीत

गये ॥ प्रभु "शंकर" की सुधि साथ लगी मुख मोड़ हठी विपरीत गये । चलते चलते हम हार गये पर पाय मनोरथ जीत गये ॥

[१३]

जिस अविनाशी से डरते हैं ।
भूत देव जड़ चेतन सारे ॥ टेक ॥

जिसके डरसे अम्बर बोले, उग्र मंद गति मारुत डोले ।
पावक जले प्रवाहित पानी, युगल वेग बसुधा ने धारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

जिसका दण्ड दसों दिस धावे, काल डरे ऋतु चक्र चलावे ।
बरसे मेघ दामिनी दमके, भानु तपै चमकैं शशि तारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

मन को जिसका कोप डरावै, घेर प्रकृति को नाच नचावे ।
जीव कर्म फल भोग रहे हैं, जीवन जन्म मरण के मारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

जो भय मान धर्म धरते हैं, शंकर कर्म योग करते हैं ।
वे विवेक वारिधि बड़ भागी, बनते है उस प्रभु के प्यारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

[१४]

चलोगे बाबा अब क्या प्रभु की ओर ॥ टेक ॥
खेल पसारे बालकपन में, उकसे रहे किशोर ।
आगे चल के चन्द्रमुखी के, चाहक बने चकोर ॥
पकड़े प्राण प्रिया वनिता ने, बतलाये चित चोर ।
मारे कन्दुक मदन दर्प के, गोल उरोज कठोर ॥

दुहिता पुत्र घने उपजाये, भोग बटोर बटोर ।
अगुआ बने बढ़े कुनबा के, पकड़ा पिछला छोर ॥
पटके गाल अंग सब भूले, अटके संकट घोर ।
शंकर जीत जरा ने अकड़े, उतरी मद की खोर ॥

[१५]

हे वैदिक दल के नर नामी, हिन्दू मण्डल के करतार ।
स्वामि सनातन सत्य धर्म के, भक्ति भावना के भरतार ॥
सुत वसुदेव देवकी जी के, नन्द यशोदा के प्रिय लाल ।
चाहक चतुर रुक्मिणी जी के, रसिक राधिका के गोपाल ॥ १ ॥
मुक्त अकाय बने तन धारी, श्रीपति के पूरे अवतार ।
सर्व सुधार किया भारत का, कर सब शूरों का संहार ॥
ऊँचे अगुआ यादव कुल के, बीर अहीरों के सिरमौर ।
दुविधा दूर करो द्वापर की, ढालो रङ्ग ढङ्ग अब और ॥ २ ॥
भड़क भुला दो भूत काल की, सजिये वर्तमान के साज ।
फैसन फेर इंडिया भर के, गोरे गाड बनो ब्रजराज ॥
गौर वर्ण वृषभानु सुता का, काढ़ो काले तन पर तोप ।
नाथ उतारो मोर मुकुट को सिरपै सजो साहिवी टोप ॥ ३ ॥
पौड़र चन्दन पोंछ लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय ।
अञ्जन अँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय ॥
रवधर कानों में लटका लो, कुण्डल काढ़ मेकराफून ।
तज पीताम्बर कम्बल काला, डाँटो कोट और पतलून ॥ ४ ॥
पटक पादुका पहिनों प्यारे, बूट इटाली का लुक़दार ।
डालो डबल वाच पाकट में, चमके जेन कञ्चनी चार ॥
रखदो गाँठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में मार ।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बांकी बिगुल सुने संसार ॥ ५ ॥

फरिया चीर फाड़ कुबरी को, पहिनालो पँचरंगी गौन।
अबलक लेडी लाल तिहारी, कहिये और बनैगी कौन॥
मुदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटल में दिन रात।
पर नजखोआ ताड़ न जावैं, बढ़ियाँ खान पान की बात॥ ६॥
बैनतेय तज ब्योम पान पै, करिये चारों ओर बिहार।
फक फक फूँ फूँ फूँको चुरटें, उगलें गाल धुआँ की धार॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय।
बाँटो पदक नई प्रभुता के, भारत जाति भक्त हो जाय॥७॥
कहदो सुबुध विश्वकर्मा से, रच दे ऐसा हाल बिशाल।
जिस पै गरमी नरमी वारे, कांगरेस कुल की पण्डाल॥
सुर नर मुनि डेलीगेटों को, देकर नोटिस टेलीग्राम।
नाथ बुला लो उस मण्डप में, बैठें जेंटिलमैन तमाम॥ ८॥
उमगें सभ्य सभासद सारे, सर्वोपरि यश पावैं आप।
दर्शक रसिक तालियाँ पीटें, नाचें मंगल मेल मिलाप॥
जो जन विविध बोलियाँ बोलें, टर्रीली गिटपिट को छोड़।
रोको उस गोबर गणेश को, करे न सर भाषा की होड़॥६॥
बेद पुराणों पर करते है, आरज हिन्दू वादविवाद।
कान लगा कर सुनलो स्वामी, सबके कूट कटीले नाद॥
दोनों के अभिलषित मतों पै, बोच सभा में करो विचार।
सत्य झूठ किसका कितना है, ठीक बता दो न्याय पसार॥१०॥
जगदीश्वर ने वेद दिये हैं, यदि विद्या बल के भण्डार।
उनके ज्ञाता हाय न करते, तो भी अभिनव आविष्कार॥
समझा दो वैदिक सुजनो को, उत्तम कर्म करें निष्काम।
जिनके द्वारा सब सुख पावैं, जीवित रहैं कल्प लों नाम॥११॥
निपट पुराणो के अनुगामी, ऊले निरखो इनकी ओर।
निडर आपको भी कहते हैं, नर्त्तक जार भगोड़ा चोर॥

प्रतिदिन पाठ करें गीता के, गिनते रहें रावरे नाम।
पर हो मनमौजी मतवाले, बनते नहीं धर्म के धाम ॥१२
कलुष कलंक कमाते है जो, उनको देते हैं फल चार।
कहिये इन तीरथ देवों के, क्यों न छीनते हो अधिकार॥
यों न किया तो डर न सकेंगे, डाँकू उदरासुर के दास।
अधम अनारी बीच करेंगे, मनमाने सानन्द विलास ॥१३॥
वैदिक पौराणिक पुरुषों में, टिके टिकाऊ मेल मिलाप।
गैल गहैं अगले अगुवों की, इतनी कृपा कीजिए आप॥
जिस विधि से उन्नत हो बैठे, यूरुप अमरीका जापान।
विद्या बल प्रभुता उनकी सी, दो भारत को भी भगवान॥१४
युक्तिवाद से निपट निराली, सुनलो वीर अनूठी बात।
इसका भेद न पाया अबलों, है अवितर्क विश्व विख्यात॥
योग बिना क्वारी मरियम ने, कैसे जने मसीह सपूत।
कैसे शक्कुल कमर कहाया, छाया रहित खुदा का दूत ॥१५
इस घटना की सम्भवता को, कहिये तर्क तुला पै तौल।
गड़बड़ है तो खोल दीजिए, ढिल्लड़ ढोंग ढोल की पोल॥
यह प्रस्ताव और भी सुन लो, उत्तर ठीक बता दो तीन।
किस प्रकार से फल देते हैं, केवल कर्म चेतनाहीन ॥१६
देव आदि के अधिवेशन में, पूरे करना इतने काम।
हिप हिप हुर्रों के सुनते ही, खाना टिफ़न पाय आराम॥
झंझट झगड़े मतवालों के, जानों सबके खण्ड विभाग।
तीन चार दिन की बैठक में, कर दो संशोधन बेलाग ॥१७॥
बनिये गौर श्याम सुन्दर जी, ताक रहे है दर्शक दीन।
हमको नहीं हँसाना वन के, बाघ वितुण्डी कछुआ मीन॥
धार सामयिक नेतापन को, दूर करो भूतल का भार।
निष्कलङ्क अवतार कहेंगे, शंकर सेवक बारम्बार ॥१८॥

[१६]

कर सुन्दर शृङ्गार चलीं चुपचाप लुगाईं।
वटुओं में भर भेंट मुदित मन्दिर में आईं॥
भटकी काल कुचाल कुसङ्गति ने मति फेरी।
मुझको लेकर साथ सधन पहुँची माँ मेरी॥ १॥

साधन सर्व सुधार सजीले सदुपदेश के।
दर्शन को झट खोल दिये पट गोकुलेश के॥
श्री गुरुदेव दयाल महाछवि धार पधारे।
सब ने धन से पूज देह जीवन मन वारे॥ २॥

अबला एक अधेड़ अचानक आकर बोली।
हिल मिल खेलो फाग उठो अब सुन लो होली॥
लाल गुलाल उड़ाय कीच केशर की छिड़की।
सब को नाच नचाय सुगति की खोली खिड़की॥ ३॥

फैल गया हुरदङ्ग होलिका की हलचल में।
फूल फूल कर फाग फला महिला मण्डल में॥
जननी भी तज लाज बनी व्रजमक्खो सबकी।
पर मैं पिण्ड छुड़ाय जवनिका में जा दबकी॥ ४॥

कूद पड़े गुरुदेव चेलियों के शुभ दल में।
सद्पुदेश का सार भरा फागुन के फल में॥
अड़ के अङ्ग उघार पुष्टप्रण के पट खोले।
सब के जन्म सुधार कृपा कर मुझ पै बोले॥ ५॥

जिसने केवल मंत्रयुक्त उपदेश लिया है।
अब तक योगानन्द महामृत को न पिया है॥
वह रँगलीला छोड़ कहाँ छुप गई छबीली।
सुन प्रभु से संकेत चली कुटनी नचकीली॥ ६॥

मुझको दबकी देख अड़ीली आकर अटकी।
मुख पै मार गुलाल अछूती चादर झटकी॥
घोर घुमाय घसीट घुड़क लाई दङ्गल में।
फिर यों हुआ प्रवेश अमङ्गल का मङ्गल में॥ ७॥
मेरा बदन बिलोक घटी दर दारागण की।
करता है शशि मन्द यथा छवि तारागण की॥
वृषबल्लभ गोस्वामि बने कामुक दुर्मति से।
मनुज मोहनी मान मुझे दौड़े पशुपति से॥ ८॥
परखा पाप प्रचण्ड प्रमादी पामरपन में।
उपजा उग्र अदम्य रोष मेरे तन मन में॥
लमकी लटकी देख लाय तलवार निकाली।
गरजी छन्द कृपाण सुना कर सुमरी काली॥ ९॥
वीर भयानक रुद्र रूप समझी रणचण्डी।
सुन मेरी किलकार गिरी गच पै हुरसण्डी॥
मूत रहे न पुरीष रुका पटकी पिचकारी।
रस बीभत्स बहाय दुरे प्रभु प्रेम पुजारी॥ १०॥
भङ्ग हुआ रसरङ्ग भयातुर हुल्लड़ भागा।
निरखि नर्तनागार छुपा रसराज अभागा॥
लौट गया हुरदङ्ग भुजा मेरी फिर फड़की।
भड़की उर में आग क्रोध की तड़िता तड़की॥ ११॥
बोली रसिक सुजान फाग अब आकर खेलो।
सर्व समर्पण रूप आँस इस असि की झेलो॥
निकलो खोल कपाट निरख लो नारि नवेली।
फिर न मिलेगी और जन्म भर मुझसी चेली॥ १२॥
गुप्त रहे गुरुदेव न भीतर से कुछ बोले।
भूल गये रस रीति अनीति किवाड़ न खोले॥

कुटनी भी भयभीत ससकती रही न बोली।
अस्त हुई इस भाँति मस्त गुरुकुल की होली॥ १३॥

(गर्भरंडा रहस्य)

[१७]

सास पग तीर नीर गौरता तरङ्ग तुण्ड त्रिवली चिबुक नाभि भँवर परत हैं। खाड़ी भुज पार्द मध्य मेरु कुच शृङ्ग हिम कंचुकी की ओट ठीक दीख न परत हैं॥ केश काल कच्छप कपोल श्रुति सीप जौंक भृकुटी कुटिल झष लोचन चरत हैं। 'शङ्कर' रसिक सुख भोगी बड़ भागी लोग ऐसे रूप सागर में मज्जन करत हैं॥

[१८]

ताकत ही तेज न रहैगो तेजधारिन में मङ्गल मयङ्क मन्द पीले पड़ जायेंगे। मीन बिन मारे मर जायेगे तड़ागन में डूब डूब 'शङ्कर' सरोज सड़ जायेंगे॥ खायगो कराल काल केहरी कुरंगन को सारे खंजरीटन के पंख झड़ जायेंगे। तेरी अँखियान सोँ लड़ेंगे अब और कौन केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायेंगे॥

[१९]

भौंड़ मुख लार बहै आँखिन गैं ढीड़ राधि कान में सिनक रेंट भीतन पै डार देति। खौस खौस खुरच खुजावे ठाड़ी पेडू पेट टूँड़ी लौ लटकते कुचन को उघार देत॥ लौट लौट चीन घाघेर की बार बार फिर बीन बीन डींगर नखन धर मार देति। लूगरा गंधात चढ़ी चीकट सी गात मुख धोवे न अन्हात प्यारी फूहड़ बहार देति॥

[२०]

यौवन मान सरोवर में कुच हंस मनोहर खेलन आये
मोतिन के गल हार निहार अहार विहार मिले मन भाये
कंचुकी कुंज़ पतान की ओट दुरे लट नागिन के डरपाये
देखि छिपे छिपके पकड़े धर 'शङ्कर' बाल मराल के जाये

[२१]

आनन की ओर चले आवत चकोर मोर दौर दौर बा बार बेनी झटकत हैं। बैठ बैठ 'शङ्कर' उरोजन पै राजहंस हारन के तार तोर तोर पटकत हैं॥ झूम झूम चखन को चूम चूम चंचरीक लटकी लटन में लिपट लटकत हैं। आज इन बैरिन सों बन में बचावे कौन अबला अकेली मैं अनेक अटकत हैं॥

[२२]

देखत की भोरी, मन श्याम, तन गोरी, गारी देत कोरी कोरी गोरी नेक न सँकाति हो। मेरी गेंद चोरी, तापे ऐसी सीनाजोरी रिस थोरी करो, 'शङ्कर' किशोरी क्यों रिसाति हो॥ खोल के गहावो, नहीं चोली दिखलावो, जो न होय घर जावो, आवो काहे सतराति हो। सारी सरकावो, अँचरा में न दुरावो, लावो, कंचुकी में कंदुक चुराये कहाँ जाति हो॥

[२३]

मङ्गल करन हारे कोमल चरण चारु मङ्गल से मान मही गोद में धरत जात। पङ्कज की पाँखुरी से आगुरी अँगूठन की जाया पंचवाण जी की भँवरी भरत जात॥ 'शङ्कर' निरख नख नग से नखत श्रेणी अम्बर सों छूट छूट पायन परत जात। चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै हौले हौले हंसन की हाँसी सी करत जात॥

[२४]

मुँदे न राखति दीठ त्यों, खुले न राखति लाज।
पलक-कपाट दुहून के, पलपल साधत काज॥

[२५]

सास ने बुलाई घर बाहर की आई, सो लुगाइन की भीर मेरौ घूँघट उघारै लगी। एक तिनमें की तृण तोरि तोरि डारे लगी, दूसरी सरैया राई नौन की उतारै लगी॥ 'शङ्कर' जठानी बार बार कछु वारै लगी, मोद मढ़ी ननदी अटोक टोना टारै लगी। आली पर साँपिन सी सौति फुसकारै लगी, हेरि मुख हा! कर निशाकर निहारै लगी॥

[२६]

राजा तू सदेह सदा स्वर्ग में रहैगो ऐसो, 'शङ्कर' असीस जाके मुखते निकसिगो। ताही गाधिनन्दन को योगबल पाय उड़ो, तीर सो त्रिशङ्कु नभमण्डल में धँसिगो॥ वासव ने मारो त्राहि त्राहि सो पुकारो, मिलो मुनि को सहारो अध-वर ही में बसिगो। आयो न मही पर न पायो लोक देवन को, चुम्बक युगल बीच मानो लोह फँसिगो॥

[२७]

भरिबो है समुद्र कोश म्बुक में; छिति को छिगुनी पर धारिबो है।
बँधिबो है मृणाल सों मत्त करी जुही फूल सों शैल विदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को कवि 'शङ्कर' रेणु सों तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढ़न को सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥

[२८]

शब्द अर्थ सम्बन्ध युक्त भाषा विशाल थल।
शक्ति सरोवर गद्य पद्य रचना विशुद्ध जल॥

आशय मूल प्रवन्ध नाल भूषण सुन्दर दल ।
'शङ्कर' नव रस फूल ग्रन्थ मकरन्द मोद फल ॥
परहित पराग छक छक मुदित, रसिक भृङ्गगण गुञ्जरत।
नित या 'साहित्य सरोज' की उन्नति कवि कुल रवि करत॥

[२९]

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जाय खुजाये।
वन्धन में मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतन्त्र पुकारत पाये॥
मानसरोवर में विहरें वक, 'शङ्कर' मार मराल उड़ाये।
मान घटो गुरु लोगन को, जग वंचक पामर पंच कहाये॥

[३०]

लम्बे लम्बे झोटन सों झूलत ही सौतिन की, विरवा की डारन में पटली अटक गई। लागत ही झटका उखड़ गयो आसन पै, ताड़िका सी डोरिन को पकड़े लटक गई॥ 'शङ्कर' छिनार पट्ट पाथर पै टूट पड़ी, फूटो सिर, फाटी नर, पिलही पटक गई॥ छूट गई नारी सीरो पड़ गई सारी आज, मरगई दारी, मेरे मन की खटक गई॥

[३१]

ईश गिरिजा को छोड़ यीशु गिरिजा में जाय, 'शङ्कर' सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे। बूट पटलून, कोट, कम्फ़ाट टोपी डाट, जाकट की पाकट मे 'वाच' लटकावेंगे॥ घूमेंगे घमण्डी बने रंडी का पकड़ हाथ, पियेंगे वरण्डी मीट होटल में खावेंगे। फ़ारसी की छारसी उड़ाय ईंगरेज़ी पढ़, मानें देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे॥

[३२]

वाहर वॉध गिरीश गये हरि को मुख हेरन नन्द गली को।
डील फुलाय कुडौल भयो हम रोक सके न विजार वली को।

लाखन गाय रम्हाइ रहीं खुल खाय गयो सब न्यार खली को।
हा! अब चूँस न न जाय कहूँ यह शङ्कर को वृषभानु ललीको॥

[३३]

मन चंचल और नपुंसक है इस भाँति विचार वसीठ बनाया।
वह पास गया जिसके उसने रस खेल खिलाय वहीं विरमाया॥
निशि बीत चुकी पर भामिन को अबलों कवि शङ्कर साथ न लाया।
पढ़ पाठ महामुनि पाणिनि के हमने फल हाय! भयानक पाया॥

[३४]

सावन में सारे झील झावर झिलार गये धार से कछार चढ़े बाँगर भरन लगे। घेर घेर अम्बर भदैंया घन गाज रहे बोरे न नदी की बाढ़ गाँव के डरन लगे॥ मेंह और मारी के लताड़े लोग भाग रहे 'शङ्कर' पयान चारो ओर को करन लगे। अम्मा जी पतोहू जो न चाहती हो दूसरी तो भेजो रथ मायके में मूसटा मरन लगे॥

[३५]

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है।
ज़माना ज़िन्दगी का जा रहा है॥
किया क्या ख़ाक? आगे क्या करेगा?
अख़ीरी वक्त दौड़ा आरहा है॥

[३६]

बाबा जी बुलाये वीर डूँगरा के डोकरा ने, जैमन को आसन वक्केल के विछायेरी। ओंड़े ओड़े ऊदला महेरी के सपोट गये झार गये झोर रोट झाल भरे खाये री॥ छोड़ो न गजरभत नेकहू नदोरिया में रोथ रोंथ रूखी दर भुजिया अघायेरी। संतन के रेवड़ जो चमरा चरावत हैं संकर सों याते वल्क वेदआ करायेरी॥

[३७]

मुण्डन की मण्डली फरैया फगुना को फली मौजिया को झामड़ महाजन जनायोरी। हूँसी ठकुराई ठेलि ठेठुआ ठकुरिया में बोना बजमारो बेट बाह्मन बनायोरी॥ रँगुआ रँगैया भयो गोटिया रँगेलन को झानी गल बज्जज में गँगुआ गनायोरी। सङ्कर की किरपा सों ऊँचे पै चमार चढ़े चेतो है चमरहानो मङ्गल मनायोरी॥

[३८]

सुख भोगे भर पूर, उमा वर वाम देवको।
रहती है कब दूर, त्याग रति कामदेव को॥
प्रेम-भक्ति अपनाय, बनी सिय शक्ति राम की।
उलही प्रिया कहाय, रुक्मिणी रसिक श्याम की॥
यों सधवा धर्म प्रचारिणी, तज तुक्कड़-कुल जार को।
हे कविता, मङ्गलकारिणी! भज शङ्कर भरतार को॥

[३९]

शंकर नदीनद नदीसन के नीरन की भाप बन अम्बर तें ऊँची चढ़ जायगी। दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघल कर घूम घूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी॥ झारेंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति जारेंगे खमण्डल में आग मढ़ जायगी। काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं जो पै वा वियोगिन की आह कढ़ जायगी॥

[४०]

पास के गये पै एक बूँद हू न हाथ लगै दूरसों दिखात मृगतृष्णिका में पानी है। शंकर प्रमाण सिद्ध रंग को न संग पर जान पड़े अम्बर में नीलिमा समानी है॥ भाव में अभाव है

अभाव में धौं भाव भयो कौन कहे ठीक बात काहू ने न जानी है। जैसे इन दोउन में दुविधा न दूर होत तैसे तेरी कमर की अकथ कहानी है॥

[४१]

कज्जल के कूट पर दीप शिखा सोती है कि श्याम घन-मण्डल में दामिनी की धारा है। यामिनी के अङ्क में कलाधर की कोर है कि राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है॥ शङ्कर कसोटी पर कञ्चन की लीक है कि तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है। काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है॥

[४२]

उन्नत उरोज यदि युगल उमेश हैं तो काम ने भी देखो दो कमानें ताक तानी हैं। शङ्कर कि भारती के भावने भवन पर मोह महाराज की पताका फहरानी है। किवा लटनागिनी की साँवली सँपेलियों ने आधे विधु बिम्ब पै विलास विधि ठानी है। काटती है कामियो को काटती रहेंगी कहो भृकुटी कटारियों का कैसा कड़ा पानी है॥

[४३]

तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जायँगे। मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में डूब डूब शङ्कर सरोज सड़ जायँगे॥ चौंक चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग खञ्जन खिलाड़ियों के पङ्ख झड़ जायँगे। बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे॥

[४४]

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है। नाक में निवास करने को कुटी शङ्कर कि छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है॥ कौन मान लेगा कीर तुण्ड की कठोरता में कोमलता तिल के प्रसून की समाई है। सैकड़ों नकीले कवि खोज खोज हारे पर ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥

[४५]

अम्बर में एक यहाँ दौज के सुधाकर दो छोड़े बसुधा पै सुधा मन्द मुसकान की। फूले कोकनद में कुमुदनी के फूल खिले देखिये विचित्र दया भानु भगवान की॥ कोमल प्रवाल के से पल्लवों पै लाखा लाल लाखे पर लालिमा विलास करे प्रान की। आज इन ओठों का सुरंगी रस पान कर कविता रसीली भई शङ्कर सुजान की॥

[४६]

उन्नति के मूल ऊँचे उर अवनीतल पै मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं। मेल के मनोरथ मथेंगे प्रेम सागर को साधन उतङ्ग युग मन्दर अचल हैं॥ उद्धत उमङ्ग भरे यौवन खिलाड़ी के ये शङ्कर से गोल कड़े कन्दुक युगल हैं। तीनो मत रूखे रसहीन हैं उरोज पीन सुन्दर शरीर सुरपादप के फल हैं।

[४७]

कञ्ज से चरण कर कदली से जंघ देखो क्षुद्र तण्डुला से दो उरोज गोल गोल हैं। कृष्ण कुण्डला से कान भृङ्ग वल्लभा से दृग किंसुक सी नासिका गुलाब से कपोल हैं॥ वज्रांक पटली से केश नई कोपल से अधर अरुण कलकण्ठ के से बोल

है। शङ्कर वसन्त सेना बाई में वसन्त के से सोहने सुलक्षण अनेक अनमोल हैं॥

[४८]

बाग की बहार देखी मोसिमे बहार में तो दिले अन्दलीप को रिझाया गुलेतर से। हम चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में तौ भी लौ लगी ही रही माह की महर से॥ आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को बात की न बात मिली लज़्ज़ते शकर से। शङ्कर नतीजा इस हाल का यही है बस सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से॥

[४९]

केरल की तारा

मांग देकर पाटियों में पीठ पर चोटी पड़ी।
फाड़ मुँह फैलाय फन छबिराशि पै नागिन अड़ी॥
भाल पर चाहक चकोरों का बड़ा अनुराग था।
क्यों न होता चन्द्र का वह ठीक आधा भाग था॥
भ्रू नहीं मैंने कहा रसराज के हथियार है।
काम के कमठा लिये तारुण्य की तलवार हैं॥
मीन खंजन मृग मरें दृग देह द्रुम के फूल हैं।
इन्दु मङ्गल मन्द से तीनों गुणों के मूल हैं॥
फूल अंबर के न कानों को बता कर चुप रहा।
रूप सागर के सजीले सीप हैं यों भी कहा॥
गोल गुदकारे कपोलों को कड़ी उपमा न दी।
फुलपुली मोयन पड़ी फूली कचौड़ी जान ली॥
नाक थी किवा कुटी छबि की छपाकर पै नई।
और लटकन की कि बिजली लौ दिया की बन गई॥

खिलखिला कर मुख बत्तीसी को कहा बेलाग यों।
कुन्द की कलियाँ कमल के कोश में छिपती हैं क्यों॥
सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृङ्गार थे।
कण्ठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे॥
पीन कुश उकसे कसे कोमल कड़े छोटे बड़े।
गुप्त सारे अङ्ग साड़ी की सजावट में पड़े॥

जगन्नाथप्रसाद "भानु"

बाबू जगन्नाथप्रसाद का जन्म श्रावण शुक्ल १ संवत् १९१६ को हुआ था। इनके पित श्रीयुत बख्शीराम पल्टन में जमादार थे वे बड़े अच्छे कवि थे। उनका बनाया हु माग नाटक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश में उसका अच्छ आदर है।

स्कूल में अंगरेज़ी तथा हिन्दी की साधारण शिक्षा पाक बाबू जगन्नाथप्रसाद १५) मासिक पर शिक्षा-विभाग नौकर हुए और अपनी योग्यता से इन्होंने क्रमशः यहाँ त उन्नति की कि एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर और असिस्ट सेटिलमेंट आफ़िसर तक हो गये। कुछ दिनों के लिए सेटिलमेंट आफ़िसर भी रह चुके हैं। यह पद यद्यपि केव सिविलियनों को ही मिलता है तो भी ये सिविलियन होकर उस पद तक पहुँच चुके हैं। और अब लगातार वर्षों तक सरकारी सेवा करके इन्होंने पेंशन ले ली है

ग्लासपुर (मध्यप्रदेश) में रहते हैं। सरकारी नौकरी के समय इन्होंने प्रजा हित के कई कार्य किये है। खंडवा ज़िले इन्होंने ५० नये रैयतवारी गाँव बसा कर उनका बहुत ही अच्छा बंदोबस्त किया। अकाल और विशेष कर प्लेग, विशूचिका आदि के समय इनके द्वारा दीन दुःखियों को अच्छी सहायता मिला करती है। यहाँ तक कि खंडवा मे इनके नाम के भजन गाये जाते हैं। प्रजा और सरकार दोनों ही इन्हें बराबर सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

इन्हें बहुत दिनों से मातृभाषा हिन्दी पर बड़ा अनुराग और ये सदा उसकी सेवा की चिन्ता में लगे रहते हैं। इनका अधिकांश समय साहित्य-सेवा में ही बीतता है। काव्य पर इनका प्रेम बहुत अधिक है और ये उस शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। अबतक इन्होंने छन्दः प्रभाकर, काव्य प्रभाकर, नव पंचामृत रामायण, काल प्रबोध, श्री कृष्णाष्टक आदि हिन्दी में और गुलज़ारे सखुन तथा गुलज़ारे फ़ैज़ नामक पुस्तकें उर्दू मे लिखी हैं। छन्दःप्रभाकर और काव्य प्रभाकर से इनके काव्यशास्त्र-सम्बन्धी पांडित्य का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। ये दोनों ग्रन्थ हिन्दी-काव्य के अच्छे रत्न हैं। इनके लिखने में कई वर्षों का परिश्रम और बहुत धन लगा है। छन्दःप्रभाकर तो भारतवर्ष में इतना लोकप्रिय हुआ है कि अभी तक उसके कई संस्करण निकल चुके हैं। ये उर्दू में भी बहुत अच्छी कविता करते है और उसमे इनका उपनाम "फ़ैज़" रहता है। ये अब "हिन्दी-काव्य-प्रबंध-माला" नामक एक सीरीज़ निकाल रहे हैं। इस माला में अभी तक छन्दः सारावली, काव्यालंकार, अलंकार प्रश्नोत्तरी और रस रत्नाकर नामक पुस्तकें निकल

चुकी हैं और अभी कई और निकलेंगी। इनका विचार एक पत्र निकालने का भी है। विलासपुर में इनका निज का एक "जगन्नाथ प्रेस" है।

ये विलासपुर-को-आपरेटिव सेंट्रल बैंक लिमिटेड के आनरेरी सेक्रेटरी भी हैं। यह बैंक इनके पेंशन लेने के बाद इन्हीं के प्रयत्न से स्थापित हुआ है और मध्यप्रदेश और वरार के समस्त को—आपरेटिव बैंकों में, कई बातों में आदर्श रूप है।

सन् १८८५ के लगभग एक बार ये काशी आकर व रामकृष्ण वर्मा के यहाँ ठहरे थे। वहाँ अनेक विद्वानों सामने इन्होंने पिंगल शास्त्र का चमत्कार दिखाया था इनकी प्रतिभा और विद्वत्ता देख सब लोगों ने चकित होक कहा था "आप तो साक्षात् पिंगलाचार्य्य हैं। कवियों भानु हैं।" तभी से लोग इन्हें "भानु कवि" कहने लगे जवलपुर, सागर, खंडवा, वैतूल, नरसिंहपुर आदि क शहरों में इन्हीं के नाम पर भानु-कवि समाज स्थापित है। यथाशक्ति इन समाजों में सहायता तथा उत्साह-दान देते हैं इन समाजों में किसी से कुछ चन्दा नहीं लिया जाता। इन उद्योग से कुछ दिनों तक दो काव्य-सम्बन्धी मासिक प चलते रहे। पर अंत में कई झगड़ों से वे बन्द हो गये।

सरकार तथा देशी रजवाड़ों में भी इनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा है। गत दिल्ली दरबार के अवसर पर इन्हें शाह सनद और दिल्ली-दरबार-पदक मिला था। हैदराबाद के भूतपूर्व निज़ाम इनसे बहुत स्नेह रखते थे। सन् १९०३ में रीवान्रेश इनसे खंडवा में मिल कर बड़े प्रसन्न हुए थे। एक बार मैहर के महाराज ने इनसे मिल और इनकी योग्यता से

प्रसन्न होकर इन्हें एक मान-पत्र दिया था। रायगढ़ के स्वर्गवासी राजा बहादुर भी इनसे बड़ा प्रेम रखते थे। उन्होंने इनकी कवित्वशक्ति से प्रसन्न होकर इन्हें "साहित्याचार्य्य" की उपाधि से विभूषित किया था। अभी थोड़े दिन हुए भारत-धर्म-महामण्डल ने इन्हें रौप्य-पदक और मानपत्र दे सम्मानित किया है।

भानु कवि का हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, मराठी और उड़िया भाषाओं पर भी अच्छा अधिकार है। साथही इनकी संस्कृत और अंगरेज़ी की भी योग्यता बहुत अच्छी है। ये सहृदय, गुणग्राही और मधुरभाषी हैं।

भानु-कवि की कुछ चुनी हुई कविताएँ यहाँ दी जाती हैं :—

[१]

गावत गजानन सकुचि एक आनन तें,
जात चतुरानन हू बैठि वश लाज के।
मौन गहि रहे शंभु कहि पंच आनन तें,
भाषत षड़ानन ना सामुहें समाज के॥
कहौ पुनि कौन विधि गाइये गुणानुवाद,
'भानु' लघु आनन तें देव सिरताज के।
शेष जब गावैं सहसानन तें तौ हूँ गुन,
गाये ना सिरात ब्रजराज महाराज के॥

[२]

गोपियों का उपालंभ अष्टक

ब्रजललना जसुदासों कहतीं, अर्ज सुनो इक नँदरानी।
लाल तुम्हारे पनघट रोकैं, नहीं भरन पावत पानी॥

दान अनोखो हमसों माँगैं, करैं फजीहत मनमानी।
भयो कठिन अब ब्रज को बसिबो, जतन करौ कछु महरानी॥१॥
हँडुलि सीस गिरि ठननननन मोरी* तुचक पुचक कहुँ ढरकानी।
चुरियां खनकीं खननननन मोरी* करक करक भुइँ बिखरानी।
पायजेब बज छननननन मोरी* टूटटूट सब छहरानी।
बिछियाँ झनकीं झननननन मोरी* हेरतहू नहिं दिखरानी॥२॥
लालन बरजो ना कछु तरजो, करौ कछू ना निगरानी।
जाय कहेंगे नंदबबा से, न्याव कछुक देहैं छानी॥
कहि सकुचानी दृग ललचानी, जसुदा मनकी पहिचानी।
बड़ी सयानी अवसर जानी, बोली बानी नय सानी॥३॥
भरमानी घरबर बिसरानी, फिरौ अरी क्यों इतरानी।
अबै लाल मेरो*बारो भोरो, तुम मदमाती बौरानी॥
दीवानी सम पाछे डोलौ, लाज न कछु तुम उर आनी।
जाव जाव घर जेठन के ढिग, उचित न अस कहिबो बानी॥४॥
उलते आये कुँवर कन्हाई, लखी मातु कछु घबरानी।
कह्यो मातु ये झूठी सब मुँहिं, पकर लेत बालक जानी॥
माखन मुख बरजोरी मेलत, चूमि कपोलन गहि पानी।
नाच अनेकन मोहि नचावैं, रंग तरंगन सरसानी॥५॥
ए मैया मुँहिं दै दै गुलचा, बड़ी करत री हैरानी।
कोउ कहै मोरि गैया दुहि दे, साँझ बेर अब नियरानी॥
कोउ देवन सों वर वर माँगैं, बार बार हिय लपटानी।
जस तस कर जो भागन चाहूँ, दूजी आय गहत पानी॥६॥
भागतहू ना पाछो छाड़ैं, बड़ी हठीली गुनमानी।
मुहिं पहिरावत लहँगा लुगरा, पहिरि चीर कोई मरदानी॥

* इन शब्दों के प्रत्येक वर्ण को लघु मानकर उसकी एकही मात्रा समझो। भानु।

थेइ थेइ थेइ मुहिं नाच नचावत, नित्य नेम मन महँ ठानी ।
मनमोहन की मीठी मीठी, सुनत बात सब मुसुकानी ॥ ७ ॥
सुनि सुनि बतियाँ नंदलाल की, प्रेम फंद सब उरझानी ।
मन हर लीनो नटनागर प्रभु, भूलि उरहनो पछितानी ॥
मातु लियो गर लाय लाल को, तपन हिये की सियरानी ।
भानु निरखि तब बालकृष्ण छवि, गोपि गईं घर हरखानी ॥ ८ ॥

[३]

देखि कालिका को जंग सब होय जात दंग मति कविहू की पंग नहीं सकत बखान । कहूँ देखो न जहान नहिं परो कहूँ कान ऐसो युद्ध भो महान महाप्रलय लखान ॥ यातुधान कुल हान देखि देव हरखान मन मुदित महान हने तबल निसान । जब झमकि झमकि पग ठमकि ठमकि चहुँ लमकि लमकि काली झारी किरपान ॥

[४]

रूप देखि विकराल काँपै दसो दिगपाल अब ह्वै है कौन हाल शेषनाग घबरान । महाप्रलय समान मन कीन अनुमान राम रावण को युद्ध काहू गिनती न आन ॥ लखि देवन अँदेश विधि हरि औ महेश तब साथ लै सुरेश करी अस्तुति महान । माई कालिका की जय माई कालिका की जय माई हूजे अब शांत खूब झारी किरपान ॥

[५]

सुनि विनय अमान रूप छाँड़ो है भयान सब मन हरखान करै माई गुणगान । चढ़ि चढ़ि के विमान देव छाये आसमान लिये पूजा को समान बहू फूल बरखान ॥ थाके वेद औ

पुरान साईं करत वखान यश तेरो है महान किमि कहैं लघु भान। दीजै यही वरदान दास आपनो ही जान रहै वैरिन पै सान चढ़ी तेरी किरपान॥

श्रीधर पाठक

पंडित श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मण हैं। लगभग ग्यारह सौ वर्ष पहले इनके पूर्वज पंजाब से आकर आगरा ज़िले के जोन्धरी नामक गाँव मे वसे थे। इनके ताया जी पंडित धरणीधर न्यायशास्त्र के प्रकांड पंडित थे, और पिता पंडित लीलाधर, यद्यपि एक साधारण पंडित थे, किन्तु बड़े ही सच्चरित्र और भगवद्भक्तिपरायण थे। संवत् १९६३ में उनका शरीरान्त हुआ। उनके शोक में पाठक जी ने "आराध्य शोकाञ्जलि" नामक कुछ संस्कृत पद्यों की एक पुस्तिका रची, जो बड़ी ही करुणापूर्ण हे।

पाठक जी का जन्म माघकृष्ण चतुर्दशी संवत् १९१६ ता० ११ जनवरी सन् १८६० ई० को जोन्धरी गाँव में हुआ। प्रारंभ में इन्हें संस्कृत पढ़ाई गई। इनकी बुद्धि वड़ी तीव्र थी, इससे १०, ११ वर्ष की अवस्था में ही ये संस्कृत बोलने और लिखने लगे। इसके बाद पढ़ना लिखना छोड़कर दो तीन वर्ष खेल कूद में बिताकर १४ वर्ष की अवस्था में इन्होने फिर पढ़ना प्रारंभ किया। पहले कुछ फारसी पढ़ी फिर सन् १८७५ में तहसीली स्कूल से हिन्दी की प्रवेशिका परीक्षा पास की।

इस परीक्षा में ये प्रांत भर में सब से प्रथम हुये। सन् १८७६ मे आगरा कालेज सो इन्होंने अंग्रेजी मिडिल की परीक्षा में भी प्रांत भर में सर्वोच्च स्थान पाया और सन् १८८० में एंट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की।

पाठक जी पहले पहल कलकत्ते में सेंसस कमिश्नर के दफ़्तर में नौकर हुए! इसी नौकरी मे इन्हें शिमला जाकर हिमालय का सौन्दर्य देखने का अवसर मिला। वहाँ से लौटने पर ये लाट साहब के दफ़्तर में नौकर हुए, और दफ़्तर के साथ नैनीताल गये। एक वर्ष तक ये भारत गवर्नमेंट के दफ़्तर में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट और सुपरिंटेंडेंट भी रहे। पाठक जी सरकारी काम बड़े परिश्रम और सावधानी से करते थे। इनको रिश्वत, अन्याय, खुशामद और सुस्ती से बड़ी चिढ़ थी। उत्तम अंगरेज़ी लिखने के लिये ये विख्यात हैं। १८९८-९९ की इरीगेशन रिपोर्ट में इनकी प्रशंसा छपी है। सुपरिंटेंडेंट के पद पर इनको ३००) मासिक मिलता था। कई वर्ष हुये ये पेंशन लेकर प्रयाग मे रहने लगे। प्रयाग के लूकरगंज मे इनका पद्मकोट नाम का एक बहुत सुन्दर बंगला है। उसे इन्होंने लताओं और वृक्षावलि से सजाकर बहुत रमणीक बना लिया है। उसी मे ये सकुटुम्ब रहते है। इस समय इनके दो पुत्र और एक कन्या है। दिन मे किसी समय पद्मकोट मे जाने से पाठक जी किसी कमरे में बैठे कविता रचने मे निमग्न मिलेंगे। कविता का इन्हें पक्का व्यसन है।

पाठक जी प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े प्रेमी हैं। इनकी रचना पढ़ने से पता लगता है कि सृष्टि सौन्दर्य का अध्ययन इन्होने बड़े मनोयोग से किया है। पाठक जी बड़े मिलनसार, सरस

हृदय और आनन्द पुरुष हैं। प्रयाग में रहने से मुझे प्राय इनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ ही करता है। जितना समय इनकी संगति में कट जाता है वह बहुत सुखमय होता है

पाठक जी खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनो में कविता करते हैं। यद्यपि आजकल इनकी खड़ी बोली की कविता में बहुत से क्रियापदो का प्रयोग विशुद्ध खड़ी बोली का नहीं कहा जा सकता, किन्तु लोग इन्हें खड़ी बोली का आचार्य भी कहते हैं। इन्होंने गोल्डस्मिथ के तीन ग्रन्थो का पद्यानुवाद "एकान्तवासी योगी", "ऊजड़ग्राम", और "श्रान्तपथिक" नाम से बड़ी योग्यतापूर्वक किया है। श्रान्तपथिक में अंग्रेजी पद्य की एक पंक्ति का हिन्दी की एक पंक्ति में अनुवाद है पाठक जी की साहित्यिक योग्यता पर मुग्ध होकर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने लखनऊ मे अपने पंचम अधिवेशन में इन्हें सभापति बनाया था। अबतक इनके जितने ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं उनके नाम ये हैं:—

आराध्य शोकाञ्जलि, श्री गोखले प्रशस्ति, एकान्तवासी योगी, ऊजड़ग्राम, श्रान्तपथिक, जगतसचाईसार, काश्मीर सुखमा, मनोविनोद, श्रीगोखले गुणाष्टक, देहरादून, तिलिस्माती मुँदरी, गोपिकागीत, भारतगीत।

इनके रचे काव्यग्रंथो में से इनकी कविता का नमूना हम यहाँ उद्धृत करते हैं:— [१]

जगत सचाई सार से—

ध्यान लगा कर जो तुम देखो सृष्टी की सुघराई को।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को॥
ये सब भाँति भाँति के पच्छी ये सब रङ्ग रङ्ग के फूल।
ये बन की लहलही लता नव ललित ललित शोभा के मूल

ये नदियाँ ये झील सरोवर कमलों पर भौंरों की गुञ्ज।
बड़े सुरीले बोलों से अनमोल घनी वृक्षों की कुञ्ज॥
ये पर्वत की रम्य शिखा औ शोभा सहित चढ़ाव उतार।
निर्मल जल के सोते झरने लीला रहित महा विस्तार॥
छै प्रकार की ऋतु का होना निज नवीन शोभा के सङ्ग।
पाकर काल वनस्पति फलना रूप बदलना रङ्ग विरङ्ग॥
चाँद सूर्य की शोभा अद्भुत वारी से आना दिन रात।
त्यों अनन्त तारा मण्डल से सज जाना रजनी का गात॥
यह समुद्र का पृथ्वी तल पर छाया जो जलमय विस्तार।
उसमें से मेघों के मण्डल हों अनन्त उत्पन्न अपार॥
लरजन गरजन घन-मण्डल की बिजली बरषा का सञ्चार।
जिसमें देखो परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार॥

[२]

एकान्तवासी योगी से—

साधारण अति रहन सहन, मृदुबोल हृदय हरनेवाला।
मधुर मधुर मुसक्यान मनोहर, मनुज वंश का उजियाला॥
सभ्य, सुजन, सत्कर्म-परायण सौम्य, सुशील, सुजान।
शुद्ध चरित्र, उदार, प्रकृति-शुभ, विद्या बुद्धि निधान॥
नहीं विभव कुछ धन धरती का न अधिकार कोइ उसको था।
गुण ही थे केवल उसका धन, सो धन सारा मुझको था॥
उस अलभ्य धन के पाने को, थे नहिं मेरे भाग।
हा धिक् व्यर्थ प्राणधारण, धिक् जीवन का अनुराग॥
प्राण पियारे की गुण गाथा, साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।
गाते गाते चुके नहीं वह, चाहे मैं हीं चुक जाऊँ॥
विश्व निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।
बलिहारौं त्रिभुवन धन उस पर वारौं काम करोर॥

[३]

ऊजड़ ग्राम से—

कबहुँ न तहाँ पधारि ग्राम्य जन पग अब धरिहैं ।
मधुर भुलौनी माहिं नित्य चिन्ताहि बिसरिहैं ॥
ना किसान अब समाचार तहँ आय सुनैहैं ।
ना नाऊ की बातैं सब कौ मन बहलैहैं ॥
लकड़हार कौ बिरहा कबहुँ न तहँ सुनि परि है ।
तान श्रवन आनन्द उदधि कबहूँ न उमरिहैं ॥
माँथौ पोंछि लुहार, काम सो तहँ रुकिहै ना ।
भारी बलहि ढिलाय, सुनन बातैं झुकिहै ना ॥
घर कौ स्वामी आपु दीखिहै तहँ अब नाहीं ।
झाग उठे प्याले कों फिरवावत सब पाहीं ॥
ना क्वारी व बाला सरमीली कोऊ तहँ ।
पान हेतु पूछी जैवो चाहै जो मन महँ ॥
सरल सलौनी सुन्दर साधारन हिय भोरी ॥
चूमि पियाला पहुँचै है औरन की ओरी ।
धनी करहु उपहास तुच्छ मानहु किन मानी ॥
दीनन की यह लघु सम्पति साधारन जानी ॥
मोहि अधिक प्रिय लगै अधिक ही मो हिय भाई ।
सवरी बनावटनि सों एक सहज सुघराई ॥

[४]

श्रान्त पथिक से—

वह सुख है अति तुच्छ जिसे नर विषय भोग मे मानै हैं ।
किन्तु विषय सुख ही को सब सुख इटली वाले जानै हैं ॥

यहाँ कुञ्ज और खेत सरस छवि सुन्दरता दरसाते हैं।
केवल मनुष्य रूपी पौधे अवनति चिह्न दिखाते हैं॥
अनमिल अवगुण उनके सारे आचरणों में छाये है।
यद्यपि दरिद्र तदपि सुख सेवी, नम्र तदपि गर्वाये हैं॥
गम्भीर भी निपट ओछे भी, उत्साही असत्य के धाम।
पछतावा करते भी पाप का सोँचे नये पाप के काम॥
मन मेरे तू हट इनसे, चल करें वहाँ का आलोचन।
जहाँ रूक्ष तर विषय भूमि में दृढ़तर जँचैं निवासी जन॥
जहाँ शुष्क स्विस जाति, पवन-पीड़ित-स्वदेश में करै भ्रमन।
काढ़ैं कठिन भूमि से अपने अर्थ अल्प रूखा भोजन॥
बञ्जर पर्वत-भूमि यहाँ की उपज नहीं कुछ देती है।
रण में भरती होकर लड़ना यही यहाँ की खेती है॥
यद्यपि दीन कुटी कृषिकर की, खान पान भी है यदि अल्प।
निज समान ही देखै है वह दशा सभों की बिना विकल्प॥
उस्के घर से लगा उसे कोइ महल दृष्टि नहिं आवै है।
जिस्के आगे उस्का छोटा छप्पर निपट लजावै है॥
रात समय घर आय दिवस के कर समाप्त श्रम के काजा।
चिन्ता रहित विराजै है निज अल्प कुटी का वह राजा॥
सुखद आग तट बैठ मुदित मुसक्यावै और निहारै हैं।
शोभा निज बच्चो के मुख की जिसे चमक विस्तारै है॥
निज सर्वस की गर्ववती तब उसकी प्यारी घरवाली।
भोजन हित, हित सहित, मेज़ पर सुघर सजावै है थाली॥
तथा कोई यदि अतिथि विदेशी दैवयोग से आजावै।
बहु विनोद की कहै कहानी आदर औ सैया पावै॥
उसी व्योम की ओर जहाँ मृदुतर आचरणो का है राज।
मुड़ता हूं अब, फ्रांस दिखाती है निज उज्वलता का साज॥

रसिक रंगीली भूमि सकल सामाजिक सुख सुविधा शाली।
सदा स्वयं संतुष्ट, तथा सब जग से तुष्ट रहने वाली ॥
दीखै है इन देशों का ऐसा निश्चिन्त सुख-जीवन।
बीते है रीते कामों में दिन इनका आनन्द-मगन ॥
इनमें हैं वह गुण जो मन का करैं परस्पर आकर्षन ।
विपुल प्रशंसा का प्रेमी है क्योंकि यहाँ सामाजिक मन॥
चाहे होय योग्यता सचमुच उचित प्रशंसा का कारन।
चाहै झूठ मूठ ही होवै उसका सचमुच सञ्चारन॥
बढ़ी है उसकी चाल परस्पर व्यक्ति मात्र मे पड़ी हुई।
होता है वर्ताव बहुत कर प्रथा अधिक है बढ़ी हुई ॥
राज सभाओं, सेनाओं, गावों में भी गति पाती है।
श्लाघा की लोलुपता सब को अपनी चाह सिखाती है॥
कर कर प्रिय वर्ताव परस्पर प्रसन्नता सब पाते हैं।
जैसे सुखित दीखते हैं वैसे सचमुच हो जाते हैं ॥
किन्तु मृदुल-गुण-मय कौशल यह सुखद उन्हे यदि होता है।
उनके उर के मध्य मूर्खता का अंकुर भी बोता है ॥
क्योंकि प्रशंसा की इच्छा जब अधिक प्रबल हो जाती है।
मनुष्य के भीतरी विचारों में निर्बलता लाती है ॥
अन्य प्रकृति के लोगों पर मेरा विचार अब जाता है।
जहाँ सिन्धु-उर आलिंगित हौलेंड देश छवि छाता है ॥
धीमी बहती नहर, तराई पीले पुष्पों से छाई।
'विलो' झुंडमय तीर, पाल-गामिनि नावों की सुघराई॥
भरी भीड़ से हाट, खेत-युत भूतल, कृषि-शोभाधारी।
सृष्टि एक नूतन, जो उससे मनुज-शक्ति ने उद्धारी ॥
यों जब यौं की भूमि निरन्तर जल-विप्लव जो सहती है।
बार बार लोगों को श्रम की ओर लगाती रहती है ॥

उद्यम की दृढ़ प्रकृति सभी उर में अधिवेशन करती है।
उद्यम से फिर द्रव्य लाभ की अभिलाषा तन धरती है॥
पर देखो यदि सूक्ष्म दृष्टि से, दृष्टि कपट छल आता है।
स्वतन्त्रता का भी क्रय विक्रय, ह्यां पर देखा जाता है॥
कंचन की मोहिनी देख, सारी स्वतन्त्रता भागै है।
दीन उसे बेचै है औ, धनवान मोल को माँगै है॥
दुश्शासन दुष्टों की भूमि यह, दासों का है वास जहाँ।
अधम नीच नर निन्द्य रीति से, करते हैं निज नाश यहाँ॥
तथा शान्त और मूक विनत, अनुत्तरता में रत होते हैं।
निज झीलो-सम निरे अचल, आंधी में भी जो सोते हैं॥
उक्त शब्द से दीपित मेरी, प्रतिभा पङ्ख लगाती है।
पश्चिमीय-वारिधि-वसंत सेवित ब्रिटेन को जाती है॥
शीतल मृदुल समीर चतुर्दिक, सुखित चित्त को करती है।
कोमल कल संगीत सरस ध्वनि तरु तरु प्रति अनुसरती है॥
सकल सृष्टि की सुघर सौम्य छवि एकत्रित तहाँ छाई है।
अति की बसै मनुष्यों ही के मन में अति अधिकाई है॥
मनन-वृत्ति प्रति-हृदय-मध्य, दृढ़ अधिकृत पाई जाती है।
अति गरिष्ट साहसिक लक्ष्य, उत्साह अमित उपजाती है॥
गति में गौरव गर्व, दृष्टि में दर्प-धृष्टता-युत-धारी।
देखूँ हूँ मैं इन्हें मनुज-कुल-नायकता का अधिकारी॥
सदा वृहत-व्यवसाय-निरत, सुविचारवन्त दीखैं सारे।
सुगम-स्वल्प-आचारा शील, और शुद्ध प्रकृति के गुण धारे॥
स्वाभाविक दृढ़ चित्त, अटल उद्धत, असीम-साहसकारी।
निज स्वत्वों के व्रती निपट निर्भय स्वतंत्र-सत्ताधारी॥
कृषिकर भी प्रत्येक स्वत्व की जाँच गर्वयुत करता है।
त्यों मनुष्य होने का मान सबके समान मन धरता है॥

जिस स्वतंत्रता को ब्रिटेनजन इतना लाड़ लड़ाते हैं।
सामाजिक सम्बन्ध उसी से खंडित अपने पाते हैं॥
हैं भिन्न-सम्बन्ध पृथक् अति ये स्वतंत्रता के मानी।
हेल-मेल-रस-मय जीवन के सुखद स्वादु के अज्ञानी॥
प्रकृति प्रेम का पाश यहां पर शिथिलित पाया जाता है।
व्यर्थ वाद प्रतिवाद परस्पर वाहुल्यता दिखाता है॥
उठैं विविधि उत्ताप प्रवल-अवरुद्ध-भाव-गर्जन-कारी।
त्यों उन्नत अभिलाष अपूरित करै यत्न-साधन भारी॥
बढ़ कर यों अत्यन्त अन्त को प्रथा कुपित हो जाती है।
गति अपनी प्रतिरुद्ध।चक्र निज रोषानल-गत पाती है॥
आवेगा एक समय जब कि सौभाग्य शून्य होकर यह देश।
वीरों का पितृगेह त्रिज्ञ विद्वानों का आवास अशेष॥
जहां उच्च उत्कृष्ट वीर्य निजदेश-प्रेम जन्माता है।
हुए नृपति श्रम-शील, कीर्ति-प्रिय कवि-कुल पाया जाता है॥
धन-तृष्णा का घृणित एक सामान्य कुण्ड बन जावैगा।
नृपति, शूर, विद्वान आदि कोई भी मान नहिं पावैगा॥
स्वतंत्रता का हो सक्ता है यह सब से बढ़कर उद्देश।
व्यक्ति व्यक्ति पर रहै भार शासन का शक्ति-अनुसार अशेष॥

[५]

काश्मीर सुखमा से—

हिम स्रैनिन सों घिरो अद्रिमंडल यह रूरो।
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख-पूरो॥
वहुविधि दृश्य अदृश्य कलाकौशल सों छायो।
रक्षन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायो॥
अथवा विमल वटोर विश्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिवे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई॥

कै यह जादू भरी विश्व बाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली॥
पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोबन-रस आयौ।
प्रेम-केलि-रस-रेलि करन रँग-महल सजायौ॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी॥
कै यह विकसित ब्रह्म-वाटिका की कोउ क्यारी।
योगिराज ने यहाँ योग बल ऐंचि उतारी॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख-विम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

[६]

देहरादून से—

उतरे प्रौढ़ पँजाबी सुगढ़ सुडील।
सादी चाल शिताबी सुन्दर सील॥
स्वच्छ-स्वदेस-वसनवा साफा माथ।
चोगा चुस्त सुथनवा गृहिनी साथ॥
धनि पंजाब-सुगेहिनि बहुगुन-खान।
पिय-पद-कंज-सनेहिनि नेह-निधान॥
सुन्दरि सुमुखि सजनिया सहज सलोनि।
सुर-तिय-सरिस सोहनिया सरल चितौनि॥

भूसुर-सूर-सुजननी सदगुन-औनि।
भूसुर पुर-सम करिनी किन्नर-वैनि॥
धनि प्रन-प्रनय-पलिनिया प्रेम-प्रवीन।
पिय-प्रेमिनि-पगलिनिया पिय-पग-लीन॥
प्रेम-अमिय-पोहकरिनी करिनी-गौनि।
पिय-हिय-विपिन-विहगिनी हरिनी-छौनि॥
सु-वटन-जटित जकटवा सु-कट पजाम।
कलित कमीज दुपटवा सुपट ललाम॥
पग जुग सुभग-स्लिपरवा सुघर नवीन।
ओढ़ैं सिजिल चदरवा मृदुल महीन॥
सदा सुखित पिय सँगवा चवगुन चाव।
रँगी प्रेम पिय-रँगवा तिय पंजाब॥

[७]

गोपिका गीत—

महर नन्द का पुत्र तू नहीं, निखिल सृष्टि का साक्षिरूप है।
उदित है हुआ वृष्णि-वंश में, व्यथित विश्व के त्राण के लिए॥
तव सुधामयी प्रेम-जीवनी, अघ-निवारिणी क्लेश हारिणी।
श्रवण-सौख्यदा विश्व-तारिणी, मुदित गा रहे धीर अग्रणी॥

[८]

फुटकर

अहो विज्ञ! विज्ञान वेलि अज्ञन उर बोवहु।
अहो अज्ञ! अज्ञान मैल अन्तर मलि धोवहु॥
सुमति-सिन्धु-जल-मध्य कुमति-छल छन्द डुबोवहु।
शुचि सुबोध सतसंग सुरुचि रस रंग समोवहु॥

तौ होवहु सब सब कों सुखद, सोवहु सुखित सुछन्द तर।
मन्दार-ओक दिवि-लोक महँ ज्यो वृन्दारक-वृन्द वर॥

[९]

स्मरणीय भाव

वन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों।
बान्धवता में बंधे, परस्पर, परता के अज्ञानी हों॥
निन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अज्ञानी हों।
सब प्रकार पर-तन्त्र पराई प्रभुता के अभिमानी हों॥

[१०]

भारत सुत

यहो ! नव युव वर, प्रिय छात्र-वृन्द।
भारत-हृदि-नन्दन, आनन्द-कन्द॥
जीवन-तरु-सुन्दर-सुख-फल अमन्द।
भारत-उर-आशा-आकाश-चन्द॥
आरज-गृह-गौरव-आधार-थम्ब।
भारत-भुवि-सर्बस प्रानावलम्ब॥
तुमही तिहि तन, मन, धन, रजत-जोति।
हीरा, मनि, मरकत, मानिक्य, मोति॥
तुमही तिहि आतम-अन्तर-शरीर।
प्रानाधिक-प्रियतम सुत, धीर वीर॥
तुम्हरे नव विकसित सुठि सबल अंग।
उन्नत मति चंचल चित, चपल ढंग॥
शैशव-गुन-संभव, नव नव तरङ्ग।
नव वय, नव विद्या, नव-युव-उमङ्ग॥

बाढ़हु भुवि स्वर्गिक सेवा के हेतु।
फहरै जग भारत-कीरति कौ केतु॥

[११]

वन शोभा

चारु हिमाचल आँचल में, एक साल विसालन कौ वन है।
मृदु मर्मर शील भरैं जल-स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन कौ गन है।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै, मद बावरौ सौ अलि कौ मन है॥
काली घटा का घमंड घटा, नभ-मंडल तारका-वृन्द खिले।
उजियाली निशा, छविशाली दिशा अति सोहैं धरातल फूले फले॥
निखरे सुथरे वन-पंथ खुले तरु-पल्लव चन्द्रकला से धुले।
वन शारदी-चन्द्रिका-चादर ओढ़ें लसैं समलंकृत कैसे भले॥२॥
भारत में वन ! पावन तूही, तपस्वियों का तप-आश्रम था।
जग-तत्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था॥
जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था, सात्विक जीवन का क्रम था।
महिमा बन-वास की थी तब और प्रभाव पवित्र अनूपम था॥३॥

[१२]

बंक-मयंक

ए हो सुघर सुधांशु बंकिमा संशोभित शशि।
तू मोहि करत सशंक आजु अति रैनि-अंक बसि॥
होइ न निहचय मोहिं नील नभ में को है तू।
जोह्यौ जो शशि काल्हि आजु का नहिं सो है तू॥
व्योम-पंक-प्रस्फुटित सेत सरसिज दल है तू।
पारिजात सों पतित मुकुल कोइ कोमल है तू॥

कै कोई आनन्द-कन्द नन्दन-फल है तू।
शची-कर्न-आभर्न-रत्न कोइ चंचल है तू॥
दिसि-भामिनि-भ्रू-भंग, काल-कामिनि-निहंग असि।
कै जामिनि रही अधर बिम्ब सों मन्द हास हँसि॥
सुर-सुन्दरि कल कंठ-हँसुलि, बिलुलित थल सों खसि।
कै अनंग झष लसत चपल निसि के उछंग बसि॥
कुपित काम-नृप-धनुष, वक्र परजन्य-शस्त्र कोइ।
किधौं भिन्न हरि चक्र, स्वर्ग कौ अन्य अस्त्र कोइ॥
मन्दाकिनि तट पर्यौ तृषित जल-हीन मीन कोइ।
तड़पि रह्यौ तन-छीन, व्योम-चर कै नवीन कोइ॥
वृत्र विदारक इन्द्र-कुलिस की कुटिल नौक तू।
निसि बिरहिनि तन लगी मदन की किधौं जौंक तू॥
प्रथम काल कौ बच्यौ प्रकृति कौ बाल खिलौना।
नजर बिडारन रच्यौ बजरबट्टू कै टौना॥
दृष्टि तुला के पला किधौं स्रष्टा-बैठारौ।
सृष्टि-गोद कौ लला मोद-प्रद मात-दुलारौ॥
निशा-योगिनी-भाल-भस्म कौ बाँकौ टीका।
कै माया महिषी-किरीट-छाया सु श्री का॥
कै विरञ्चि-मस्तक-त्रिपुंड-आभास मनोहर।
कै भारत-तप-तेज-पिंड कौ खंड मंजु तर॥
कै अद्भुत ब्रह्मांड-छोर कौं छिलुका छूट्यौ।
किधौं प्रेम-आनन्द-अमृत कौ मटुका टूट्यौ॥
किधौं नन्दिनी शृङ्ग व्योम पट मे प्रतिबिम्बित।
किधौं कुशांक त्रिशंकु अधर में है अवलम्बित॥
सप्त ऋषिन कौ व्यवहृत वक्री कृत तर्पण-कुश।
किधौं अभ्र-पथ पतित शुभ्र मघवा-इभ-अंकुश॥

शिव गिरि सों सित शिला खंड मुरि गयौ उछरि कोइ।
गैल भूल निज संगिन सों सुर गयौ बिछुरि कोइ॥
कै सुमेरु शुचि वर्न स्वर्न सागर कौ कौंड़ा।
कै सुर-कानन-कदलि मूल कौ कोमल बौंड़ा॥
किधौं स्वर्ग फुलवारी के माली कौ हँसिया।
कै अम्मृत एकत्र करन की सेत अँकुसिया॥
रवि-हय खुर की छाप किधौं कै नाल नुकीली।
काल चक्र का हाल परी खंडित कै कीली॥
नभ-आसन आसीन कोई कै तपोलीन ऋषि।
कै कछु जोति मलीन कृशित सोइ कला छीन शशि॥

[१३]

सान्ध्य-अटन

विजन वन-प्रान्त था प्रकृति मुख शान्त था।
अटन का समय था रजनि का उदय था॥
प्रसव के काल की लालिमा में लिहसा
बाल शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य उत्फुल्ल अरविन्द-निभ नील सुवि-
शाल नभ वक्ष पर जा रहा था चढ़ा;॥
दिव्य दिङ्नारि की गोद का लाल सा
या प्रखर भूख की यातना से प्रहित
पारणा रक्त-रस लिप्सु, अन्वेषणा
युक्त या क्रीड़नासक्त, मृगराज शिशु
या अतिव क्रोध-सन्तप्त जर्मन्य नृप
सा किया अभ्र बैलून उर में छिपा
इन्द्र, या इन्द्र का छत्र या ताज या
स्वर्ग गजराज के भाल का साज या

कर्ण उत्ताल, था स्वर्ण का थाल सा
कभी यह भाव था, कभी वह भाव था।
देखने का चढ़ा चित्त में चाव था॥
विजन वन शान्त था चित्त अभ्रान्त था।
रजनि-आनन अधिक हो रहा कान्त था॥
स्नान-उत्थान के साथ ही चन्द्र-मुख
भी समुज्ज्वल लगै था अधिक तर भला।
उस विमल विम्ब से अनति ही दूर, उस
समय एक व्योम में विन्दु सा लख पड़ा
स्याह था रंग कुछ गोल गति डोलता
किया अति रंग में भंग उसने खड़ा;
उतरते उतरते आ रहा था उधर
जिधर को शून्य सुनसान थल था पड़ा।
आम के पेड़ से थी जहाँ दीखती
प्रेम-आलिंगिता मालती की लता
बस उसी वृक्ष के सीस की ओर कुछ
खड़खड़ाकार एक शब्द सा सुन पड़ा
साथ ही पंख की फड़फड़ाहट, तथा
शत्रु निःशंक की कड़कड़ाहट, तथा
पक्षियों में पड़ी हड़बड़ाहट, तथा
कंठ और चोंच की चड़चड़ाहट, तथा
आर्ति-युत कातर स्वर, तथा शीघ्रता
युत उड़ाहट भरा दृश्य इस दिव्य-छवि
लुब्ध दृग-युगम को घृणित अति दिख पड़ा।
चित्त अति चकित अत्यन्त दुःखित हुआ॥

म्युनिसिपेलिटी-ध्यानम्

शुक्र-श्यामांग-शोभाढ्यां, गौन-साड़ी-विभूषिताम् ।
महा-मोह-लसज्वालां, करालां, काल-सोदराम् ॥
चन्दा चुंगीं विचिन्वन्तीं, खुली नालीं निकालतीम् ।
डालतीं च नज़र अपनी, चारो जानिब रुआब से ॥
टौन हौले महा भीमे, टेबिल-चेयर-शातान्विते ।
लेम्प लोलुप सन्दीप्ते, प्यून भृत्य निषेविते ॥
उच्चासन समासीनां, पेपर पेन-चलत्कराम् ।
महा विचार में मग्नां, मनोलग्नां धनागमे ॥
तां श्री महा-म्यूनिसिपेलिटीति ।
ख्यातां सतीं भारत-भाग्य-देवीम् ॥
सर्वे वयं नम्र-विनीत-शीर्षाः ।
पुनः पुनः पौरजना नमामः ॥

सुधाकर द्विवेदी



महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी पंडित कृपालदत्त के पुत्र थे। पंडित कृपालदत्त ज्योतिष विद्या में बड़े निपुण और भाषाकाव्य के बड़े प्रेमी थे। उनके पूर्वज चैनसुख नामक एक सरयूपारी दुवे ब्राह्मण काशी मे संस्कृत पढ़ने के लिए आये थे और शिवपुर के पास मंडलाई गाँव में एक उपाध्याय जी के यहाँ अध्ययन करने लगे थे। उपाध्याय जी निस्संन्तान थे, इससे चैनसुख ही उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हुये। चैनसुख ही के वंश मे सुधाकर जी हुये।

सुधाकर जी के जन्म के समय इनके पिता मिर्जापुर में थे। इनके चचा दरवाज़े पर बैठे थे। डाकिये ने 'सुधाकर' नामक पत्र उनके हाथ मे दिया। उसी समय घर में से लड़का पैदा होने का समाचार आया। उन्होंने कहा कि लड़के का नाम सुधाकर हुआ। सुधाकर जी का जन्म सं० १९१७, चैत्र शुक्ला चतुर्थी, सोमवार को हुआ था। ६ मास की अवस्था होते ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। इससे इनके पालन पोषण का भार इनकी दादी पर पड़ा।

आठ वर्ष की अवस्था तक इनकी शिक्षा का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ। इसके बाद जब ये पढ़ाये जाने लगे तब उन्होंने

अपनी धारणा शक्ति का अद्भुत चमत्कार दिखलाया। चार पढ़ने ही से पद्य इन्हें कंठस्थ हो जाते थे।

बालकपन से ही इनकी रुचि ज्योतिष की ओर अ थी। केवल लीलावती पढ़कर ही ये गणित के बड़े बड़े सहज में हल करने लग गये थे। इनकी ऐसी प्रतिभा देख पंडित बापूदेव शास्त्री ने क्वींस कालेज के प्रिंसिपल ग्रिफि साहब से इनकी बड़ी प्रशंसा की। इससे इनका उत्स बहुत बढ़ गया। पंडित बापूदेव शास्त्री के पीछे ये बनारस संस्कृत कालेज में गणित और ज्योतिष के अध्यापक हु और अन्तकाल तक उस पद पर सुशोभित रहे।

पंडित सुधाकर जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्रों में थे। इन्होंने हिन्दी भाषा में १७ पुस्तकें रचीं। तुलसी, सू कबीर तथा हिन्दी के अन्य प्रसिद्ध कवियों की कविता इनकी अच्छी गति थी। इनकी रहन सहन सादी, स्वभा सीधा और चाल ढाल सर्वप्रिय थी। ये अनेक वर्षों तक काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के सभापति रहे। इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर गवर्नमेंट ने इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि दी थी। योरोप तक इनकी कीर्ति फैली हुई थी।

इनका देहान्त २८ नवम्बर सन् १९१० को काशी में हुआ। इन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। ये सरल हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे।

एक जगह ये लिखते हैं:—मैं तो समझता हूँ संस्कृत काव्य से बढ़ कर हिन्दी काव्य में आनन्द मिलता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं।

दोहे

राजा चाहत देन सुख, पर परजा मतिहीन ।
पर जामत ही चहत हैं, भूमि क़रन पग तीन ॥१॥
एहि सुराज मँह एकरस, पीअत बकरी बाघ ।
छन मँह दौरत बीजुरी, सागर हू को लाँघ ॥२॥
छपि छपि कर परकास भे, लुप्त रहे जे ग्रंथ ।
पढ़ि पढ़ि के पंडित भए, बने नये बहु पंथ ॥३॥
आगि पानि दोऊ मिले, जान चलावत जान ।
बिना जान सब जन लिये, राजत लखहु सुजान ॥४॥
अरनी की करनी गई, चकमक चकनाचूर ।
घर घर गंधक गंध में, आगि रहति भरपूर ॥५॥
बाप चलाई एक मत, बेटा सहस करोर ।
भारत को गारत किये, मतवाले बरजोर ॥६॥
मत झगरन मँह मत परहु, इन मँह तनिक न सार ।
नर हरि करि खर घोर वर, सब सिरजो करतार ॥७॥
सबही को यह जगत महँ, सिरज्यो बिधिना एक ।
सब मँह गुन अवगुन भरे, को बड़ छोट बिवेक ॥८॥
काज पड़े सबही बड़ा, बिना काज सब छोट ।
पाई हेतु भँजावते, रुपया मोहर लोट ॥९॥
गुन लखि सब कोइ आदरै, गारी धक्का खाय ।
कौन पिटाई डुगडुगी, रेल चढ़हु हे भाय ॥१०॥
देखत देखत रात दिन, गुनि जन को नहिं मान ।
रेल छाँड़ि अब चहत हैं, उड़न लोग असमान ॥११॥
सौ गुन ऊपर मैं चलउँ, बात बनाइ बनाइ ।
कैसे रीझै पियरवा, जानि मोहिं हरजाइ ॥१२॥

अपनी राह न छाँड़िये, जौ चाहहु कुसलात ।
बड़ी प्रवल रेलहु गिरत, और राह में जात ॥१३॥
मतवालन देखन चला, घर तें सब दुख खोय ।
लखि इनकी विपरीत गति, दिया सुधाकर रोय ॥१४॥
मल से उपजा मल वसा, मल ही का व्यवहार ।
नाम रखाया संत हम, ऐसे गुरू हजार ॥१५॥
का ब्राह्मन का डोम भर, का जैनी क्रिस्तान ।
सत्त बात पर जो रहै, सोई जगत महान ॥१६॥
समरथ चाहै सो करे, बड़ो खरो लघु खोट ।
नोहर मोहर से बढ़ी, लघु कागज की लोट ॥१७॥
सिद्ध भये तो क्या भया, किये न जग उपकार ।
जड़ कपास उनसे भला, परदा राखनहार ॥१८॥
सहजहि जौ सिखयो चहहु, भाइहि वहु गुन भाय ।
तौ निज भाषा में लिखहु, सकल ग्रंथ हरखाय ॥१९॥
बाना पहिरे बड़न का, करैं नीच का काम ।
ऐसे ठग को ना मिले, नरकहु मे कहुँ ठाम ॥२०॥
बिन गुन जड़ कुछ देत हैं, जैसे ताल तलाव ।
भूप कूप की एक गति, बिनु गुन बूँद न पाव ॥२१॥
बातन में सब सिद्धि है, बातन मे सब योग ।
ये मतवाले होय गए, मतवाले सब लोग ॥२२॥
धन दे फिर लेवैं नहीं, जगत सेठ ते आहिं ।
विद्या-धन देइ लेहिँ नहिं, सो गुन पंडित माहिं ॥२३॥
जहाँ तार की गति नहीं, अँजन हूँ बेकाम ।
तहाँ पियरवा रमि रहा, कौन मिलावै राम ॥२४॥
भाषा चाहै होय जो, गुन गन हैं जा माँहिं ।
ताही सों उपकार जग, सबै सराहहिं ताहि ॥२५॥

अब कविता को समय नहिं, निरखहु आँख उघारि।
मिलि मिलि कर सीखो कला, आपन भला विचारि ॥२६॥

वेनय पत्रिका के एक पद का संस्कृत अनुवाद।

पद

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभक्ति सुर सरिता, आस करत ओस कन की।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की॥
नहिं तहँ शीतलता न बारि पुनि, हानि होत लोचन की।
ज्यों गच काँच बिलोकि स्येन जड़, छाँह आपने तन की॥
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की।
कहँलौ कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की॥
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की।

अनुवाद

एतादृशी मूढ़ता मनसः।
रामभक्ति सुरसरितं हित्वा वांछति कणं कुपयसः॥
धूमपटलमवलोक्य चातको बुध्वा यथा भ्रमलसः।
लभते तत्र न शीतलमम्भो दृग्वैरिणं च वयसः॥
श्येनः काच कुट्टिमे दृष्ट्वा सं विम्बं मतिरभसः।
पतति तत्र परपतत्रिरूपे हानिमुपैति च वचसः॥
मनसः किं वर्णये जड़त्वं करुणानिधे कुयशसः।
कृत्वाऽऽत्म पणत्रपां जनस्यापहर दुःखमति तपसः॥

वन-विहार-पञ्चपदी

[१]

पिया हो, कसकत कुस पग बीच।
लखन लाज सिय पिय सन बोली हरुए आइ नगीच॥

सुनि तुरन्त पठयो लखनहिं प्रभु जल हित दूरि सुजान ।
लेइ अंक सिय जोवत कुस कन धोवत पद अँसुआन ॥
घार वार भारत कर सों रज निरखत छत बिललात ।
हाय, प्रिये, मान्यो न कह्यो लखु नहिं वन विच कुसलात ॥
सहस सहचरी त्यागि सदन मधि सासु ससुर सुखकारि ।
हठ करि लगि मों संग सहत तु हा हा यह दुख भारि ॥
कहत जात यों प्रभु बहु बतियाँ तिया पिया की छाँह ।
देइ गल बहियाँ चली विहँसि कहि यह सुख नाथ अथाह ॥

[२]

नाथ कुस साथरी साथ सुहाई ।
जो सुख सुखनिधान निसि पाई सो क्यों हूँ न कहाई ॥
चहल पहल निसि राज महल बिच चेरिन को समुदाई ।
सासु ससुर के अदब न दबकत दुसह तुम्हार जुदाई ॥
मन भावन मन भावत बतियाँ बतराई तहँ नाहीं ।
तातें तहँ तें सौगुन सुख बन विहरत दै गलबाहीं ॥
गगन मगन सोभा मन लोभा देखत नखत निकाई ।
जा छबि आगे सीस महल की पवि छवि प्रगट फिकाई ॥
आलस तजि आरसी विलोकहु मंगल द्विज जुति भाई ।
बिनु गुनमाल भली छबि पिय हिय कहि सिय मुरि मुसुकाई ॥

[३]

पिया जब देखी मैं फुलवरियाँ ।
अस मन भयो धाइ गर लागों त्यागि सकल कुल गलियाँ ॥
लखन लाल मोहि सेप सों लागे विष सी संग की अलियाँ ।
लाज भुअंगिनि हँकरति वाढ़ी निरखि बाग के मलियाँ ॥
मन चाह्यो पिय संग संग डोलूँ चुनूँ कुसुम की कलियाँ ।
गूँथि गूँथि आभरन पहिराऊँ करि पिय संग रँगरलियाँ ॥

न महँ धँसी साँवरी सूरति फँसी पिता पन जलियाँ।
म नेम दुविधा तरंग उठि मची हिये खलबलियाँ॥
ानुस भंगि पितु नेम प्रेम मम राखि लियो बिधि भलियाँ।
ा इच्छा इकांत विहरन अब पुरई भुज गर डलियाँ॥

[४]

पिया हो! मन की मनहीं माहिँ रही।
व सन निज कर केस सँवारन लाजन नाहिं कही॥
ा घर जरउ जहाँ निज मन भरि पिय मन रखि न रही।
ाहि चाहि मन पछितायो बहु नाहक नाहिँ कही॥
ाहस सहचरी नित घर घेरत परी लाज के फंद।
ँखिया भरि कबहूँ नहीं निरखीं तुव मुख पूरन चन्द॥
ाह वन निज कर नाथ सँवारत वेनी गुँथत बनाय।
ो बड़ भागिनि मो सम तिहुँ पुर यह सुख जाहि जनाय॥
ोटि मनोज लजावन भावन तुव छवि पीयत पीय।
ँखियाँ बहुत दिनन की प्यासी नेकु अघात न हीय॥

[५]

जियत नहिँ वे पानी को मीन।
रतनाकर करिवर की मोतिया वे पानी छवि हीन॥
े पानी सर राजहंस लखि होत बहुत वेहाल।
ान अलाप मृदङ्ग न भावत वे पानी को ताल॥
लहलहात खेतन बिच शाली वे पानी जु सुखात।
लोह घाव हू वे पानी के छन छन बहुत दुखात॥
ालनाथ वे पानी व्यञ्जन कोऊ न सरस सुहात।
वे पानी के नर नारी जग अति खल नीव लखात॥
हम अबला पुनि चार पानि कर पकस्यो आप बनाय।
े पानी अब तुव अनुगामी कहो अनत कस जाय॥

शिव सम्पति

पंडित शिवसम्पति सुजान शर्मा का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल ५, सं० १९२० को ग्राम उदियाँव ज़िला आज़मगढ़ में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित ... शर्मा और माता का रामकेशी था। ये भूमिहार ब्राह्मण हैं। सं० १९२८ में विद्याध्ययन आरंभ करके सं० १९३८ तक ये शिक्षा पाते रहे। हिन्दी और फ़ारसी पर इनका अच्छा अधिकार है। साधारण संस्कृत भी जानते हैं। इस समय ज़फ़राबाद (ज़िला जौनपुर) के मिडिल स्कूल में अध्यापक हैं। अध्यापकी ही इनकी प्रारंभ से जीविका है। घर पर कुछ ज़मींदारी का भी काम होता है। उसका प्रवन्ध इनके अनुज परमेश्वर मिश्र बड़ी योग्यता से करते हैं। ये चार भाई थे किन्तु अब दोही जीवित है। संतान में चार कन्यायें थीं अब एक भी जीवित नहीं।

सं० १९५६ या ५७ के लगभग ये मेरे जन्म-स्थान कोटरोपुर (ज़ि० जौनपुर) में अपर प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक होकर गये थे। मैंने अपर प्राइमरी तक इनसे ही शिक्षा पाई है। पद्य-रचना भी मैंने इनसे ही सीखी है। इनके साथ स्कूल मे जो इनका निजका पुस्तकालय था, उससे हिन्दी-साहित्य का परिचय पाने में मुझे बड़ीही सहायता मिली थी।

कोइरीपुर में इन्होंने शिक्षा का अच्छा विस्तार किया। अब
क वहाँ के लोग इन्हें प्रशंसा के साथ याद किया करते हैं।
बड़े निस्पृह और उन्नत विचार के अध्यापक हैं।

इन्होंने पद्य में कई पुस्तकें लिखी हैं। दो एक को छोड़कर
मी तक प्रायः सभी अप्रकाशित हैं। इनके रचे हुये ग्रन्थों
म ये हैं :—

१–शिवसम्पति सुजान शतक, २–शिव सम्पति शिक्षावली,
शिव सम्पति सर्वस्व, ४–शिव सम्पति नीति शतक, ५–
व सम्पति सम्वाद, ६–नीति चन्द्रिका, ७–आर्यधर्म चन्द्रिका,
बसन्त चन्द्रिका, ९–चौताल चन्द्रिका, १०–सभा मोहिनी,
–यौवनचन्द्रिका, १२–जौनपुर जलप्रवाह विलाप, १३–मन-
हिनी, १४–पचरा प्रकाश, १५–भारत विलाप, १६–प्रेमप्रकाश
–ब्रजचन्द विलास, १८–प्रयाग प्रपंच, १९–सावन विरह
लाप, २०–राधिका उराहनो, २१–ऋतु विनोद, २२–कजली
न्द्रिका, २३–स्वर्णकुँवरि विनय, २४–शिव सम्पति विजय,
–ऋतुसंहार, २६–शिव सम्पति सारा, २७–प्राणपियारी
–कलिकाल कौतुक, २९–उपाध्यायी उपद्रव, ३०–चित्त
ावली, ३१–स्वार्थी संसार, ३२–नये बाबू, ३३–पुरानी लकीर
फकीर, ३४–शतमूर्ख प्रकाशिका, ३५–भूमिहार भूसुर
ाण, ३८–कलियुगोपकार ब्रह्महत्या, ३७–रामनारायण
ीत, ३८–दिल्ली दरबार, ३९–बृटिश विजय, ४०–गोरख-
धा, ४१–संसार स्वप्न।

हम इनकी पुस्तकों से चुनकर इनकी कविता के कुछ नमूने
चे उद्धृत करते हैं :—

पचरा-प्रकाश

छैला जिनि करु देहिया कै गुमनवाँ न।
यामें नली नली सब जोरी, देखत हौ जो काली गोरी।
पाँचौं तत्वन थोरी थोरी, ब्रह्मा करिके मिश्रित विरचे
जिव भवनवाँ न।
जबलौं चाहै तब लौं बोलै, जग में चारिहु ओरन डोलै।
करि बहु भाँति विनोद कलोलै, चाहे जब करै छोड़ि के
गवनवाँ न
कोऊ जग में काम न आवै, वित हित सबै सनेह लगावै
निरधन लखि नहि पास बिठावै, ऐइसे इहि दुनिया के
ढूनसनवाँ न
भजले ब्रह्म सनातन प्यारे, रहना विषय भोग से न्यारे।
श्री शिव सम्पति हितू तिहारे, खाली चारिहु वेद कै
कहनवाँ न॥

जागो मोह निसा तें राही, होत बिहनवाँ न।
इहँवा सिगरे लोग बिगाना, कोऊ आपन नहीं यगाना।
नाहक क्यो फँसि के ललचाना, प्यारे जगत मुसाफिर खनवाँ
माया भठिहारिन ललचाई, आपन सुन्दर रूप दिखाई।
लूट्यो बहु पथिकन बहकाई, प्यारे अँग अँग पहिरि गहनवाँ
कितने इहि सराय मे आई, भागे निज निज माल गँवाई।
काहू की नहि कछुक बसाई, नास्यो करि करि लाख
छोड़ो भोग विपय [illegible] जानो स[illegible] तमासा
पावें वितै न अवस[illegible] तिरह[illegible] जैहो
आखिर पीछे से प[illegible] ध लु[illegible]
श्री [illegible] सम्पति क[illegible] मा[illegible]

फुटकर

दोहा

देखत जो रंगी महल, घन गजराज तुरंग ।
सो कोऊ जैहैं नहीं, श्री शिवसम्पति संग ॥१॥
धर्म करो मन क्यों परो, कहो कुमति के धंध ।
का करिहौ चलि हौ जवै, मूढ़ ! चारि के कंध ॥२॥
रे मन, निति रहिहै नहीं, तरुनापन अभिलाख ।
चार दिना की चाँदनी, फिर अँधियारा पाख ॥३॥
लह्यो न जग सुख ब्रह्म को, धरयो न हिय में ध्यान ।
घर को भयो न घाट को, जिमि धोबी को स्वान ॥४॥
सुबह साँझ के फेर में, गुजरी उमर तमाम ।
द्विविधा महँ खोये दुऊ, माया मिली न राम ॥५॥
विषै भोग की आस में, सब दिन दियो विताय ।
रे मन, करिहै काह अब, पीरी पहुँची आय ॥६॥
पीरी पहुँची आय के, करी फकीरी नाहिं ।
श्री शिव सम्पत्ति व्यर्थ ही, जीवत या जग माहिं ॥७॥
चतुरानन की चूक सब, कहलों कहिये गाय ।
सतुआ मिलै न सन्त को, गनिका लुचुई खाय ॥८॥

सवैया ।

[म तजै अरु क्रोध तजै मद लोभ तजै उर धीरज आनै ।
[तु विषै सब त्याग करै अरु लाज करै निज को पहिचानै ॥
[ान धरै परमेश्वर को कवि श्रीशिवसम्पति मिश्र बखानै ।
[हि त रे मन हाथ कछू नहि आइ है अन्त समै पछताने ॥१॥
[तिय को अति उत्तम रूप बनायहु ता तिय को पति हीना ।
[मन भावन छैल दई पुनि तौ,तिय ही को कुरूपिनि कीना ॥

जौ बहु रूप दई दुहु को पुनि तौ कलपावत पुत्र विहीना।
तीनहु जाहि दयी शिवसम्पति जू विधि ताहि दरिद्रता॥
फल हीन महीरुह त्यागि पखेरु वनानलतें मृग दूरि पराहीं
रसहीन प्रसूनहि त्याग करैं अलि शुष्क सरोवर हंस न
पुरुषै निरद्रव्य तजै गनिका न अमात्य रहैं बिगरे नृप पाहीं।
शिवसम्पत्ति रीति यही जग की विन स्वारथ प्रीति करै कउ
याद कुनी हर वक्त खुदा जिहि ते द्वउ लोक में होवे भला।
यार शबाब मुदाम न बाशद जानहु ज्यों चमकै चपला॥
बादज़ मर्ग चेख़ाहद कर्द अभी वनि घूमत हौ छयला।
पंद मरा कुन गोश अज़ीज़ "वृथा जनिवात वनाओ लला॥४॥
श्याम क़दीम मुहब्बत हैफ़ महो कुल कर्द न दर्द रहम।
ज़र्द शुदम अज़ फुर्क़त रूय व लाग़र बेश तमाम तनम॥
वक्त व उलफ़त दस्त गिरफ़ इफ़ाय रिफ़ाक़त कर्द कसम।
श्री शिव सम्पति आख़िर क़ौम अहीर चे दानद इश्क़ रसम

कवित्त।

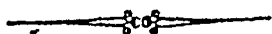
शुद्ध शुद्ध बोलै भेद वेदन को खोलै भले ब्रह्म सों मि
अन्त मुक्ति देन हारी है। जानै ना असत्य नेक सत्य ही व
सदा आरज के धर्म की करत रखवारी है॥ प्रेम परिवार
बढ़ावै शिव सम्पति जू सबही सों मोद भरी बोलै बैन प
है। भारत निवासी बन्धु ताहि क्यों बिसारी हाय,
गुनवारी भाषा नागरी हमारी है॥

छप्पै।

गंजा नर शिर भानु ताप तें दग्धन लाग्यो।
विधि वश छाया हेत ताड़ तरवर तर भाग्यो॥

ताहि जात तिहि ठौर वृक्ष तें फल इक टूट्यो ।
भयो भयानक शब्द गिरत गंजा शिर फूट्यो ॥
श्री शिव सम्पति कवि भनै सुनो मुख्य यह बात है ।
बिपति संग लगि जात तहँ भाग्य हीन जहं जात है ॥१॥
काह लाभ ? सँग गुणी, काह दुख ? संगति दुरमति ।
का छति ? समया चूक, निपुणता काह ? धर्म रति ॥
कौन शूर ? इंद्रियन जीत, तिय को ? अनुकूला ।
काह अचल धन जगत माह ? विद्या सुखमूला ॥
का सुख ? शिव सम्पति सुकवि बास नहीं परदेश को ।
राज्य काह? निज मंत्र युत रहिबो सदा स्वदेश को ॥२॥
अग्नि ताहि जल होत सिन्धु सरिता तिहि छन में ।
मेरु स्वल्प पाखान सिंह हरिना तिहि बन में ॥
पुष्प माल सम होत ताहि अति विषधर व्याला ।
अमृत सम ह्वै जात ताहि विष विषम कराला ॥
नीति ग्रंथ मत देखि कै श्रीशिव सम्पति कवि कहै ।
सकल लोक मोहन करन शील जासु तन में रहै ॥३॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी



पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म रायबरेली के दौलतपुर गाँव में, सं० १९२१ वैशाख शुक्ल ४, को हुआ। इनके पिता नाम पंडित रामसहाय था। जन्म होने आधे घंटे बाद, जात कर्म होने के पहले, ज्योतिर्विद् सूर्यप्रसाद द्विवेदी ने इनकी जिह्वा पर सरस्वती का बीज लिखा था।

गाँव के मदरसे में इन्होंने हिन्दी और उर्दू का किया। घर पर अपने चाचा पंडित दुर्गाप्रसाद के प्रबंध इन्होंने थोड़ा सा संस्कृत व्याकरण, दुर्गा सप्तशती, सहस्रनाम, शीघ्रबोध और मुहूर्त चिंतामणि आदि पुस्त कंठस्थ कीं। गाँव के मदरसे की शिक्षा समाप्त कर, १३ व की अवस्था में, ये घर से ३२ मील दूर रायबरेली के हा स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए गये। अंग्रेज़ी के साथ इनक दूसरी भाषा फ़ारसी थी। घर से रायबरेली दूर होने के कारण ये पुरवा कस्बे (ज़िला उन्नाव) के एँग्लो वर्नाक्युल टाउन स्कूल में भर्ती हुए। थोड़े दिनों में वह स्कूल टू गया। तब ये फतहपुर के स्कूल में गये और फिर वहाँ से उन्नाव। उन्नाव से ये अपने पिता के पास बम्बई चले गये। वहाँ इन्होंने गुजराती और मराठी सीखी तथा संस्कृत और

ंग्रेज़ी का भी कुछ अभ्यास बढ़ाया। कुछ दिन पढ़ने के ाद इन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली। वहाँ से ये नागपुर ाये। किन्तु वह स्थान इन्हें पसंद न आया। इससे ये अज- र चले गये और वहाँ राजपूताना रेलवे के लोको आफ़िस ं नौकर हो गये। वहाँ भी ये अधिक समय न ठहरे। एक र्ष बाद ही फिर बम्बई चले गये। बम्बई में इन्होंने तार का ाम सीखा। और फिर जी० आई० पी० रेलवे में सिगनेलर ोकर क्रम क्रम से उन्नति करते हुए हर्दा, खँडवा, हुशंगा- ाद और इटारसी में कोई पाँच वर्ष तक काम किया। उसी वसर में तार के काम के सिवा इन्होने फ़ौज के काम में भी च्छी प्रवीणता प्राप्त कर ली।

इंडियन मिडलैंड रेलवे के मैनेजर मिस्टर डबल्० बी० ाइट ने इन्हें झाँसी में टेलिग्राफ़ इन्सपेक्टर नियत किया। न्होंने तार सम्बन्धी एक पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी और नई रह का लाइन क्लियर ईजाद करने में बड़ी योग्यता दिखलाई। छ दिनों के बाद ये हेड टेलिग्राफ़ इन्सपेक्टर कर दिये गये।

रात दिन दौड़ धूप के काम से इनकी तबीअत उकता ई, तब इन्होने अपनी बदली जनरल ट्रैफ़िक मैनेजर के दफ़्तर ं करा ली। वहाँ ये क्लेम्स डिपार्टमेंट के हेड क्लर्क नियत ए। जब आई० एम० और जी० आई० पी० रेलवे एक हो ईं, तब ये बम्बई बदल दिये गये। वहाँ जी न लगने से न्होंने अपनी बदली फिर झाँसी करा ली। झाँसी में ये डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपरिंटेंडेंट के चीफ़ क्लर्क हुए। वहीं बंगा- लियों की संगति से इन्होंने बंगला भाषा सीखी और संस्कृत ं काव्य और अलंकार शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन

किया । कुछ समय के पश्चात् पुराने डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपरिंटेंडेंट की बदली हो गई, और उनके स्थान पर एक नये साहब आये। उनसे इनकी नहीं पटी । इन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया।

हिन्दी कविता की ओर इनकी रुचि लडकपन से ही थी । नौकरी की हालत में ये हिन्दी की सेवा बराबर किया करते थे। नौकरी छोड़ने के बाद तो ये बिल्कुल स्वतंत्र होकर हिन्दी साहित्य की सेवा में लग गये ।

द्विवेदी जी बड़े परिश्रमी हैं। अपने परिश्रम से ही इन्होने अच्छी विद्वत्ता प्राप्त की है । रेलवे के काम में भी ये अपने परिश्रम और प्रतिभा के आधार पर उन्नति करते रहे। और जब साहित्य क्षेत्र में आये, तो अपने समय में हिन्दी साहित्य में एक खास शक्ति होकर प्रतिष्ठित हुए । एक व्यक्ति परिश्रम से कहाँ तक योग्यता प्राप्त कर सकता है, द्विवेदी जी इसके आदर्श हैं ।

द्विवेदी जी स्वयं अच्छे कवि हैं। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में ललित कविता करते हैं । खड़ी बोली की कविता की आजकल जो कुछ उन्नति है, उसके प्रधान कारण द्विवेदी जी है । इनके प्रोत्साहन से कितने ही नये कवि, और लेखक हिन्दी का गौरव बढ़ाने लगे। द्विवेदी जी के गद्य लिखने की एक ख़ास शैली है। ऐसा अच्छा गद्य लिखने वाले वर्तमान हिन्दी लेखको में बहुत कम हैं। अपने समय में अपने जोड़ के द्विवेदी जी एक ही लेखक हैं । अपने जीवन का जितना भाग द्विवेदी जी ने हिन्दी-सेवा के लिए दिया है। उतना देने का सौभाग्य अभी किसी हिन्दी लेखक को प्राप्त नहीं हुआ है ।

द्विवेदी जी को अँग्रेज़ी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, मराठी, ाला, गुजराती आदि भाषाओं में अच्छा अधिकार है। ह्योंने अँग्रेज़ी, संस्कृत और बंगला से कई उपयोगी पुस्तकों ा हिन्दी मे अनुवाद किया है। कई पुस्तकों पर स्वतंत्र समा- ाचनाएँ लिखीं, और कई स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे। ख़ास ास पुस्तकों के नाम ये हैं:—

हिन्दी महाभारत (बँगला से अनुवादित), रघुवंश (हिन्दी द्यानुवाद), कुमार संभव (हिन्दी गद्यानुवाद), किरातार्जु- ाय (हिन्दी गद्यानुवाद), मेघदूत (हिन्दी गाद्यनुवाद), नाट्य ाास्त्र, विक्रमांक देव चरित चर्चा (समालोचना), कालिदास ी निरंकुशता (समालोचना), सम्पत्तिशास्त्र, जलचिकित्सा, ाक्षा (अँग्रेज़ी Education का अनुवाद) स्वाधीनता (अँग्रेज़ी ıberty का अनुवाद), बेकन विचार रत्नावली, नैषध चरित ार्चा (समालोचना), हिन्दी कालिदास की समालोचना, मार संभव सार (हिन्दी पद्यानुवाद), हिन्दी भाषा की त्पत्ति, काव्य मंजूषा (द्विवेदी जी की कविताओं का संग्रह), क्के सिवा इन्होंने कुछ रीडरें भी संकलित की हैं। ये एक च्छे समालोचक हैं। इनके कुछ फुटकर लेखों का संग्रह ाचीन पंडित और कवि, बनिता विलास और रसज्ञ-रञ्जन ाम से प्रकाशित हुआ है।

लगभग बीस वर्ष से द्विवेदी जी सरस्वती का संपादन ार रहे हैं। द्विवेदी जी ने सरस्वती को हिन्दी की सर्वोत्तम ासिक पत्रिका बना दिया। उसी तरह सरस्वती भी द्विवेदी ी को गौरवान्वित बनाने मे एक कारण हुई।

इनका सारा समय पढ़ने लिखने में हीं बीतता है। इसी से इनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। इसी कारण से अथवा स्वभाव में अधिक विरक्त भाव होने के कारण ये सभा समितियों में बहुत कम सम्मिलित होते हैं। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति होने के लिए हिन्दी-संसार ने इनसे कई बार प्रार्थनायें कीं। किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं की।

इनकी हिन्दी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं:—

विचार करने योग्य बातें

मैं कौन हूँ किस लिये यह जन्म पाया ?
क्या क्या विचार मन में किसने पठाया ?
माया किसे, मन किसे, किसको शरीर ?
आत्मा किसे कह रहे सब धर्मधीर ? ॥ १ ॥

क्यों पाप-पुण्य-पचड़ा जग बीच छाया ?
माया-प्रपंच रच क्यो सब को भुलाया ?
आया मनुष्य फिर अन्त कहाँ सिधारे ?
ये प्रश्न क्यो न जड़ जीव सदा विचारे ॥ २ ॥

नाना प्रकार जग मे जन जन्म पाते।
पीते तथा नित यथा-विधि खाद्य खाते ॥
तो भी सदैव मरते सब जीवधारी।
क्यों अल्पकालिक हुई फिर सृष्टि सारी ? ॥ ३ ॥

क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भय से विचारे।
होते प्रकम्प-परिपूर्ण मनुष्य सारे ॥

क्या बाघ है ? विशिख है ? अहि हैं विषारी ?
किंवा विशाल-तम तोप दृढ़ाङ्गधारी ॥ ४ ॥
पृथ्वी-समुद्र-सरिता-नर-नाग-सृष्टि ।
माङ्गल्य-मूल-मय वारिद-वारि-वृष्टि ॥
कर्तार कौन इनका ? किस हेतु नाना—
व्यापार-भार सहता रहता महाना ॥ ५ ॥
विस्तीर्ण विश्व रच लाभ न जो उठाता ।
स्रष्टा समर्थ फिर क्यों उसको बनाता ? ॥
जो हानि लाभ कुछ भी उसको न होता ।
तो मूल्यवान फिर क्यो निज काल खोता ? ॥ ६ ॥
कोई सदैव सुख-युक्त करे विहार ।
कोई अनेक-विधि दुःख सहे अपार ॥
जो भेद-भाव सब में यह विद्यमान ।
क्या बीज-वस्तु उसकी जग में प्रधान ? ॥ ७ ॥
तेजोनिधान रवि-बिम्ब सुदीप्ति-धारी ।
आल्हादकारक शशी निशि-ताप-हारी ॥
जो थे प्रकाशमय पिण्ड गये बनाये ।
तो व्योम बीच कब ये किस भाँति आये ॥ ८ ॥
क्यों एक देश सहसा बल वृद्धि पाता ?
क्यों अन्य दीर्घ दुख सागर मे समाता ?
ये खेल कौन, किस कारण खेलता है ?
क्यों नित्य नित्य सुख में दुख मेलता है ॥ ९ ॥
ये हैं महत्व परिपूरित प्रश्न सार ।
एकान्त जो नर करैं इनका विचार ॥
होवैं अवश्य जन वे जग मे महान ।
सज्ञान और नर बुद्धि विवेकवान ॥ १० ॥

कुमारसम्भवसार

(तृतीय सर्ग)

सारे देववृन्द से खिंच कर देवराज के नयन हज़ार,
कामदेव पर बड़े चाव से आकर पड़े एकही बार।
अपने सब सेवक-समूह पर स्वामी का आदर-सत्कार,
प्रायः घटा बढ़ा करता है सदा प्रयोजन के अनुसार ॥१॥
"सुख से बैठो यहाँ मनोभव!—इस प्रकार कर वचन-विकास,
आसन रुचिर दिया सुरपति ने अपने ही सिंहासन पास।
स्वामी की इस अनुकम्पा का अभिनन्दन कर शीश झुकाय,
रतिनायक, इस भाँति, इन्द्र से बोला उसे अकेला पाय ॥२॥
सब के मन की बात जानने में अति निपुण! प्रभो देवेश,
विश्व-बीच कर्तव्य कर्म तव क्या है, मुझे होय आदेश।
करके मेरा स्मरण अनुग्रह दिखलाया है जो यह आज,
उसे अधिक करिए आज्ञा से-यही चाहता हूँ सुरराज ॥३॥
इन्द्रासन के इच्छुक किसने करके तप अतिशय भारी,
की उत्पन्न असूया तुझ में—मुझसे कहो कथा सारी।
मेरा यह अनिवार्य शरासन पाँच कुसुम-सायक-धारी,
अभी बना लेवे तत्क्षण ही उसको निज आज्ञाकारी ॥४॥
जन्म-जरा-मरणादि दुःख से होकर दुखी कौन ज्ञानी,
तव सम्मति-प्रतिकूल गया है मुक्तिमार्ग में अभिमानी!
भृकुटी कुटिल कटाक्ष-पात से उसे सुन्दरी सुरबाला,
बाँध डाल रक्खें, वैसे ही पड़ा रहे वह चिरकाला ॥५॥
नीति शुक्र से पढ़ा हुआ भी है यदि कोई अरि तेरा,
पहुँचे अभी पास उसके झट दून राग रूपी मेरा।

जल का ओघ नदी तट दोनों पीड़ित करता है जैसे,
धर्म अर्थ दोनो ही उसके पीड़न करूँ, कहो तैसे ॥६॥
महापतिव्रत धर्मधारिणी किस जितक्विली ने अमरेश !
निज चारुता दिखा कर तेरे चञ्चल चित मे किया प्रवेश।
क्या तू यह इच्छा रखता है, कि वह तोड़ लज्जा का जाल
तेरे कण्ठ देश मे डाले आकर अपने बाहु-मृणाल ॥७॥
समझ सुरत-अपराध, कोप कर, किस तरुणी ने हे कामी,
तुझे तिरस्कृत किया, हुआ तव शीस यदपि तत्पद्गामी?-
उग्र ताप से व्याकुल होकर वह मन में अति पछतावे,
पड़ी रहे पल्लव शय्या पर, किये हुये का फल पावे ॥८॥
मुदित हूजिये वीर ! वज्र तव करे अखण्डित अब विश्राम,
बतलाइये, देवताओ का वैरी कौन पराक्रम-धाम।
मेरे शरसमूह से होकर विफल-बाहुबल कम्पित गात,
अधर कोप-विस्फुरित देख कर डरे स्त्रियों से भी दिन रात ॥९॥
हे सुरेश ! तेरे प्रसाद से कुसुमायुधही मैं, इस काल,
साथ एक ऋतुपति को लेकर, और प्रपञ्च यहीं सब डाल।
धैर्य पिनाकपाणि हर का भी, कहिये, स्खलित करूँ देवार्थ,
और धनुष धरने वाले सब मेरे सन्मुख तुच्छ पदार्थ ॥१०॥
पाद पीठ को शोभित करते हुये इन्द्र ने, इतने पर,
जंघा से उतार कर अपना खिले कमल सम पद सुन्दर।
निज अभिलषित विषय में सुन कर मन्मथ का सामर्थ्य महा,
उससे अति आनन्द पूर्वक, समयोचित, इस भाँति कहा ॥११॥
सखे ! सभी तू कर सकता है, तेरी शक्ति जानता हूँ,
तुझको और कुलिश को ही मैं अपना अस्त्र मानता हूँ।
तपोबली पुरुषों के ऊपर वज्र व्यर्थ हो जाता है,
मेरा तू अमोघ साधन है, सभी कहीं तू जाता है ॥ १२ ॥

तेरा बल है विदित, तुझे मैं अपने तुल्य समझता हूँ,
बड़े काम में इसी लिए ही तव नियुक्ति मैं करता हूँ ।
देख लिया जब यह कि शेष ने सिर पर भूमि उठाई है,
तभी विष्णु ने उस पर अपनी शय्या सुखद बनाई है ॥ १३
यह कह कर कि सदाशिव पर भी चल सकता है शर तेरा
मानो अङ्गीकार कर लिया काम ! काम तू ने मेरा ।
यही इष्ट है, क्योंकि, शत्रु अब अति उत्पात मचाते हैं,
यज्ञभाग भी देववृन्द से छीन छीन ले जाते हैं ॥ १४ ॥
जिसके औरस पुत्र रत्न को करके अपना सेनानी,
सुरविजयी होना चहते हैं, मार असुर सब अभिमानी ।
वही महेश समाधिमग्न है, पास कौन जा सकता है ?
तेरा विशिख तथापि एक ही कार्य सिद्ध कर सकता है ॥१५
ऐसा करो उपाय जाय कर, हे रतिनायक बड़भागी,
हों जिससे पवित्र गिरजा में योगीश्वर हर अनुरागी ।
उनके योग्य कामिनी कुल में वही एक गिरि बाला है,
सत्य बचन ब्रह्मा ने अपने मुख से यही निकाला है ॥ १६ ॥
जहाँ हिमालय ऊपर हर ने तपः क्रिया विस्तारी है,
गिरजा वहीं पिता की अनुमति से सेवार्थ सिधारी है ।
यह संवाद अप्सराओं से सुन पाया मैंने सारा,
भेद जान लेता हूँ सब का सदा इन्हीं के ही द्वारा ॥ १७ ॥
अतः सुरों की कार्यसिद्धि के लिए करो अब तुम प्रस्थान,
इसे करेगी सफल उमा ही, इसमें कारण वही प्रधान ।
तू भी है तथापि इस सब का हेतु अपेक्षाकृत बलवान,
उग आने के पहले आदिम अङ्कुर के जलदान समान ॥ १८ ॥
सकल सुरों की विजयकामना के उपाय हैं हर, उन पर,
शर तेरे ही चल सकते हैं, बड़भागी है तू अतितर ।

अप्रसिद्ध भी कार्य और से हो सकता जो कभी नहीं,
उसके भी करने में यश है, यह तो विश्रुत सभी कहीं ॥ १६ ॥
ये सब सुर तेरे याचक हैं, गति इनकी कुण्ठित सारी,
है तीनों लोकों का मन्मथ! कार्य महामङ्गलकारी।
तव धन्वा के लिए काम यह नहीं निपट घातक भारी,
तेरे तुल्य न वीर और हैं, अहो विचित्र वीर्यधारी! ॥ २० ॥
ऋतुनायक तेरा सहचर है सदा साथ रहनेवाला,
विना कहे ही तुझको देगा वह सहायता, इस काला।
शिखा अग्नि की बढ़ा दीजिये हे समीर! जीवनदाता,
भला पवन से भी क्या कोई इस प्रकार कहने जाता ॥ २१ ॥
एवमस्तु कह कर स्वामी के अनुशासन को अति अभिराम,
मालावत मस्तक ऊपर रख, सादर चला यहाँ से काम।
ऐरावत की पीठ ठोंकने से कर्कश कर को स्वच्छन्द,
सुरपति ने उसके शरीर पर फेरा कई बार सानन्द ॥ २२ ॥
प्रिय वसन्त प्रियतमा प्राणसम रति भी दोनो निपट सशङ्क,
मन्मथ के अनुगामी होकर चले साथ उसके सातङ्क।
"मैं अवश्य सुरकार्य करूँगा, चाहे हो शरीर भी नाश,"
यह दृढ़ कर हिमशैल-शृङ्ग पर गया अनङ्ग शिवाश्रम पास ॥२३॥
उस आश्रमवाले अरण्य में थे जितने संयमी मुनीश,
उनके तपोभङ्ग में तत्पर हुआ वहाँ जाकर ऋतु-ईश।
मन्मथ के अभिमान रूप उस मधु ने अपना प्रादुर्भाव,
चारों ओर किया कानन में, दिखलाया निज प्रबल प्रभाव ॥२४॥
यक्षराज जिसका स्वामी है उसी दिशा की ओर प्रयाण
करते हुये देख दिनकर को, उल्लङ्घन कर समय-विधान।
मन में अति दुःखित सी होकर, हुआ समझ अपना अपमान,
छोड़ा दक्षिण-दिशा-वधू ने मलयानिल निश्वास-समान ॥२५॥

कामिनियों के मधुर मधुर रवकारक नव नूपुर-धारी,
पद से स्पर्श किये जाने की न कर अपेक्षा सुखकारी।
गुद्दे से लेकर, अशोक ने, तत्क्षण, महा-मनोहारी,
कली नवल-पल्लव-युत सुन्दर धारण की प्यारी प्यारी ॥२६॥
कोमल पत्तों की बजाय, झट, पक्षपंक्ति लाली लाली,
आमसञ्जरी के प्रस्तुत कर नये विशिख शोभाशाली।
शिल्पकार ऋतुपति ने उन पर मधुप मनोहर बिठलाये;
काम नाम के अक्षर मानो काले काले दिखलाये ॥२७॥
रहती है यद्यपि कनेर में रुचिर रङ्ग की अधिकाई,
तदपि सुवास हीनता उसके मन को हुई दुःख दायी।
वही विश्वकर्ता करता है जो कुछ जी में आता है;
सम्पूर्णता गुणों की प्रायः कहीं नहीं प्रकटाता है ॥२८॥
बालचन्द्र सम जो टेढ़ी है, जिनका अब तक नहीं विकाशः
ऐसी अरुण वर्ण कलियों से अतिशय शोभित हुआ पलाश।
मानो नव वसन्त-नायक ने, प्रेम-विवश होकर तत्काल,
वनस्थली को दिये नखों के क्षतरूपी आभरण रसाल ॥२९॥
नई बसन्ती ऋतु ने करके तिलक फूल को तिलक समान,
देकर मधुपमालिका रूपी मृदु कज्जल शोभा की खान।
जैसा अरुण रङ्ग होता है बाल सूर्य में प्रातःकाल,
तद्वत, नवल आम-पल्लव-मय अपने अधर बनाये लाल ॥३०॥
रुचिर चिरौंजी के फूलों की रज जो उड़ उड़ कर छाई;
हरिणों की आँखों में पड़ कर पीड़ा उसने उपजाई।
इससे, वे अन्धे से होकर, मरमरात पत्तेवाले,
कानन में, समीर सम्मुख, सब भागे मद से मतवाले ॥३१॥
आममञ्जरी का आस्वादन कोकिल ने कर बारंबार,
अरुणकण्ठ से किया शब्द जो महा मधुरता का आगार।

"हे मानिनी कामिनी ! तुम सब अपना मान करो निःशेष"
इस प्रकार मन्मथ महीप का हुआ वही आदेश विशेष ॥३२॥
जिनके अधर निरोग हो गये हिम पड़ना मिट जाने से;
जिनकी मुख-छवि पीत होगई कुंकुम के न लगाने से।
ऐसी किन्नर-कामिनियों के तन में स्वेद बिन्दु, सुन्दर,
रुचिर पत्र-रचना के ऊपर, शोभित हुये, प्रकट होकर ॥३३॥
शिव आश्रम के आस पास थे जितने मुनिवर वनवासी,
असमय में ही देख आगमन ऋतुपति का मायाराशी।
सहसा अति गुरुतर विकार का, कई बार, खाकर झोंका,
किसी प्रकार उन्होंने अपना विचलित चित्त-वेग रोका ॥३४॥
पुष्पशरासन पर चढ़ाय शर, उस प्रदेश में जब रतिनाथ,
पहुँचा, निज सहधर्म्मचारिणी रति को लेकर अपने साथ।
जितने थे स्थावर, जङ्गम, सब, आतुरता-वश बारंबार,
रति-सूचक-शृङ्गार-भावना करने लगे अनेक प्रकार ॥३५॥
फूलरूप एक ही पात्र में भरा हुआ मीठा मकरन्द,
भ्रमरी के पीने के पीछे, पिया भ्रमरवर ने स्वच्छन्द।
छूने से जिस पिया मृगी ने सुखवश किये विलोचन बन्द,
एक सींग से उसे खुजाया कृष्णसार मृग ने सानन्द ॥३६॥
गजिनी ने मुख में रख कर जल पङ्कज-रजोवास वाला,
रस के वश होकर, फिर, उसको निज गज के मुख में डाला।
आधे खाये हुये कमल के मंजुल-तन्तुजाल देकर,
चक्रवाक ने किया पिया का आदर, अनुरागी होकर ॥३७॥
ऊँचे स्वर से गान-समय में, प्रचुर परिश्रम होने से,
कुछ कुछ बिगड़ गई जिस मुख पर पत्रावली पसीने से।
पुष्पासव पीने से जिस पर घूम रहे दृग अरुणारे,
रसिक किन्नरों ने पत्नी के चूमे मुख ऐसे प्यारे ॥३८॥

फूले हुये नवल फूलों के गुच्छे रूपी कुच वाली,
हैं चञ्चल पल्लव ही जिनके अधर मनोहरता शाली।
ऐसी ललित-लता-ललनाओं से तरुओं ने भी पाया,
झुकी हुई शाखाओं के मिष भुजबन्धन अति मन भाया॥३९॥
चतुर अप्सराओं का, इस क्षण, सुन कर भी मंजुल गाना,
आत्मा का चिन्तन ही करते रहे महेश्वर भगवाना।
जिन महानुभावों के वश में अपना मन हो जाता है,
तपो विघातक विघ्न कभी भी उनके पास न आता है॥४०॥
लिये हुये निज वाम हस्त में अति अभिराम हेम का दण्ड,
लता भवन के भव्य द्वार पर गया हुआ नन्दी उद्दण्ड।
मुख पर उँगली रख धीरे से बोला ऐसे वचन विशेष,
"हे गणवृन्द! करो न चपलता, मानो तुम मेरा आदेश॥४१॥
कम्पहीन सब हुये महीरुह, निश्चल हुये मधुप समुदाय,
मूक हुये खग, शान्त हुये मृग, अपना आवागमन भुलाय।
वह सारा आरण्य नदी का दुर्विलंघ्य अनुशासन पाय,
तत्क्षण ही हो गया चित्रवत, स्वाभाविक भी नियम विहाय॥४२॥
यात्रा में सम्मुख पड़ता है जहाँ शुक्र, उस-देश-समान,
दृष्टि बचाय नन्दिकेश्वर की, बड़े बड़े कर यत्न-विधान।
सुरपुन्नाग-वृक्ष-शाखायें फैली थीं जिस पर सविशेष,
शङ्कर के समाधि-मंडप में रतिनायक ने किया प्रवेश॥४३॥
पावन देवदारु तरुवर की विशद वेदिका सुखदायी,
शार्दूल के रुचिर चर्म से भली भाँति जो थी छाई।
योग मग्न त्रिनयन को बैठे हुये वहीं उसके ऊपर,
शीघ्र शरीर छोड़ने वाले मनसिज ने देखा जाकर॥४४॥
तन का भाग ऊपरी स्थिर था; वीरासन में थे शङ्कर,
बैठे थे सीधे ही वे, पर कन्धे थे विनम्र अतितर।

उलटे रक्खे देख पाणि युग, मन में ऐसा आता था,
खिला कमल उनकी गोदी में मानो शोभा पाता था ॥४५॥
लिपटा कर भुअङ्गवर ऊँचा जटा-कलाप बनाया था,
दोनो कानों मे द्विगुणित कर अक्षमाल लटकाया था।
कृष्णसार मृग चर्म उन्होंने, गाँठ बाँध, लिपटाया था,
कण्ठ कालिमा ने कालापन उसका बहुत बढ़ाया था ॥४६॥
जो थोड़े ही भासमान थे जिनकी अचल उग्र तारा,
और, जिन्होंने भुला दिया था भृकुटी का विलास सारा।
पलक जाल-जिनके निश्चल थे किरण अधोमुख पड़ते थे,
ऐसे नयनों से नासा की नोक महेश देखते थे ॥४७॥
वारिद-वृन्द विना वर्षा के जैसे शोभा पाता है,
विना लोल कल्लोल-कला के जैसे सिन्धु दिखाता है।
बिना वायु वाले मन्दिर में कम्पहीन दीपक जैसे,
अन्तर्गत-मारुत-विरोध से शम्भु हो रहे थे तैसे ॥४८॥
विमल ज्योति की छटा शीश से होकर उदित, निकलती थी,
निकल तीसरे दृग के पथ से जो सब ओर फैलती थी।
उससे, मृदुल-मृणाल-तन्तु की माला से भी कोमलतर,
बालचन्द्रमा की शोभा को म्लान कर रहे थे शङ्कर ॥४९॥
त्रिगुण तीन द्वारों में मन का आवागमन रोक, ईशान,
वश में कर उसको समाधि से, दे हृदयारविन्द में स्थान।
जिसको अविनाशी कहते हैं बड़े बड़े विज्ञान निधान,
उस आत्मा को वह अपने में देख रहे थे करके ध्यान ॥५०॥
मन से भी जिनकी न धर्षणा हो सकती है किसी प्रकार,
ऐसे दुराधर्ष त्रिनयन को देख समीप भाग से मार।
वह, यह सका न जान, तनिक भी, शिथिलित-कर होकर, डर से,
शर भी, और शरासन भी कब छूट पड़े उसके कर से ॥५१॥

तदुपरान्त, निज, सुन्दरता से, मन्मथ का प्रायः निःशेष,
हुआ वीर्य पुनरुज्जीवित सा फिर से करती हुई विशेष।
साथ लिये बल को देवी, उर धरती हुई शम्भु का ध्यान,
हुई नयनगोचर गिरिकन्या गिरिजा गुण-गौरव की खान ॥५२॥
जिसके नव अशोक फूलों ने पद्मराग-छवि छीन लिया,
जिसके कर्णिकार-कुसुमों ने स्वर्ण वर्ण दुर्वर्ण किया।
जिनके निर्गुण्डी के गुच्छे हुये मोतियों की माला,
वही बसन्त-पुष्प के गहने पहने थी वह गिरिबाला ॥५३॥
अति उत्तुङ्ग-उरोज-भार से वह कुछ नम्र दिखाती थी,
बालसूर्य-सम लाल-वस्त्र से ऐसी शोभा पाती थी।
प्रचुर पुष्प-गुच्छों से झुककर नये नये पल्लव वाली,
चलती है, भूतल पर, मानो ललित लता लाली लाली ॥५४॥
अच्छे बुरे स्थान के ज्ञाता चतुर मनोभव के द्वारा,
रक्खी गई धनुष की अन्या डोरी सम शोभा-सारा।
कटि-करधनी बकुल-फूलों की ढीली हो हो जाती थी,
उसको वह अपने नितम्ब पर बार बार ठहराती थी ॥५५॥
परम सुगन्धवती श्वासों से बढ़ी हुई तृष्णा वाले,
बिम्बाधर के पास, मधुप जो आते थे काले काले।
इससे वह दृग चञ्चल करके, क्षण क्षण में घबराती थी,
और खेल के कमल-फूल से उनको दूर उड़ाती थी ॥५६॥
काम-कामिनी को भी लज्जित करने वाली बारंबार,
उस सर्वाङ्ग सुन्दरी को कर लोचन गोचर भले प्रकार।
अतिदुर्जय, अति अगम, जितेन्द्रिय, शूलपाणि शिव के स्वाधीन,
अपने कार्यसिद्धि की आशा मनसिज को फिर हुई नवीन ॥५७॥
होनहार निजपति शङ्कर का तपोभवन जो था सुन्दर,
उसके परम पवित्र द्वार पर शैलसुता पहुँची जाकर।

अन्तर्गत परमात्मा संज्ञक तेजःपुञ्ज विलोकन कर,
प्रखर योग-साधक समाधि से विरत शम्भु भी हुये उधर ॥५८॥
जिनके आसन के नीचे के भूमि भाग को सर्पाधीश,
फण-सहस्र पर बड़े यत्न से रक्खे रहा लगाये शीश।
वे महेश निज प्राणवायु को धीरे धीरे युक्ति समेत,
छोड़ निविड़ वीरासन अपना शिथिलित करके हुये सचेत ॥५६॥
"महाराज गिरिवर की कन्या सेवा करने है आई,
शीश नाय नन्दी ने उनसे कही बात यह सुखदाई।
स्वामी के भ्रूभंग मात्र से जब उसने निदेश पाया,
गिरिजा को सत्कार सहित वह उनके सम्मुख ले आया ॥६०॥
तोड़े हुये हाथ से अपने, महा मनोहरता के मूल,
पत्तों के टुकड़ेयुत नूतन शिशिरान्तक बसन्त के फूल।
गिरिजा की दोनों सखियों ने, विधिवत् करते हुये प्रणाम,
शिव के पैरों पर बिथराये जोड़ पाणिपङ्कज छविधाम ॥६१॥
नील अलक में शोभित नूतन कर्णिकार-कलिका-सुन्दर,
देह झुकाते समय गिराती हुई महीतल के ऊपर।
कानो के पल्लव टपकाती, मस्तक निज नीचे रख कर,
किया उमा ने भी, तदनन्तर, शङ्कर को प्रणाम सादर ॥६२॥
"पावे तू ऐसा पति जिसने देखी नहीं अन्य नारी",
यह सच्ची आशीश ईश ने दी उसको सब सुखकारी।
महामहिमपुरुषो के मुख से वचन निकल जो जाता है,
विश्व बीच विपरीत भाव वह कभी नहीं दरसाता है ॥६३॥
जलती हुई आग में गिरने के इच्छुक पतङ्ग सम मार,
वाण छोड़ने का शुभ अवसर आया है यह कर कुविचार।
गिरिजा के समक्ष शङ्कर को लक्षीकृत कर भले प्रकार,
अपने धन्वा की प्रत्यञ्चा तानी उसने बारंबार ॥ ६४ ॥

मन्दाकिनी नदी ने जिसको निज जल में उपजाया है,
दिनकर ने अपनी किरणों से जिसे विशेष सुखाया है।
वह सरोज-बीजों की माला, अरुण-वर्ण कर में लेकर,
गिरिश तपस्वी को गौरी ने अर्पण की सुन्दर सुन्दर ॥६५॥
प्रिय होगा प्रेमिणी उमाको इसके लेने का व्यापार,
यह विचार कर उस माला को शिवने इधर किया स्वीकार।
संमोहन नामक अमोघ शर निज निषङ्ग से उधर निकाल,
कुसुमशरासन पर, कौशल से, मन्मथ ने रक्खा तत्काल ॥६६॥
राकापति को उदित देखकर क्षुब्ध हुये सलिलेश समान,
कुछ कुछ धैर्य हीन होकर के, संयमशील शंभु भगवान।
लगे देखने निज नयनों से, सादर, साभिलाष, सस्नेह,
गिरिजा का बिम्बाधर-धारी मुखमण्डल शोभा का गेह ॥६७॥
खिले हुये कोमल कदम्ब के फूल तुल्य अङ्गों द्वारा,
करती हुई प्रकाश उमा भी अपना मनोभाव सारा।
लज्जित नयनों से, भ्रमिष्ट सी, वहीं, देखती हुई मही,
अति सुकुमार चारुतर आनन तिरछा करके खड़ी रही ॥६८"
महा जितेन्द्रिय थे, इस कारण, महादेव ने, तदनन्तर,
अपने इस इन्द्रियक्षोभ का बलपूर्वक विनिवारण कर।
मनोविकार हुआ क्यो ? इसका हेतु जानने को सत्वर,
चारो ओर सघन कानन में प्रेरित किये विलोचन वर ॥६९
नयन दाहिने के कोने मे मुट्ठी रक्खे हुये कठोर,
कन्ध झुकाये हुये, वामपद छोटा किये भूमि की ओर।
धनुष बनाये हुये चक्रसम, विशिख छोड़ते हुये विशाल,
मनसिज को इस विकट वेश में त्रिनयन ने देखा उस काल ॥७०
जिनका कोप विशेष बढ़ा था तपोभङ्ग होजाने से,
जिनका मुख दुर्दर्श हुआ था भृकुटी कुटिल चढ़ाने से।

उन हर के तृतीय लोचन से तत्क्षण ही अति विकराला,
अकस्मात् अग्निफुलिङ्ग की निकली दीप्तिमान ज्वाला ॥७१॥
"हा हा! प्रभो क्रोध यह अपना करिये, करिये शान्त,"
इस प्रकार का विनय व्योम में जब तक सब सुर करें नितान्त।
तब तक हर के दृग से निकले हुये हुताशन ने सविशेष,
मन्मथ के मोहक शरीर को भस्मशेष कर दिया अशेष ॥७२॥
अति दारुण विपत्ति के कारण महामोह का हुआ विकाश,
उसने रति के इन्द्रियगण की नियत वृत्ति का किया विनाश।
प्रियतम पति की विषम दशाका क्षणभर उसको रहा न ज्ञान,
उस अबला पर हुआ, इसी मिष, मानो यह उपकार महान ॥७३॥
तरुवर के टुकड़े करता है भीषण बज्रपात जैसे,
तप के विघ्नरूप मनसिज का देह-भङ्ग करके तैसे।
नारी के नैकट्य त्याग की इच्छा से, सब भूत लिये,
भूतनाथ अपने आश्रम से तत्क्षण अन्तर्धान हुये ॥ ७४ ॥
अपनी ललित शरीर-लताभी, उच्च पिता का भी अभिलाष,
व्यर्थ समर्थन कर दोनों को मन में होती हुई हताश।
सखियों ने भी देख लिया सब इस दुर्घटना का व्यापार,
अतः अधिक लज्जित होकर घरगई उमा भी, किसी प्रकार॥७५॥
कुपित रुद्र के भय से अपनी आँख बन्द करनेवाली,
दयायोग्य कन्या को हाथों पर रख गिरिवर बलशाली।
लिये कमलिनी को दाँतो पर सुर गज सम शोभाधारी,
देह बढ़ाता हुआ, वेग से हुआ शीघ्र ही पथचारी ॥ ७६ ॥

[३]

विधिविडम्बना

चारु चरित तेरे चतुरानन! भक्ति युक्त सब गाते हैं।
इस सुविशाल विश्व की रचना तुझसे ही बतलाते हैं॥

कहते हैं तुझ में चतुराई है इतनी सविशेष।
जिसको देख चकित होते हैं शेष महेश रमेश॥
चतुर्वेद की शपथ तुझे है मुझे बात यह बतलाना।
तूने भी, कह, क्या अपने को महा चतुर मन में माना॥
माना सत्य, क्यों कि तूने कुछ कहा नहीं प्रतिकूल।
कमलासन! सचमुच यह तेरी हैगी भारी भूल॥
भली बुरी बातैं सुत की सब पिता सदा सुन लेता है।
अनुचित सुन लेवै तौ भी वह उसे क्षमा कर देता है॥
तेरा तौ त्रिभुवन में विश्रुत परम पितामह नाम।
फिर तुझसे कहने सुनने में भय का है क्या काम?॥
दोष राशि से दूषित तेरी करतूतैं हम पाते हैं।
अतः यहाँ पर कोई कोई उनमें से दरसाते हैं॥
अति नीरस अति कर्कश अति कटु वेद-वाक्य-विस्तार।
क्षण भर तू समेट कर सुन निज अविचारों का सार॥
विक्रम भोजादिक महीपवर मही मयङ्क महा ज्ञानी।
सरस्वती के सच्चे सेवक देवद्रुम समान दानी॥
तूने इनसे भूतल भूषित किया अल्प ही काल।
भूल और क्या हो सकती है इससे अधिक विशाल॥
काव्य कला कौशल सम्बन्धी रुचिर सृष्टि के निर्माता।
मधु-मिश्री से भी अति मीठी वचन-मालिका के दाता॥
कालिदास भवभूति आदि को अन्य लोक पहुँचाय।
कविता-वधू विधे! तूने ही विधवा करदी हाय॥
कपिल कणाद पतञ्जलि गौतम व्यास आदि वर विज्ञानी।
जिनकी कीर्ति-ध्वजा अभीतक सतत फिरै है फहरानी॥
उनको भी तूने क्षण भंगुर किया विवेक विहाय।
दिखलावैं हम तेरी किन किन भूलों का समुदाय॥

रम्यरूप, रसराशि, विमलवपु, लीला ललित मनोहारी।
सब रत्नों में श्रेष्ठ शशिप्रभ अति कमनीय नवल नारी॥
रच फिर उसको जरा जीर्ण तू करता है निःशेष।
भला और तुझ जरठ जीव से क्या होगा सुविशेष॥
उपल पात, जल पात, भयङ्कर वज्रपात भी सहते हैं।
देहपात तक भी सहने में कोई कुछ नहिं कहते हैं॥
किन्तु असह्य उरोजपात का करते ही सुविचार।
तेरी विषम बुद्धि पर बुधवर हँसते हैं शतबार॥
कटु इन्द्रायण से सुन्दर फल मधुर ईख में एक नहीं।
बुद्धिमान्द्य की सीमा तूने दिखलाई है कहीं कहीं॥
निपट सुगन्ध हीन यदि तूने पैदा किया पलाश।
तो क्या कञ्चन में भी तुझको करना न था सुवास?॥
विश्व बनाने वाला तुझको सब कोई बतलाते हैं।
विहग बनाने में भी तेरी भूल किन्तु हम पाते हैं॥
यदि तेरे कर में कुछ होता कला कुशलता लेश।
काक और पिक एक रङ्ग के क्यो होते लोकेश!॥
वायस विहरैं हैं गलियों में हंस न पाये जाते हैं।
कण्टकारि सब कहीं, कमल कुल कहीं कहीं दिखलाते हैं॥
मृदमद पाने का क्या कोई था ही नहीं सुपात्र।
जो तूने उससे पशुओं का किया सुगन्धित गात्र॥
नित्य असत्य बोलने मे जो तनिक नहीं सकुचाते हैं।
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर बड़े बड़े उग आते हैं॥
घोर घमण्डी पुरुषों की क्यों टेढ़ी हुई न लङ्क।
चिन्ह देख जिसमें सब उनको पहचानते निशङ्क॥
दुराचारियो को तू प्रायः धर्म्माचार्य बनाता है।
कुत्सित कर्म्म कुशल कुटिलो को अक्षरज्ञ उपजाता है॥

मूर्ख धनी विद्वज्जन निर्धन उलटा सभी प्रकार ।
तेरी चतुराई को ब्रह्मा बार बार धिक्कार ॥
घोड़े जहाँ अनेक गधों का वहाँ काम क्या था सच कह
विदित हो गई तेरी सारी चतुराई तू चुप ही रह ॥
शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनको नहीं विचार ।
लिखवाता है उनके कर से नए नए अख़बार ॥
विधे, मनोज्ञ मातृभाषा के द्रोही पुरुष बनाना छोड़ ।
राम नाम सुमिरन कर बुड्ढे और काम से अब मुख मो
एकानन हम, चतुरानन तू, अतः कहैं क्या और विशेष ।
बुद्धिमान जन को इतना ही बतलाना बस है भुवनेश ! ॥

[४]

ग्रन्थकार-लक्षण

एक प्रवासी ज्ञान निधान ।
तीर्थराज-वासी गुणवान ॥
बुद्धिराशि विद्या का वारिधि, पास हमारे आया है
नाना कथा नवीन नवीन ।
कहने में वह महा प्रवीण ॥
ग्रन्थकार माहात्म्य मनोहर उसने हमें सुनाया है ।
सुन कर वह माहात्म्य अपार ।
सोच समझ कर भले प्रकार ॥
परमानन्द रूप नद मे मन बहता है लहराता है ।
उसका ही लेकर आधार ।
निज वचनों का कर विस्तार ॥
लक्षण मात्र ग्रन्थकारों का यहाँ सुनाया जाता है ।
शब्द शास्त्र है किसका नाम ।
इस झगड़े से जिन्हें न काम ॥

नहीं विराम चिन्ह तक रखना जिन लोगों को आता है।
    इधर उधर से जोर बटोर।
    लिखते हैं जो तोड़ मरोड़॥
इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं।
    भला बुरा छपवाए सिद्ध।
    धन न सही, नाम ही प्रसिद्ध॥
नाटक उपन्यास लिखने मे ज़रा न जो सकुचाते हैं।
    जिन के नाच कूद का सार।
    बगला भाषा का भंडार॥
वे ही महामहिम विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं॥
    जिनके लोचन कोटर-लीन।
    कच कलाप तक तैल-विहीन॥
जिनके जर्जर तन को मैले कपड़े सदा छिपाते हैं।
    कुटिल कटाक्ष किन्तु दुर्दान्त।
    मति भी गति भी कुटिल नितान्त॥
वेही भारतवर्ष देश में ग्रन्थकार पद पाते हैं॥
    अन्य देश भाषा का ज्ञान।
    काल कूट के घूँट समान॥
स्वयं मातृ भाषा भी जिनको देख देख घबड़ाती है।
    भाड़े पर रख विज्ञ विशेष।
    लिखवाते है जो निज लेख॥
ग्रन्थकार पदवी उनको ही दौड़ दौड़ लिपटाती है॥
    जिन की जिह्वा की खर धार।
    देख चमत्कृत छुरे हजार॥
किन्तु लेखनी जिनके कर मे धार हीन होजाती है।

लेखन कला कुशलता हीन।
बातों मे जो बड़े प्रवीण॥
ग्रन्थकार पदवी उनको ही बिना मोल मिल जाती है॥
लक्ष्मी जिन लोगों के द्वार।
आती नहीं एक भी बार॥
सरस्वती जिनके प्रताप से भूतल से भग जाती है।
मानी मत्त गयन्द समान।
अथवा मूर्त्तिमान अभिमान॥
उनको ही सद्ग्रन्थकार की पदवी गले लगाती है॥
पाकालय का अन्तर्भाग।
नहीं देखता जलती आग॥
किन्तु सदा ईर्षानल से तन जिनका जलता रहता है।
सुर गुरु को भी गाली दान।
देने में जिनको लज्जा न॥
उनको ही ऊँचे दरजे के ग्रन्थकार जग कहता है॥
ए बी सी डी का भी ज्ञान।
जिनको अच्छी भाँति हुआ न॥
अँगरेजी उद्धृत करने में किन्तु न जो शरमाते हैं।
ऐसे विद्या बुद्धि-निधान।
जिनका बड़ा मान सम्मान॥
निश्चय वे ही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते हैं॥
संस्कृत भाषा कौन पदार्थ।
जिन्हें न यह भी विदित यथार्थ॥
धर्मशास्त्र का मर्म किन्तु जो लिख लिख कर समझाते हैं।
जन समाज-संशोधनकार।
व्यर्थ वाद जिनका व्यापार॥

सत्य सत्य वे ही अति उत्तम ग्रन्थकार कहलाते हैं॥
अपने ग्रन्थों का प्रतिवर्ष।
विज्ञापन लिख स्वयं सहर्ष॥
व्यास और वाल्मीकि तुल्य जो अपने को बतलाते हैं।

अथवा पुत्र मित्र का नाम।
देकर जो निकालते काम॥
अति गम्भीर ग्रन्थकारों के गुरुवर वे कहलाते हैं॥
अपनी पुस्तक की सानन्द।
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छन्द॥
अन्य नाम से अख़बारों मे जो शतवार छपाते हैं।
निज मुख से जो गुण विस्तार।
करते सदा पुकार पुकार॥
ग्रन्थकार-पद योग्य सर्वथा वेही समझे जाते हैं।
गृह मे गृहिणी कोप-निधान।
देती जिन्हैं न आदर दान॥
बाहर जिन्हैं न पाठकगण भी भक्ति भाव दिखलाते हैं।
जिनका कहीं नहीं सम्मान।
तिसपर घोर घमण्ड घटा न॥
ग्रन्थकार सिंहासन ऊपर आसन वही लगाते हैं॥

ग्रह ज्यों रवि के चारौं ओर।
किया करैं हैं दौरा दौर॥
त्यों पुस्तक विक्रेता की जो बहु प्रदक्षिणा करते हैं।
दग्धोदर जो किसी प्रकार।
भरते हैं सदैव झख मार॥
ग्रन्थकार गौरव की झोली वेही यश से भरते हैं॥

किसी समालोचक के द्वार ।
सिर घिस घिस कर बारम्बार ॥
निज पुस्तक की समालोचना जो सविनय लिखवाते हैं।
यदि आशय पाया अनुकूल ।
ढूँढ़ा और कहीं अनुकूल ॥
ग्रन्थकार कुल कुमुद चन्द्रमा वेही माने जाते हैं ॥
टेक्स्ट बुकस की सभा प्रधान ।
उसके जितने सभ्य सुजान ॥
उनके प्रिय पुत्रादिक को जो मोदक मंजु खिलाते हैं ।
आते है जो प्रातःकाल ।
और झुकाते हैं निज भाल ॥
ग्रन्थकार कनकासन ऊपर वेही मज़े उड़ाते हैं ॥
नूतन चित्र चरित्र प्रचार ।
करके उनकी रुचि अनुसार ॥
निज पुस्तक में जो धनिकों की व्यर्थ बड़ाई गाते हैं।
उनसे रख भिक्षा की आस ।
करते है जो वचन-विलास ॥
ग्रन्थकार गुरुवों के भी वे कर्णधार कहलाते हैं ॥
ग्रन्थकार गुणगण निःशेष ।
गान नहीं कर सकता शेप ॥
इसीलिये हम इस वर्णन को आगे नहीं बढ़ाते हैं ।
हे हे ग्रन्थकार गुणधाम ।
हे समर्थ ! हे पावन नाम ॥
शत योजन से हम यह अपना मस्तक तुम्हें झुकाते हैं ॥

राधाकृष्णदास

बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। बाबू हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द की दो बहनें थीं, यमुना बीबी और गंगा बीबी। बाबू राधाकृष्णदास गंगा बीबी के दूसरे पुत्र थे। इनके पिता का नाम बाबू कल्याणदास और बड़े भाई का बाबू जीवनदास था। इनसे छोटी इनकी एक बहन थी, उसका नाम लक्ष्मीदेई था। लक्ष्मीदेई एक विदुषी कन्या थीं, उनका विवाह बाबू दामोदरदास बी० ए० के साथ हुआ था।

बाबू राधाकृष्णदास का जन्म संवत् १९२२, श्रावण पूर्णिमा को हुआ। जब ये दस महीने के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया, और थोड़े ही दिन बाद इनके बड़े भाई भी चल बसे। इनके लालन पालन का भार इनकी दुखिया माता पर पड़ा। ये बाबू हरिश्चन्द्र के ही परिवार में सम्मिलित होकर रहते थे। अतएव बाबू हरिश्चन्द्र को इनकी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने का अवसर मिला। वे इन्हें बहुत प्यार करते थे, और बच्चा कह कर पुकारते थे। बाबू हरिश्चन्द्र बड़े कौतूहल प्रिय थे, वे एक न एक युक्ति लड़कों को प्रसन्न करने की निकाला करते थे। इससे ये बराबर उन्हीं के साथ रहते थे और उनकी एक एक बात को बड़े ध्यान से देखते

थे। जब ये दस वर्ष के थे, एक दिन ये बाबू हरिश्चन्द्र के साथ रामकटोरा बाग में गये थे। वहाँ लल्लू नाम का एक लड़का छत पर उछलता कूदता फिरता था। संयोग वश वह नीचे गिर गया। यह देखकर तुरन्त बालक राधा कृष्ण-दास ने यह दोहा कहा :—

लल्लू से मल्लू भये, मल्लू चढ़े अटारि।
अटा कूदि नीचे गिरे, रोवत हाथ पसारि॥

इससे जान पड़ता है कि बाबू हरिश्चन्द्र की संगति से इनकी प्रतिभा बालकपन ही से जाग पड़ी थी। इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। महीने दो महीने ठीक रहे, फिर बीमार पड़ गये। किन्तु विद्या की ओर इनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी, इससे बीमारी की परवा न करके इन्होंने बाबू हरिश्चन्द्र की देख रेख में सत्रह वर्ष की अवस्था तक एंट्रेंस तक अंग्रेज़ी पढ़ ली। और साथही साथ हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और बँगला भाषा में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। पीछे से इन्होंने गुजराती भाषा का भी अभ्यास कर लिया था।

१५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने "दुःखिनी बाला" नाम का एक छोटा सा रूपक "बाल विवाह और विधवा विवाह निषेध और जन्मपत्र विवाह के अशुभ परिणाम" पर लिखा। १६ वर्ष की छात्रावस्था में इन्होंने "निस्सहाय हिन्दू" नाम का एक सामाजिक उपन्यास बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से लिखा। पद्य-रचना की ओर बालकपन से ही इनकी रुचि थी।

बाबू राधाकृष्णदास नागरी-प्रचारिणी-सभा के नेताओं में मुख्य थे। ये बालकपन से लेकर जीवन के अंत समय तक

सभा का काम बड़े उत्साह से करते रहे। सभा से इनका बड़ा प्रेम था। ये मरते समय अपनी लिखी कुल पुस्तकों का स्वत्व सभा के नाम वसीयत कर गये हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य की जैसी कुछ सेवा की है, वह किसी साहित्य-सेवी से छिपी नहीं है।

बाबू राधाकृष्णदास बड़े सच्चरित, सुशील और मिलनसार पुरुष थे। क्रोध और कुचाल का तो इनमें लेश मात्र भी नहीं था। जाति बिरादरी में भी और सर्वसाधारण में भी इनका बड़ा आदर था। ये आजीविका के लिये अपने एक मित्र के साथ ठीकेदारी का काम करते थे। इनका विद्याभ्यास उदरपोषण के लिये नहीं था; वरन् हिन्दी की सेवा के लिये था।

इनके रचित, सम्पादित तथा अनुवादित ग्रंथों के नाम निम्नलिखित हैं:—

१-दुःखिनी बाला, २-निस्सहाय हिन्दू, ३-महारानी पद्मावती, ४-आर्य चरितामृत, ५-रामेश्वर का अदृष्ट, ६-स्वर्णलता, ७-धर्मालाप, ८-स्वर्ग की सैर, ९-नागरीदास का जीवन चरित, १०-हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, ११-कविवर बिहारीलाल, १२-राजस्थान केसरी, १३-आर्य चरित्र, १४-दुर्गेशनन्दिनी, १५-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन चरित, १६-रहिमन विलास, १७-नया संग्रह, १८-सूरसागर, १९-रास पंचाध्यायी, २०-जंगनामा, २१-नहुष नाटक, २२-रामचरितमानस।

इनके सिवाय विविध विषयों पर लिखे हुये गद्य पद्य मय २४ लेख; जो सरस्वती आदि सामयिक पत्रिकाओं में

प्रकाशित हुये थे, और कुछ अधूरी पुस्तकें भी हैं। इनकी रची हुई पुस्तकों में राजस्थान केसरी नाम का नाटक सबसे उत्तम है।

बाबू राधाकृष्णदास की कविता सरस और भावपूर्ण होती थी। नन्ददास के 'भ्रमर गीत' की चाल पर इन्होंने 'प्रताप विसर्जन' नाम की एक कविता लिखी थी, जो अप्रेल, १९०२ की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं। इससे इनकी कवित्वशक्ति और देशभक्ति का पूरा परिचय मिलेगा।

प्रताप-विसर्जन

उन्नति सिर गिरिअवलि गगन सों उत बतरावत ।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत ॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार ।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानो कोउ अवतार ॥
हरन भुवभार को ॥

मुखमंडल अति शान्त कान्तिमय चितवन सोहै ।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहु दिसि जोहै ॥
वीर मण्डली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि ।
मनु भीषम सर-सयन परे कौरव पाण्डव रहें सोहि ॥
हृदय उमड़्यो परै ॥

लखि निज प्रभु की अंत समय की वेदन भारी ।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी ॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उद्वेग महान ।
हाथ जोरि विनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान ॥
बैन आरत सने ॥

अहो नाथ अहो वीर-सिरोमनि भारत-स्वामी।
हिन्दू-कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी !!
कहाँ वृत्ति है आपकी, कौन सोच, कहँ ध्यान ?
देखि कष्ट हिय फटत है, केहि सङ्कट में हैं प्रान॥
कृपा करिकै कहो॥

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिशि फेरो।
भरि कै दीरघ साँस सबन तन व्याकुल हेरो॥
पुनि लखि सुत तन फेरि मुख अति संतप्त अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गँभीर॥
परम आतङ्क सों॥

हे हे वीर सिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान पियारे॥
तुव भुज-बल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृभूमि-स्वाधीनता को प्रबल सत्रु करि व्यर्थ॥
अनेकन कष्ट सहि॥

या प्रताप नै उचित कहौ कै अनुचित भाखौ।
वा स्वतन्त्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाखौ॥
ढाइ महल खँडहर किये सुख सामान विहाय।
छाइ वनन की धूरि को गिरि गिरि मैं टकराय॥
क्लेश को लेश नहिं॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य विधि मम पाछे रहिहै दिन कितने॥
तुच्छ वासना में पग्यो दुःख सहन असमर्थ।
चञ्चल अमरहिं देखि कै होत आस सब व्यर्थ॥
सोच भावी दसा॥

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सों देख्यो ।
मूँदि नैन जल भरे स्वास लै सब दिशि पेख्यो ॥
सन्नाटा चहुँ दिशि छयो सब के मुख गंभीर ।
पृथ्वी दिशि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर ॥
बैन नहिं कछु कढ़ै ॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो ।
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो ॥
पृथ्वीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज ।
कुँवर बहादुर तें परी कौन चूक केहि काज ॥
निरासा जो भई ॥

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि ।
अति गंभीर सतेज मनहुँ गुंजत केहरि धुनि ॥
"सुनौ वीर मेवार के गौरव राखनहार ।
मेरे हिय की वेदना जो कियो आस सब छार ॥
अमर के कर्म ने ॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो ।
इतने हि में मृग एक आनि कै वहाँ जु पैठ्यो ॥
हरबराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर ।
कुटिया के या बाँस मैं फँस्यो पाग को छोर ॥
अमर तौहुँ न रुक्यो ॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे ।
पै नहिं जिय में धीर छुड़ावै ताको आछे ॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ ।
पटकि पाग लखि झोपड़िहि अतिहिं क्रोध के साथ ॥
बैन मुख ते कढ़े ॥

रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे साँस बिना तोहिं आज उजारे॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ।
जो दुख पाये तोहिं मैं सो दैहौं सबै भुलाइ॥
सुखद आवास रचि॥
तबहीं ते ये बैन शूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख वासना अवसि दुख दिवस बिसारिय॥
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम।
बेचि सिसोदिय कीर्त्ति को यह करिहैं अवसि निकाम॥
रुके हम सोचि एहि"॥
हिन्दूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौरयो तब॥
लै लै असि दृढ़पन कियो छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय॥
सङ्क करिये न कछु"॥
दृढ़ प्रतिज्ञ छत्रिनपन सुनि राना मुख विकस्यो।
आश-लता लहलही भई मुखते यह निकस्यो॥
"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुमहिं सुहाइ।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय॥
यही आसीस मम"॥
देखत देखत शान्ति-सदन परताप सिधाये।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाये॥
सबही सुख परताप सँग कियो विसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गँवाय॥
ताहि प्रभु रच्छिए॥

बालमुकुन्द गुप्त

हिन्दीप्रेमियों में ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त को न जानते हों। हिन्दी भाषा के एक अप्रतिम सुलेखक और समालोचक थे। ये सरल, शुद्ध चटकीली भाषा में अद्वितीय थे। इनकी कविता भी सुन्दर और मर्मभेदी होती थी। हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध साप्ताहिक समाचार पत्र "भारतमित्र" के ये सम्पादक थे। ये हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये सदा चेष्टा करते थे, पर शोक है कि कुटिल काल से हिन्दी की उन्नति देखी नहीं गई।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त हरियाना प्रान्त के रोहतक ज़िले के गुरियानी ग्राम के निवासी थे। वहीं गुप्त जी का जन्म मिती कार्तिक शुक्ला ४ संवत् १६२२ को हुआ था। ये अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज दीघल स्थान से आकर गुरियानी में बसे थे इससे ये दीघलियां कहलाते थे। इनका वंश "नग्गे पोते" के नाम से भी प्रसिद्ध है।

गुप्त जी पहले पहल सन् १८८७ ईस्वी में मिरज़ापुर ज़िले के चुनार से प्रकाशित होनेवाले उर्दू पत्र "अखबारे चुनार" के सम्पादक नियत हुये।

सन् १८८८—८६ में चुनार से लाहौर गये और वहाँ के उर्दू अखबार "कोहेनूर" का सम्पादन करने लगे। मेरठ

श्रीयुक्त पण्डित दीनदयालु शर्मा तथा और कई महाशयों के साथ इन्होंने हिन्दी सीखने की प्रतिज्ञा की। वह प्रतिज्ञा बहुत शीघ्र पूरी हो गई। १८८६ के अंतिम भाग में कालाकांकर के दैनिक हिन्दी पत्र "हिन्दोस्थान" से इनका संबंध हुआ। उस समय उसके सम्पादक मान्यवर पण्डित मदनमोहन मालवीय जी और प्रसिद्ध पण्डित प्रतापनारायण जी मिश्र थे। मिश्र जी से हिन्दी सीखने में इनको बहुत कुछ सहायता मिली। कुछ दिन हिन्दोस्थान के सहकारी सम्पादक रह कर ये उससे पृथक् हो गये।

फिर पाँच वर्ष पर्यन्त "हिन्दी बङ्गवासी" के सहकारी सम्पादक रहे। इन्होंने वहाँ भी अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। इन्होंने सन् १८९८ में "भारतमित्र" का सम्पादनभार ग्रहण किया और अन्त समय तक उसीसे संबध रक्खा।

"भारतमित्र" में आकर ही गुप्त जी प्रगट हुये। गुप्त जी ने "भारतमित्र" की बहुत कुछ उन्नति की। इस विषय में स्वयं "भारतमित्र" लिखता है—जिस समय गुप्त जी ने "भारतमित्र" को अपने हाथ में लिया उस समय इसकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। गुप्त जी ने अपने अदम्य उत्साह, अपरिमेय साहस, अकथनीय उद्योग, अनमोल परिश्रम, अक्लान्त चेष्टा और अपूर्व तेजस्विता से काम करके "भारतमित्र" की वह उन्नति की जो उनसे पहिले उसको प्राप्त नहीं हुई थी। उन्होने "भारतमित्र" का नाम किया और "भारतमित्र" ने उनका। इत्यादि;

गुप्त जी का स्वभाव बड़ा सरल था। वह आडम्बरशून्य और सत्यप्रिय थे। सनातन धर्म के पक्के अनुयायी और धर्म-

भीरु थे। पुरानी चाल बहुत पसन्द करते थे। प्राचीन लोगों के बड़े भक्त थे। उनकी निन्दा सह नहीं सकते थे। जो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये प्राचीन कवि और पण्डितों के दोष निकालते थे उनसे गुप्त जी बहुत कुढ़ते थे। इसीसे उन लोगों की कभी कभी बहुत तीव्र आलोचना कर बैठते थे। जिसके पीछे गुप्त जी पड़ते उसकी धज्जियाँ उड़ा डालते थे। सच्ची बातें कहने में कभी नहीं चूकते थे। इनकी समालोचना से बहुत लोग डरते थे। इनकी हिन्दी भाषा में बड़ी धाक थी। इतने पर भी ये किसी से ईर्षा द्वेष नहीं रखते थे। बड़े निष्कपट और मिलनसार थे।

गुप्त जी बड़े हास्यप्रिय थे। हँसना हँसाना बहुत पसन्द करते थे, बात बात में हँसी मजाक निकालना तो गुप्त जी के लिये साधारण बात थी। व्यङ्गमयी तीव्र आलोचना, चुटीली, कविता, हास्यपूर्ण अथच गम्भीर लेख लिखने में ये एक ही थे।

गुप्त जी की लिखी तथा अनुवाद की हुई पुस्तकें कई हैं। जैसे (१) मडेल भगिनी (२) हरिदास (३) रत्नावली नाटिका (४) शिवशम्भु का चिट्ठा (५) स्फुट कविता (६) खलौना (७) खेल तमाशा (८) सर्पाघात चिकित्सा इत्यादि। शिवशम्भु के चिट्ठे और स्फुट कविता से गुप्त जी का देश दशा ज्ञान, स्वदेशानुराग तथा हास्य-प्रियता प्रगट होती है।

यहाँ गुप्त जी की कुछ कविताएँ उद्धृत की जाती हैं:—

[१]

श्री रामस्तोत्र।

अब आये तुम्हरी सरन "हारे के हरि नाम।"
साख सुनी रघुबंशमणि "निर्बल के बल राम॥"१॥

जपबल तपबल बाहुबल, चौथो बल है दाम।
हमरे बल एकौ नहीं, पाहि पाहि श्रीराम ॥ २ ॥
सेल गई बरछी गई, गये तीर तलवार।
घड़ी छड़ी चसमा भये, छत्रिन के हथियार ॥ ३ ॥
जो लिखते अरि हीय पै, सदा सेल के अङ्क।
झपत नैन तिन सुतन के, कटत कलम को डङ्क ॥ ४ ॥
कहाँ राज कहँ पाट प्रभु, कहाँ मान सम्मान।
पेट हेत पायन परत, हरि तुम्हरी सन्तान ॥ ५ ॥
जिनके करसों मरन लौ, छुट्यो न कठिन कृपान।
तिनके सुत प्रभु पेट हित, भये दास दर्बान ॥ ६ ॥
जहाँ लरैं सुत बाप संग, और भ्रात सो भ्रात।
तिनके मस्तक सों हटै, कैसे पर की लात ॥ ७ ॥
बार बार मारी मरत, बारहिं बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पै, खोले गाल कराल ॥ ८ ॥
अब तुम सों विनती यहै, राम गरीब नेवाज।
इन दुखियन अँखियान महँ, बसै आपको राज ॥ ९ ॥
जहँ मारी को डर नहीं, अरु अकाल को त्रास।
जहाँ करै सुख सम्पदा, बारह मास निवास ॥ १० ॥
जहाँ प्रबल को बल नहीं, अरु निबलन की हाय।
एक बार सो दृश्य पुनि, आँखिन देहु दिखाय ॥ ११ ॥
अबलों हम जीवित रहे, लै लै तुम्हरो नाम।
सोहू अब भूलन लगे, अहो राम गुनधाम ॥ १२ ॥
कर्म्म धर्म्म संयम नियम, जप तप जोग विराग।
इन सब को बहु दिन भये, खेलि चुके हम फाग ॥ १३ ॥
धनबल, जनबल, बाहुबल, बुद्धि विवेक विचार।
मान तान मरजाद को, बैठे जूओ हार ॥ १४ ॥

हमरे जाति न बर्न है, नहीं अर्थ नहिं काम।
कहा दुरावैं आपसे, हमरी जाति गुलाम ॥ १५ ॥
बहु दिन बीते राम प्रभु, खोये अपनो देस।
खोवत है अब बैठ के, भाषा भोजन भेस ॥ १६ ॥
नहीं गाँव में भू पड़ो, नहिं जङ्गल में खेत।
घर ही बैठे हम कियो, अपनो कञ्चन रेत ॥ १७ ॥
दो दो मूठी अन्न हित, ताकत पर मुख ओर।
घर ही में हम पारधी, घर ही में हम चोर ॥ १८ ॥
तौ हू आपस में लड़ैं, निसदिन स्वान समान।
अहो! कौन गति होयगी, आगे राम सुजान? १९ ॥
घर में कलह बिरोध की, बैठे आग लगाय।
निस दिन तामें जरत है, जरतहि जीवन जाय ॥ २० ॥
विप्रन छोड़्यो होम तप, अरु छत्तिन तरवार।
बनिकन के पुत्रन तज्यो, अपनो सद्व्यवहार ॥ २१ ॥
अपनो कछु उद्यम नहीं, तकत पराई आस।
अब या भारत भूमि में, सबै बरन हैं दास ॥ २२ ॥
सबै कहैं तुम हीन हौ, हमहु कहैं हम हीन।
धक्का देत दिनान को, मन मलीन मन छीन ॥ २३ ॥
कौन काज जन्मत मरत, पूछत जोरे हाथ?
कौन पाप यह गति भई, हमरी रघुकुलनाथ? २४ ॥

[२]

लक्ष्मी पूजा

जयति जयति लच्छमी जयति मा जग-उजियारी।
सर्वोपरि सर्वोपम सब्बहु तें अति प्यारी ॥

व्यापि रह्यो चहुं ओर तेज जननी एक तेरो ।
तव आनन की जोति होत यह बिस्व उजेरो ॥
जहँ चन्द्रमुखी मुखचन्द्र की, किरनन उजियारो करैं ।
तहँ तम न कटै युग कोटि लौं, कोटि भानु पचि पचि मरैं ॥१॥
"बिन तेरे सब जगत जननि ! मृतवत् अरु निसफल" ।
देवन बात कही यह साँची छाँड़ि छोभ छल ॥
तोहि छाड़ि मा ! देवन केतोही दुख पायो ।
सुरपति चन्द्र कुवेरहु तैं नहिं मिट्यो मिटायो ॥
जब सूखे तालू ओंठ मुख, चरन गहे तव आय के ।
तब दूर भयो दुख सुरन को, रहे नैन झर लाय के ॥२॥
जा घर नहिं तव वास मात सोही घर सूनो ।
द्वारु द्वार बिडरात फिरै तव कृपा विहूनो ॥
औरन की को कहे स्वजन जब धक्का मारैं ।
अपने घर के ही घरसों कर पकरि निकारैं ॥
नहिं भ्रात मात अरु बन्धु कोउ, निरधन को आदर करै ।
निज नारिहु मा तव कृपा विन, आनन मोरि निरादरै ॥३॥
कोटि बुद्धि किन होहिं बिना तव काम ना आवैं ।
कोटिन चतुराई तव बिन धूरहि मिलि जावैं ॥
तहँ कहँ बुद्धि थिराय मात जहँ वास न तेरो ।
जहाँ न दीपक बरै रहे केहि भाँति उजेरो ॥
बहु बुद्धिमान तव कृपा बिन, बुद्धि खोय मारैं फिरैं ।
केते मूरख तव लाड़िले, दूरि दूरि तिनको करैं ॥४॥
जप तप तीरथ होम यज्ञ तव बिन कछु नाहीं ।
स्वारथ परमारथ सबरो तेरे ही माहीं ॥
चलै न घर को काज न पितृन अरु देवन को ।
जनम लेत तव कृपा बिना नर दुख सेवन को ॥

जय जयति अखिल ब्रह्माण्ड के, जीवन को आधार जो ।
जय जयति लच्छमी जगत की, एकमात्र सुख सार जो ॥५॥
भलो कियो री मात आप कीन्हों पुनि फेरो ।
तुम्हरे आये हमरे घर को मिट्यो अँधेरो ॥
तुम्हरे कारन आज मात दीपावलि बारी ।
घर लीप्यो टूटी फूटी सब बस्तु सँवारी ॥
तुम्हरे आये तव सुतन को, आज अनन्द अपार है ।
सब फूले फूले फिरत हैं, तन की नाहिं सम्हार है ॥६॥
मात आपने कङ्गालन की दसा निहारो ।
जिनके आँसुन भीज रह्यो तव आँचल सारो ॥
कोटिन पै रही उड़त पताका मा जिनके घर ।
सो कौड़ी कौड़ी को हाथ पसारत दर दर ॥
हा ! तोसी जननी पाय कै, कङ्गाल नाम हमरो पर्यो ।
धिक धिक जीवन मा लच्छमी, अब हम चाहत हैं मर्यो ॥७॥
गजरथ तुरग विहीन भये ताको डर नाहीं ।
चँवर छत्र को चाव नाहिं हमरे उर माहीं ॥
सिंहासन अरु राजपाट को नाहिं उरहनो ।
ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र सुन्दर पट गहनो ॥
पै हाथ जोरि हम आज यह, रोय रोय विनती करैं ।
या भूखे पापी पेट कहँ, मात कहो कैसे भरैं ॥८॥

(२ नवम्बर १८९६)

[३]

वसन्तोत्सव

आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ।
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी ॥

सरसों तुझको देख रही है आँख उठाये ।
गेंदे ले ले फूल खड़े हैं सजे सजाये ॥
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शन की ।
फूल फूल दिखलाते हैं गति अपने मन की ॥
बौराई सी ताक रही है आम की मौरी ।
देख रही है तेरी बाट बहोरि बहोरी ॥
पेड़ बुलाते हैं तुझको टहनियाँ हिलाके ।
बड़े प्रेम से टेर रहे हैं हाथ उठाके ॥
मारग तकते बेरी के हुये सब फल पीले ।
सहते सहते शीत हुये सब पत्ते ढीले ॥
नीबू नारङ्गी हैं अपनी महक उठायें ।
सब अनार हैं कलियों की दुरबीन लगाये ॥
पत्तों ने गिर गिर तेरा पांवड़ा बिछाया ।
झाड़ पोंछ वायू ने उसको स्वच्छ बनाया ॥
फुलसुंघनी की टोली उड़ उड़ डाली डाली ।
झूम रही हैं मद में तेरे हो मतवाली ॥
इस प्रकार है तेरे आने की तैयारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ॥१॥
एक समय वह भी था प्यारी जब तू आती ।
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती ॥
होते घर घर बन बन मङ्गलचार बधाई ।
राव चाव से होती थी तेरी पहुनाई ॥
ठौर ठौर पर गाये जाते गीत सुहाने ।
दूर दूर जाते तेरा तिहवार मनाने ॥
कुछ दिन पहिले सारे बन उद्यान सुधरते ।
सुन्दर सुन्दर कुञ्ज मनोहर ठाँव सँवरते ॥

लड़की लड़के दौड़ दौड़ उपवन में जाते।
अच्छे अच्छे फूल तोड़ते हार बनाते॥
क्यारी क्यारी में फिर जाते मालिन माली।
चुग चुग सुन्दर फूल बनाते कितनी डाली॥
ठाँव ठाँव पर बिछती सुन्दर फटिक शिलायें।
आनेवाले बैठे छबि निरखें सुख पायें।
सखी देखने आतीं उनकी वह सुघराई।
एक दूसरी को देती सानन्द बधाई॥
सारी शोभा देख देख कर घर को फिरतीं।
कहके अपनी बात मुदित सखियों को करतीं॥
कहती थीं प्रमुदित हो हो के सब सुकुमारी।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी॥२॥
सब किसान मिल के अपने खेतों में जाकर।
फूल तोड़ते सरसों के आनन्द मनाकर॥
बन में होते लड़कों के पाले औ दङ्गल।
चढ़ते ढाकों पर और फिरते जङ्गल जङ्गल॥
कूद फाँद कर भाँति भाँति की लीला करते।
महा मुदित हो जहाँ तहाँ स्वच्छन्द विचरते॥
कोसों तक पृथिवी पर रहतीं सरसों छाई।
देती दृग की पहुँच तलक पीतिमा दिखाई॥
सुन्दर सुन्दर फूल वह उसके चित्त लुभाने।
बीच बीच में खेत गेहूँ जौ के मनमाने॥
वह बबूल की छाया चित को हरने वाली।
वह पीले पीले फूलों की छटा निराली॥
आसपास पालों के वटवृक्षों का झूमर।
जिसके नीचे वह गायों भैंसों का पोखर॥

ग्वालबाल सब जिनके नीचे खेल मचाते ।
बूट चने के लाते होले करते खाते ॥
पशुगण जिनके तले बैठ के आनन्द करते ।
पानी पीते पगुराते स्वच्छन्द बिचरते ।
पास चने के खेतों में बालक कुछ जाते ।
दौड़ दौड़ के सुरुचि साग खाते घर लाते ॥
आपस में सब करते जाते खिल्ली ठट्ठा ।
वहीं खोल कर खाते मक्खन रोटी मट्ठा ॥
बातें करते कभी बैठ के बाँधे पाली ।
साथ साथ खेतों की करते थे रखवाली ॥
कहते हर्षित सभी देख फूली फुलवारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ॥३॥
हाय समय ने एक साथ सब बात मिटाई ।
एक चिन्ह भी उसका नहीं देता दिखलाई ॥
कटे पिटे मिट गये वह सब ढाकों के जङ्गल ।
जिनमें करते थे पशुपक्षी नित प्रति मङ्गल ॥
धरती के जी में छाई ऐसी निठुराई ।
उपजीविका किसानों की सब भाँति घटाई ॥
रहा नहीं तृण न्यार कहीं कृषकों के घर में ।
पड़े ढोर उनके गोभक्षक कुल के कर में ॥
जिन सरसों के पत्तो को डङ्गर थे खाते ।
उनसे वह अपना जीवन है आज बिताते ॥
कहाँ गये वह गाँव मनोहर परम सुहाने ।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने ॥
कपट और क्रूरता पाप और मद से निर्म्मल ।
सीधे सादे लोग बसें जिनमे नहिं बल छल ॥

एक साथ बालिका और बालक जहँ मिलकर।
खेला करते और घर जाते साँझ पड़े पर॥
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई।
जिनके सपने में भी पास कभी नहिं आई॥
एक भाव से जाति छतीसो मिल कर रहतीं।
एक दूसरे का दुख सुख मिलजुल कर सहतीं॥
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बड़ाई।
रहती जिनके एक मात्र आधार सचाई॥
सदा बड़ों की दया जहाँ छोटों के ऊपर।
औ छोटों के काम भक्तिपर उनकी निरभर॥
मेल जहाँ सम्पत्ति प्रीति जिनका सच्चा धन।
एकहि कुल की भाँति सदा बसते प्रसन्न मन॥
पड़ता उनमें जब कोई झगड़ा उलझेड़ा।
आपस में अपना कर लेते सब निबटेड़ा॥
दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई॥
एक चिन्ह भी उसका नहीं देता दिखलाई॥
पतितपावनी पूजनीय यमुना की धारा।
सदा पापियों का जो करती थी निस्तारा॥
अपनी ठौर आज तक वह बहती है निरमल।
बना हुआ है वैसा ही शीतल सुमिष्ट जल॥
विस्तृत रेती अबतक वैसी ही तट पर है।
आसपास वैसाही वृक्षों का झूमर है॥
छिटकी हुई चाँदनी फैली है वृक्षों पर।
चमर रहे हैं चारु रेणुकण दृष्टि दुःखहर॥
वही शब्द है अबतक पानी की हलचल का।
बना हुआ है स्वभाव ज्यों का त्यों जलथल का॥

वोही फागन मास और ऋतुराज वही है ।
होली है और उसका सारा साज वही है ॥
अहह देखने वाले इस अनुपम शोभा के ।
कहाँ गये चल दिये किधर मुँह छिपा छिपा के ॥
प्रकृति देखि ! हा ! है यह कैसा दृश्य भयानक ।
हृदय देख के रह जाता है जिसको भवचक ॥
क्या पृथ्वी से उठ गई सारी मानव जाती ।
क्यों नहि आकर इस शोभा को अधिक बढ़ाती ॥
किसने वह सब अगली पिछली बात मिटाई ।
एक चिन्ह भी उसका नहि देता दिखलाई ॥
सुन पड़ती नहिं कहीं आज वह ध्वनि सुखकारी ।
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओ से प्यारी ॥

[४]

पिता

एहौ जगतपिता के प्रतिनिधि पिता पियारे ।
मोहि जन्म दै जगत दृस्य दरसावनहारे ॥
तव पदपंकज में करौ हौ वारहिं वार प्रनाम ।
निज पवित्र गुनगान की मोहि दीजे बुद्धि ललाम ॥१॥
यद्यपि यह सिर मेरो नहिं परसाद तिहारो ।
प्रेम नेम तें तदपि चहौ तव चरननि धारो ॥
गंगाजू को अर्घ सब, है गंगहि जलसों देत ।
ऐसो बालचरित्र मम लखि रीझौ मया समेत ॥२॥
वन्दौ निहछल नेह रावरे उरपुर केरो ।
लालन पालन भयो सबै विधि जासों मेरो ॥

उलटै पुलटै काम मम अरु टेढ़ी मेढ़ी चाल।
निपट अटपटे ढङ्गहु नित, लखि लखि रहे निहाल ॥३
कहौ कहाँ लग अहौ आपनी निपट ढिठाई।
तव पवित्र तन माहिं बार बहु लार बहाई ॥
सुद्ध स्वच्छ कपड़ान पर बहु बार कियो मल मूत।
तबहुँ कबहुँ रिस नहिं करी मोहि जानि पियारो पूत॥
लाखन ओगुन किये तदपि मन रोष न आन्यो।
हँसि हँसि दिये बिसारि अज्ञ बालक मोहि जान्यो॥
कोटि कष्ट सुख सों सहे जिहि बस अनगिनतिन हानि
वास न करौ तिहि प्रेम कों नित प्रनत जोरि जुग पानि।
बन्दौ तव मुख कमल मोहि लखि नित्य विकासित।
मो सङ्ग विद्या आछत हू तुतराई भासित ॥
लाल वत्स प्रिय पूत सुत नित लै लै मेरे नाम।
सुधा सरिस रस बैन सों जो पूरित आठो याम ॥६
खेलत खेलत कबहुँ धाय तव गरे लपटतो।
लरिकाई चञ्चलताई कै खरो चमटतो ॥
लटकि लटकि कै आपहीं हौ सम्मुख जातो घूमि।
बन्दौ सो श्रीमुख कमल जो लेतो मो मुख चूमि ॥७
जब तब जो कछु बालबुद्धि मेरी में आयो।
अनुचित उचित न जानि आय कै तुमहिं सुनायो ॥
हँसि हँसि ताहू पै दिये उचित ज्वाब मोहि जान।
बन्दौ अति श्रद्धासहित सो मधुर मधुर मुसकान ॥८॥
बन्दौं तुम्हरे तरुन अरुन पंकजदल लोचन।
दया दृष्टि सों हेरि सहज सब सोच विमोचन ॥
मेरे ओगुन पै कबहुँ जिन करी न तनिक निगाह।
सबहि दसा सब ठौर में नित बरस्यो अमित उछाह ॥९

मोहिं मुरझान्यो देखि तुरत जलसौं भरि आये ।
कहूँ रुष्ट्र भये तहूँ ममता सों छाये ।।
तरजन बरजन करतहूँ पूरित पावन प्रेम ।
सब दिन जो तकते हुते वहु ममता सों मम छेम ।।१०।।
खेलन हेत कबहुँ जब निज मीतन सग जातो ।
जब फिरके आतो मारग तकतेही पातो ।।
आवत मोहिं निहारिकै हो हरे भरे ह्वै जात ।
युगल नैन बन्दौ सोई मैं नित प्रति साँझ प्रभात ।।११।।
जिन नैनन के त्रास रह्यो मेरे मन खटको ।
पै वह खटको रह्यो पन्थ सुखसागर तटको ।।
अगनित दुरगुन दुखन ते निज राख्यो रक्षित मोहिं ।
काहे न वे द्दग कमल मम श्रद्धा सर सोभा होहिं ।।१२।।
करौ बन्दना हाथ जोरि तव कर कमलन की ।
सब बिधि जिनसों पुष्टि तुष्टि भइ या तन मन की ।।
दूध भात की कौरियाँ सुचि रुचि स सदा खवाय ।
इतने तें इतनो कियो जिन मोहिं मया सरसाय ।।१३।।
बड़े चावसों केस सँवारत पट पहिरावत ।
जूठे कर मुख धोवत नित निज सँग अन्हवावत ।।
कहूँ सिसुना बस याहु मैं जब रोय उठो अनखाय ।
तब रिझवत हँसि गोद लैकै देत खिलौना लाय ।।१४।।

[५]

सभ्य बीबी की चिट्ठी

पीतम सभ्य होन की, तुम्हरे मन है चाह ।
हमरो तुम्हरो होय पै, कैसे मित्र ! निबाह ।।१।।

हमरे अङ्ग लगी रहत, पोमेटम परफ्यूम ।
सौरभ और सुगन्ध की, पड़ी चहूँ दिस धूम ॥२॥
धूल अङ्ग तुम्हरे रहत, वायू ताहि उड़ात ।
हमरो अति दुर्गन्ध सों, माथा फाट्यो जात ॥३॥
हमरे कोमल अङ्ग कहँ, ढाके राखत गौन ।
तुम्हरे अङ्ग धोती फटी, नाम मात्र की तौन ॥४॥
मेरे सिर पै कैप अरु, मोरपुच्छ लहरात ।
तेरे सिर लिपड़ी फटी, साफ मजूर दिखात ॥५॥
हमरी कटि पेटी लसै, कटि कहँ राखत छीन ।
तुम तगड़ी लटकाय जिमि, अँतड़ी बाहिर कीन ॥६॥
मम मुख "पौडर रोज" सों, मानहु खिल्यो गुलाब ।
तुम खड़ि माटी पोत कै, माथो कियो खराब ॥७॥
मेरे चरन विलायती, चिकनो सुन्दर बूट ।
नागौरा तव पाय मैं, ठाँव ठाँव रहे टूट ॥८॥
मम सुन्दर जंघान मैं, सिल्क रहत नित छाय ।
सदा असभ्य शरीर तव, रहत उघारो प्राय ॥९॥
मम मुख ढङ्ग विलायती, निकसत धीरे बात ।
बबर तुम्हारी जिह्व है, गोरू सम डकरात ॥१०॥
बावरची के हाथ हम, खायँ सदा तर माल ।
चूल्हा फूँकत तुम सदा, खाओ रोटी दाल ॥११॥
हमरी बोली 'गाड' है, तुम छोड़ो 'हरि बोल' ।
यज्ञ याग जप होम अरु, मानो उत्सव दोल ॥१२॥
देखत ही तुमको सदा, होत अरुचि उत्पन्न ।
छन छन आवत है वमी, हियो होत उत्सन्न ॥१३॥
भूमी अरु आकाश जिमि, हम तुम भेद अथाह ।
हमरो तुम्हरो होयगो, कैसे मिल निवाह ॥१४॥

[६]

मरदानी स्त्रियां

लँहगे से छूटीं हम सारी से छूटीं ।
खाना पकाने की चौका लगाने की,
भोजन जिमाने की ख्वारी से छूटीं ।
घोड़ा दौड़ायें चाहे टट्टू कुदायें,
डोली फिनिस की सवारी से छूटीं ॥
मरदाना कुरती देखो ओ फुरती,
ओ हो हो ! चाल गँवारी से छूटीं ।
थियेटर मे जायेंगे लेक्चर उड़ायेंगे,
छुट्टी हुई तावेदारी से छूटीं ॥

[७]

जोगीड़ा

हाँ सदाशिव गोरख जागे—सदाशिव गोरख जागे
लण्डन जागे पेरिस जागे अमरीका भी जागे ।
ऐसा नाद करूँ भारत में सोता उठ कर भागे ॥
हाँ सदाशिव गोरख जागे—

मन्तर मारूँ जन्तर मारूँ भूत मसान जगाऊँ ।
सब भारतवालों की अक्किल चुटकी मार उड़ाऊँ ॥
सदाशिव गोरख जागे—

अक्कड़ तोडूँ कक्कड़ तोडूँ तोडूँ पत्थर रोड़े ।
सारे बाबू पकड़ बनाऊँ बिना पूछ के घोड़े ॥
सदाशिव गोरख जागे—

नाक फोड़ बाबू बच्चों की डालूँ कच्चा सूत।
सब की एक रकाबी कर दूँ तो जोगी का पूत॥
सदाशिव गोरख जागे-

ठेठ लण्डन से आया जी--गुरु का पञ्जा धराया जी।
अण्डा खाया बण्डा खाया माछ मछरियाँ बीफ।
आप राँध के मुर्गी खाई सब भोजन में चीफ॥
हुये तब पक्के हिन्दू कचाई रही न बिन्दू।
खूब सिर को घुटवाया, जती का वेश बनाया॥
लोक पताला देश निराला उसमें नगर चिकागू।
तिसमें मेला रेलमठेला जाय हुये बड़भागू॥
धरम की धूम मचाई, पड़ी सब ओर अवाई।
जुड़े सब गोरे गोरी, सिली मोरी में मोरी॥
मोर मुसल्ले चीन चगिल्ले जू जू जू कृस्तान।
सब की आँखों में ठहराया हिन्दू धर्म महान॥
बजा वेदों का डङ्का, गई मिट सारी शङ्का।
मिले तब चेली चेले, हुये रेलम के ठेले॥
धूम धड़क्का तूम तड़क्का अड़गड़ गड़गड़ गाजा।
भण्ड उपनिषत् का तीनो लोकों में धौंसा वाजा॥
हुई पाली पर पाली, फटाफट बाजी ताली।
बढ़ा चारों दिस आदर, खुशी से बोला दादर॥

बीबी जी वचनम्—

हुई बाबा जी तेरी—सदा चरणों की चेरी।
हे सन्यासी सदा उदासी सुनके तुम्हरी बानी।
जीमें बसो तुम्हारी मूरत भूल गई कृस्तानी॥

प्रेम ईसाका छूटा, नेह मरियम से टूटा।
 जोग का पन्थ बताओ, मुझे भी सङ्ग लगाओ॥
पाँव दबाऊँ अलख जगाऊँ, सेवा करूँ बनाय।
साथ तुम्हारे सदा रहूँगी, तन में भसम रमाय॥
 कहो तो अन्दर आऊँ, कहो तो मन्दर आऊँ।
 गूदड़ी झाड़ बिछाऊँ, ध्यान चरनों का लाऊँ॥
गङ्गा जल में मुर्गी राँधूँ, करके हिन्दू रीत।
तुलसी डाल उबालूँ अण्डे, गर्मी गिनूँ न शीत॥
 करूँ गोबर का चौका, माँस तब राँधूँ गौका।
 करूँ ऐसी सुथराई, देख सब करैं बड़ाई॥
हे जोगी जी रीति जोग की अब तुम मुझे सिखाओ।
ऊँचे नीचे आड़े टेढ़े आसन हमें सिखाओ॥
 बताओ मुद्रा कैसी, रीत हो उसकी जैसी।
 शङ्ख घंटे बहु बाजें, सिद्ध साधक सब गाजें॥

बाबा जी—

चली जा रस्ते रस्ते—यहाँ जोगी अलमस्ते।
भागो चेली गुड़ की भेली मैं जोगी अवधूत।
यहाँ फक़त है कफनी सेली सिंगी और विभूत॥
 चली जा नाले नाले, कि जिससे पूछ न हाले।
 करो घर में गुलछर्रें, यहाँ से बोलो भर्रें॥

चेली जी—

कच्चे जोगी पक्के भोगी बालक निपट नदान।
जोग भोग का भेद न जाना, दोनों एक समान॥
 निरा चोला रँगवाया, जती का वेष बनाया।
 जोग का भेद न पाया, मुफत में अलख जगाया॥

बाबा जी—

हाँ मेरी जोगिन सब रस भोगिन रहो सदा निरद्वन्द
आसन सीखो मुद्रा सीखो. करो अभय आनन्द॥
जरा अब मिल कर बाजे, माल आवेंगे ताजे।
मिलेंगे कितने बुल्लू, करें चिल्लू में उल्लू॥

चेलागण बचन—

जती लण्डन से आया—ब्रह्म का भेद बताया।
जैसी रण्डी तैसी सण्डी, सोई खसम सोई जार।
ब्रह्म सत्य है ब्रह्म एक है, यही वेद का सार॥
एक है पक्का कच्चा, एक है बालक बच्चा।
एक हैं नर या नारी, एक हैं लोटा थारी॥
रलमिल एक हुये बाबा जी, मेहतर डोम चमार।
एक रकाबी एक ही प्याला, सब कुछ एकाकार॥
पन्थ यह खूब चलाया, बड़ा अपने मन भाया।
जती जी कुछ दिन जीओ, बताशे घोलो पीओ॥
एक भये सब बाम्हन नाई, कायथ कोल कुम्हार।
चोटी काटी चौका माटी, धागा दिया उतार॥

चेलागण बचन—

यती जी इसका खोलो भेद।
अण्डा भला कि मण्डा बाबा आँत भली या मेद।
बिस्कुट भला कि सोहन हलवा बकबक भली कि वेद

बाबा जी बचन—

जरा सुर ताल से नाचो।

जो अण्डा सोई ब्रह्मण्डा, इसमें नाहीं भेद ।
दोनों अच्छे समझे बच्चे, सोई आँत सोई मेद ॥
वेद का सार यही है, बुद्धि का पार यही है ।
मिले तो अण्डा चक्खो, मिले तो मण्डा भक्खो ॥

[८]

तानसेन ।

[१]

यह आप जानते हैं विक्रम था एक राजा ।
दरबार नौरतन से था उसका जगमगाता ॥
था तानसेन भी एक उस्ताद पूरा पूरा ।
दरबार में वह उसके एक रोज आन पहुँचा ॥
अर्थात् उस जगह वह सचमुच ही आ पहुँचता ।
पर क्या करे वह तब तक पैदा नहीं हुआ था ॥

[२]

तब तानसेन जी ने की रेल की सवारी ।
पूछा तो कहा अब है कलकत्ते की तयारी ॥
भाड़े की गाड़ी लेकर हुगली के पुल से होकर ।
एक ठाठ से गया वह विक्रम के घर के भीतर ॥
अर्थात् वह निश्चय ही विक्रम के घर पे जाता ।
पर क्या करे कि तबतक पुल ही नहीं बना था ॥

[३]

कलकत्ते में फिर उसकी कुछ भी न थी निशानी ।
उज्जैन से थी उस दम विक्रम की राजधानी ॥

तब तानसेन अपनी विद्या लगा दिखाने ।
एक खूब सा पियानो लेकर लगा बजाने ॥
अर्थात् वह पियानो अच्छी तरह बजाता ।
पर क्या करे वह बाजा तबतक नहीं बना था ॥

[४]

जो हो फिर उसने ऐसा डटकर मलार गाया ।
दरबार भर को उसने राजा सहित भिजाया ॥
फिर इसके बाद दीपक इस धुन से उसने छेड़ा ।
जलभुन के बस वहीं पर उसका मिटा बखेड़ा ॥
अर्थात् सबही निश्चय खाते वहाँ पे गोता ।
और तानसेन खुद भी जल भुन के खाक होता ॥
राजा के पास था पर वाटर पुरूफ अच्छा ।
और तानसेन पहले उठकर चला गया था ॥

[५]

तब ही से गीत उसके हैं सबके मुँह पे जारी ।
उस्ताद हो गया वह सबकी नजर में भारी ॥
करते हैं श्राद्ध उसका मिल जुल के सब गवैये ।
अथात् उसके गीतों का हैं वह श्राद्ध करते ॥
वह तो था एक मुसलमाँ कहती थी उसकी सूरत ।
उसके लिये भला भी क्या श्राद्ध की ज़रूरत ॥

[६]

साधो पेट बड़ा हम जाना ।
यह तो पागल किये जमाना ॥
मात पिता दादा दादी, घरवाली नानी नाना ।
सारे बने पेट की खातिर, बाकी फकत बहाना ॥

पेट हमारा हुण्डी पुर्जा पेटहि माल खजाना ।
जबसे जन्मे सिवा पट के और न कुछ पहचाना ॥
लड्डू पेड़ा पूरी बरफी रोटी साबूदाना ।
सबै जात है इसी पेट में हलवा ताल मखाना ॥
यही पेट चटकर गया होटल, पीगया बोतल खाना ।
केला मूली आम सन्तरे सबका यही खजाना ॥
पेट भरे लारड कर्जन ने लेक्चर देना जाना ।
जब जब देखा तब तब समझे जहाँ खाना तहाँ गाना ॥
बाहर धर्म्म भवन शिवमन्दिर क्या ढूंढ़े दीवाना ।
ढूँढ़ो इसी पेट में प्यारो तब कुछ मिले ठिकाना ॥

[१०]

उर्दू को उत्तर

१७ मई १९०० के अवध पञ्च में "उर्दू की अपील" नाम से एक कविता छपी थी, उसका यह उत्तर है । असल अपील भी फुट नोट में दी गई है । छोटे लाट मेकडानलड ने युक्त प्रदेश में नागरी अक्षर जारी किये, उस समय उर्दू के पक्ष वालों ने यह जोश दिखाया था । भारतमित्र द्वारा उसका उत्तर यह दिया गया था* ।

न बीबी बहुत जी में घबराइये ।
सम्हलिये ज़रा होश में आइये ॥
कहो क्या पड़ी तुम पै उफ़ाद है ।
सुनाओ मुझे कैसी फ़रियाद है ॥

(१) यक्त अपील इस प्रकार है :—

खुदाया पड़ी कैसी उफ़ाद है ।
बड़े लाट साहब से फ़रियाद है ॥

किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या।
सुनूँ हाल मैं भी तो उसका ज़रा॥
न उठती में यों मौत का नाम लो।
कहाँ सौत मत सौत का नाम लो॥
बहुत तुम पे हैं मरने वाले यहाँ।
तुम्हारी है मरने की बारी कहाँ॥
बहुत बहकी बहकी न बातें करो।
न साये से तुम आप अपने डरो॥
ज़रा मुँह पे पानी के छींटे लगाव।
यह सब रात भर की खुमारी मिटाव॥
तुम्हारी ही है हिन्द में सब को चाह।
तुम्हारे ही हाथों है सब का निबाह॥
तुम्हारा ही सब आज भरते हैं दम।
यह सच है तुम्हारे ही सिरकी क़सम॥
तुम्हारी ही ख़ातिर हैं छत्तीस भोग।
कि लट्टू है तुम पे ज़माने के लोग॥
जो हैं चाहते उन पे रीझो रिझाव,
कोई कुछ जो बेंडी कहे सो सुनाव॥
वही पहनो जो कुछ हो तुमको पसन्द।
कसो और भी चुस्त महरम के बन्द॥
करो और कलियों का पाजामा चुस्त।
वह धानी दुपट्टा वह नकसक दुरुस्त॥
वह दाँतो में मिस्सी घड़ी पर घड़ी।
रहे आँख आईने ही से लड़ी॥

मुझे अब किसी का सहारा नहीं।
यह बेवक़्त मरना गवारा नहीं॥

कड़े को कड़े से बजाती फिरो ।
वह बाँकी अदायें दिखाती फिरो ।।
मगर इतना जी में रखो अपने ध्यान ।
वह बाज़ारी पोशाक है मेरी जान ।।
जना था तुम्हें मा ने बाज़ार* में
पली शाह आलम दरबार में ।।
मिली तुमको बाज़ारी पोशाक भी ।
वह थी दोगले काट की फ़ारसी ।।
वह फिर और भी कटती छटती चली ।
बजे रोज़ उसकी पलटती चली ।।
वही तुमको पोशाक भाती है अब ।
नहीं और कोई सुहाती है अब ।।
मगर एक सुन आज मतलब की बात ।
न पिछला वह दिन है न पिछली वह रात ।।

मेरा हाल बहरे खुदा देखिये ।
ज़रा मेरा नश्वोनुमा देखिये ।।
मैं शाहों की गोदों की पाली हुई ।
मेरी हाय यों पायमाली हुई ।।
निकाले ज़बाँ फिरती हूँ बावली ।
खुदाया मैं दिल्ली की थी लाड़ली ।।
अदायें बला की सितम का जमाल ।
वह सज धज क़ियामत वह आफ़त की चाल ।।

* तुर्की भाषा में उर्दू छावनी या बाजार को कहते हैं। शाहजहाँ के लश्कर में कई भाषाओं के मिलने से उर्दू बनी थी। इसीसे इसका नाम बाज़ारी भाषा अर्थात् उर्दू रखा गया।

किया है तलब तुमको सरकार ने।
तुम आई हो अङ्गरेज़ी दरबार में॥
सो अब छोड़िये शौक़ बाज़ार का।
अदब कीजिये कुछ तो दरबार का॥
अदब की जगह है यह दरबार है।
कचहरी है यह कुछ न बाज़ार है॥
यहाँ आई हो आँख नीची करो।
मटकने चटकने पे अब मत मरो॥
यहाँ पर न झाँजों को झनकाइये।
दुपट्टे को हरगिज़ न खिसकाइये॥
न कलियों की याँ अब दिखाओ बहार।
कभी याँ पै चलिये न सीना उभार॥
वह सब काम कोठे पे अपने करो।
यहाँ तो अदब ही को सर पर धरो॥
यह सरकार ने दी है जो नागरी।
इसे तुम न समझो निरी घाघरी॥
तुम्हारी यह हरगिज़ नहीं सौत है।
न हक़ में तुम्हारे कभी मौत है॥

मेरे इश्क का लोग भरते थे दम।
नहीं झूठ कहती खुदा की क़सम॥
वह आफ़त लड़कपन में आने को थी।
जवानी अभी सिर उठाने को थी॥
निकाले थे कुछ कुछ अभी हाथ पाँव।
चमक फैलती जाती है गाँव गाँव॥
कि ग़ैवो तमाचे से मुँह फिर गया।
मह्ने चारदह अब्र में घिर गया॥

समझ लो अदब की यह पोशाक है ।
हया और इज़्ज़त की यह नाक है ॥
अदब और हुर्मत की चादर है यह ।
चढ़ा गोद मे जिसके मादर है यह ॥
यही आप की मा की पोशाक थी ।
यह आज़ाद* से पूछना तुम कभी ॥
इनायत है तुम पे यह सर्कार की ।
तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी ॥
बुराई न इसकी करो दूबदू ।
बढ़ायेगी हरदम यही आबरू ॥

मेरी गुलगू और हिन्दी के हर्फ़ ।
वह शोलाफिशानी यह दरयाय बर्फ़ ॥
इस अन्दाज़ पे दिल हुआ लोट पोट ।
दुलाई में अतलस के गाढ़े की गोट ? ॥
खुदाया न क्यों मुझ को मौत आगई ।
कहाँ से मेरे सर ये सौत आगई ? ॥
न झूमर न छपका न वाले रहे ।
न गेसू मेरे काले काले रहे ! ॥
न अतलस का पाजामा कलियों भरा ।
दुपट्टा गुलाबी मेरा क्या हुआ ? ॥
न सुरमा न मिस्सी न मेहदी का रंग ।
अजब तेरी कुदरत अजब तेरे ढंग ! ॥

* आज़ाद से मतलब प्रोफेसर मुहम्मद हुसेन आज़ाद है । उन्होंने अपनी आबेहयात नाम की पुस्तक की भूमिका में उर्दू को ब्रजभाषा की बेटी कहा है ।

पुरानी भी है वह तुम्हारे ही पास ।
उसे भी पहन लो रहो बेहिरास ॥
करो शुक्रिया जी से सरकार का ।
कि उसने सिखाई है तुम को हया ॥

न बेले की बद्धी न अब हार है ।
न जुगनू गले में तरह दार है ॥
न झाँझों की झनझन कड़ों का न शोर ।
दुपट्टे की खसकन न महरम का जोर ॥
वह बांकी अदायें वह तिरछी चलन ।
फिफरूँ हुआ हो गया सब हरन ॥
बस अब क्या रहा क्या रहा क्या रहा ? ।
फ़क़त एक दम आता जाता रहा ! ॥
यह सौदा बहुत हमको महँगा दिया ।
कि खिलअत में हाकिम ने लहँगा दिया ! ॥
अँगोछे की अब तुम फबन देखना ।
खुली धोतियों का चलन देखना ॥
वह सेन्दूर वालों में कैसी जुटी ।
किसी पार्क में या कि सुर्खी कुटी ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म सं० १९२२ में हुआ। ये अगस्त्य गोत्रीय, शुक्ल यजुर्वेदीय सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम पंडित भोलासिंह उपाध्याय था। इनके पूर्वज बदाऊँ के रहने वाले थे, किन्तु लगभग तीन सौ वर्षों से वे आजमगढ़ के निकट तमसा नदी के किनारे क़सबा निज़ामाबाद में आ बसे है।

उपाध्याय जी का विद्यारंभ उनके सुयोग्य पंडित और सच्चरित्र चचा ब्रह्मासिंह ने पाँच ही वर्ष की अवस्था में करा दिया था। सात वर्ष की अवस्था में ये निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल मे भरती हुये। वहाँ से सं० १९३६ में मिडिल वर्नाक्यूलर की परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर और मासिक छात्र-वृत्ति पाकर ये बनारस के क्वींस कालेज में अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। किन्तु थोड़े ही दिनो मे स्वास्थ्य बिगड़ जाने से इन्हें अंग्रेज़ी पढ़ना छोड़कर घर चला आना पड़ा। इसके बाद घर पर इन्होंने चार पाँच वर्ष तक उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत का अभ्यास किया। सं० १९३९ मे इनका विवाह हुआ और सं० १९४१ मे ये निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल में अध्यापक नियत हुये। सं० १९४५ मे इन्होंने नार्मल-परीक्षा पास की। निज़ामाबाद में सिख सम्प्रदाय के एक साधु बाबा सुमेरसिंह

रहते थे। वे हिन्दी भाषा के अच्छे कवि थे। उनकी संगति से उपाध्याय जी को हिन्दी की ओर विशेष अभिरुचि उत्पन्न हुई। पहले पहल इन्होंने वेनिस का बाँका और रिपवान विंकल का हिन्दी अनुवाद करके काशी-पत्रिका में प्रकाशित कराया। इसके पश्चात् कुछ निबन्धों का हिन्दी अनुवाद करके "नीति-निबन्ध," गुलज़ार दविस्ताँ का हिन्दी अनुवाद करके "विनोद वाटिका" और गुलिस्ताँ के आठों बाब का हिन्दी अनुवाद करके "उपदेश कुसुम" नाम से तीन पुस्तकें लिखीं। सं० १९४६ में इन्होंने कानूनगोई की परीक्षा पास की और एक वर्ष बाद ही कानूनगो का स्थायी पद भी प्राप्त कर लिया। तब से ये रजिस्ट्रार कानूनगो, सदर नायब कानूनगो और गिरदावर कानूनगो आदि के पदों पर काम करते करते अब लगभग बीस वर्ष से आज़मगढ़ के सदर कानूनगो के पद पर हैं। अब इनका विचार शीघ्र ही पेंशन लेकर साहित्य-सेवा में जीवन व्यतीत करने का है।

उपाध्याय जी बँगला भाषा के भी अच्छे जानकार हैं। खड्गविलास प्रेस के मालिक बाबू रामदीनसिंह से इनकी बड़ी मित्रता थी। इनकी रचित और अनुवादित प्रायः सब पुस्तकें खड्गविलास प्रेस ही से प्रकाशित हुई हैं। इनका लिखा हुआ "ठेठ हिन्दी का ठाठ" सिविल सर्विस परीक्षा के कोर्स में है।

वर्तमान हिन्दी-कवियों में उपाध्याय जी एक ख़ास स्थान के अधिकारी हैं। हिन्दी-साहित्य में इनकी पहुँच प्रामाणिकता के स्थान तक समझी जाती है। इनका लिखा हुआ हिन्दी में अतुकान्त महाकाव्य "प्रियप्रवास" इनकी प्रतिभा का उज्ज्वल प्रमाण है। ये कठिन से कठिन, और सरल

सरल, दोनों प्रकार की हिन्दी में गद्य-पद्य-रचना करने में सिद्ध-हस्त हैं। पहले ये ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे अब खड़ी बोली में लिखते हैं। आजकल ये "वैदेही वनवास" नाम से एक और महाकाव्य की रचना कर रहे हैं। साथही रोज़-मर्रा की बोलचाल में हिन्दी महावरों पर "बोलचाल" नामक एक पद्य-पुस्तक भी लिख रहे हैं। अबतक इस पुस्तक में कंठ से ऊपर के अंग उपांगों के वर्णन में ही पंद्रह सौ पद्य लिखे जा चुके हैं।

उपाध्याय जी समय समय पर कितनी ही साहित्यिक सभाओं के सभापति भी चुने गये हैं। हिन्दी-संसार में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद के लिये भी इनका नाम लिया जा रहा है।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

१—प्रभुप्रताप।

चाँद औ सूरज गगन में घूमते हैं रात दिन।
तेज औ तम से, दिशा होती है उजली औ मलिन॥
वायु बहती है, घटा उठती है, जलती है अगिन।
फूल होता है अचानक वज्र से बढ़कर कठिन॥
जिस निराले काल के भी काल के कौशल के बल।
वह करे, सब काल में संसार का मङ्गल सकल॥१॥
क्या नहीं है हाथ मे उसके, वह क्या करता नहीं।
चाहता जो कुछ है वह फिर, वह कभी टरता नहीं॥
सुख नहीं पाता है वह, जिस पर है वह ढरता नहीं।
कौन फिर उसको भरे? जिसको कि वह भरता नहीं॥
जितनी है करतूत उसकी वह निराली है सभी।
उसके भेदों का पता कोई नही पाता कभी॥२॥

कितने ही सुन्दर बसे नगरों को देता है उजाड़।
धूल कर देता है ऊँचे ऊँचे कितने ही पहाड़॥
एक झटके मे करोड़ों पेड़ लेता है उखाड़।
इस सकल ब्रह्माण्ड को पल भर में सकता है बिगाड़।
उसके भय से काँपते हैं देवते भी रात दिन।
मोम हो जाता है वह भी, जो है पत्थर से कठिन॥३॥
राज पाकर जिसको करते देखते थे हम विहार।
माँगता फिरता है कल वह भीख, हाथों को पसार॥
एक टुकड़े के लिये जो घूमता था द्वार द्वार।
आज धरती है कंपाती उसके धौंसे की धुकार॥
नित्य ऐसी कितनी ही लीला किया करता है वह।
रंक करता है, कभी सिर पर मुकुट धरता है वह॥४॥
कितने ही उजड़े हुये घर को बसाता है वही।
कितने ही बिगड़े हुये को भी बनाता है वही॥
गिरने वाले को पकड़ करके उठाता है वही।
भूलने वाले को सीधा पथ दिखाता है वही॥
इस धरा पर है नहीं सुनता कोई जिसकी कही।
उस दुखी की सब विथा सुनता, समझता है वही॥५॥
डाल सकता सीस पर जिसके पिता छाया नहीं।
गोद माता की खुली जिसके लिये पाया नहीं॥
है पसीजी देख कर जिसकी विथा जाया नहीं।
काम आती दीखती जिसके लिये काया नहीं॥
बांह ऐसे दीन की है प्यार से गहता वही।
सब जगह सब काल उसके साथ है रहता वही॥६॥
यह अँधेरी रात, जिसमे है घिरी काली घटा।
यह विकट जङ्गल, जहाँ पर शेर रहता है डटा॥

वह महा मरघट, पिशाचों का, जहाँ है, जमघटा ।
वह भयङ्कर ठाम जो है लोथ से बिल्कुल पटा ॥
मत डरो ये कुछ किसी का कर कभी सकते नहीं ।
क्या सकल संसार पाता है पड़ा सोता कहीं ॥७॥
जिस महा मरुभूमि से कढ़ती सदा है लू लपट ।
वारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट ॥
जिस विशद जल-राशि का है दूर तक मिलता न तट ।
है उसी के बीच हो जाता धरातल भी प्रगट ॥
वह कृपा ऐसी किया करता है कितनी ही सदा ।
लाभ, जिससे हैं उठाते सैकड़ों जन सर्वदा ॥८॥
जिस अँधेरे को नहीं करता कभी सूरज शमन ।
उस अँधेरे को सदा करता है वह पल मे दमन ॥
भूल करके भी किसी का है जहाँ जाता न मन ।
वह बिना आयास के करता वहाँ भी है गमन ॥
देवतों के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी ।
उस खेलाड़ी के लिये हस्तामलक है वह सभी ॥९॥
जगमगाती गगन-मंडल की विविध तारावली ।
फूल, फल, सब रंग के सब भाँति की सुन्दर कली ॥
सब तरह के पेड़ उनकी पत्तियाँ साँचे ढली ।
अति अनूठे पंख की चिड़ियाँ प्रकृति हाथो पली ॥
आँखवाले के हृदय मे है बिठा देती यही ।
इन अनूठे विश्व-चित्रो का चितेरा है वही ॥१०॥
जिसने देखा है अरोरा बोरिएलिस का समा ।
रंग जिसकी आँख मे है मेघमाला का जमा ॥
जो समझ ले व्यूह तारो का अधर में है थमा ।
जो लखे सब कुछ लिये है घूमती सिगरी क्षमा ॥

कुछ लगाता है वही करतूत का उसकी पता ।
भाव कुछ उसके गुनों का है वही सकता बता ॥११॥
है कहीं लाखों करोड़ों कोस में जल ही भरा ।
है करोड़ो मील में फैली कहीं सूखी धरा ॥
हैं कहीं परवत जमाये दूरतक अपना परा ।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोशों तक हरा ॥
बह रही नदियाँ कहीं, है गिर रहे झरने कहीं ।
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखाती है नहीं ॥१२॥
जी लगा कर आँख की देखो क्रिया कौतुक भरी ।
इस कलेजे की बनावट की लखो जादूगरी ॥
देखकर भेजा विचारो फिर विमल बाजीगरी ।
इस तरह सब देह की सोचो सरस कारीगरी ॥
फिर बता दो यह हमें संसार के मानव सकल ।
इस जगत मे है किसी की तूलिका इतनी प्रवल ॥१३॥
जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया ।
दो घड़ा तय्यार दूधो का तभी उसने किया ॥
आपदा टालीं अनेको बुद्धि, बल, विद्या दिया ।
की भलाई की न जानें और भी कितनी क्रिया ॥
तीन पन है वीतता तब भी तनिक चेते नहीं ।
हम पतित ऐसे हैं उसका नाम तक लेते नहीं ॥१४॥
हे प्रभो है भेद तेरा वेद भी पाता नहीं ।
शेष शिव सनकादि को भी अंत दिखलाता नहीं ॥
क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं ।
व्योम तल पर चीटियों का जी कभी जाता नहीं ॥
मन मनाने के लिये जो कुछ ढिठाई की गई ।
कीजिये उसको क्षमा, प्रभु बात तो अनुचित हुई ॥१५॥

२—कर्मवीर।

देखकर जो विघ्न-बाधाओं को घबराते नहीं
भाग पर रह करके जो पीछे है पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं।
भीड़ पड़ने पर भी जो चंचल हैं दिखलाते नहीं ॥
होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में रहते है वे फूले फले ॥१॥
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही।
सोचते कहते है जो कुछ कर दिखाते है वही ॥
मानते जी की है सुनते हैं सदा सब की कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही ॥
भूल कर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥२॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुये जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिये।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥३॥
गगन को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर ॥
गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं मे लवर ॥
ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नही।
भूल कर भी वह नही नाकाम रहता है कहीं ॥४॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवे बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना॥
हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिनके है जी में यह ठना॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं॥५॥
ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेग को कर के दिखा देते हैं वे सुन्दर गली॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली॥
ऊसरों में है खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ मे भी फूल फल॥६॥
काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ो की नहीं जो जोड़ते॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्जल रतन॥७॥
पर्वतो को काट कर सड़कें बना देते हैं वे।
सैकड़ो मरुभूमि में नदियाँ बहा देते है वे॥
अगम जलनिधि-गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे॥
भेद नभतल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥८॥
कार्य-थल को वे कभी नहिं पूछते "वह हैं कहाँ"।
कर दिखाते हैं असम्भव को वही संभव यहाँ॥

उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ ॥
डाल देते हैं विरोधी सैकड़ों ही अड़चनें ।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥९॥
जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा ।
तो उसे देते है अपनी युक्तियों से वे उड़ा ॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा ।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा ॥
वन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी ।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी ॥१०॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले ।
बुद्धि, विद्या, धन विभव के है जहाँ डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले ।
वे सभी है हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी ।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी ॥११॥

३—वीरवर सौमित्र ।

कर करवाल लिये रण-भू में निधरक जाना ।
बिधकर विशिखादिक से पग पीछे न हटाना ॥
लख कर रुधिर-प्रवाह और उत्तेजित होना ।
रोम रोम छिद गये न दृढ़ता चित की खोना ॥
गिरते लख करके लोथ पर लोथ देख शिर का पतन ।
नहिं विचलित होना अल्प भी हुआ देख शत खंड तन ॥१॥
तोपों का लख अग्नि-काण्ड चित शंका न लाना ।
न काँपना लख शिर पर से गोलो का जाना ॥

भिड़ना मत्त गयन्द संग केहरि से लड़ना।
कर द्वारा अति क्रुद्ध व्याल को दौड़ पकड़ना॥
लख काल-बदन विकराल भी त्याग न देना धीरता।
इकले भिड़ना भट विपुल से यदपि है बड़ी बीरता॥२॥
किन्तु बीरता उच्च कोटि की और कई है।
कथित बीरताओं से जो वर कही गई है॥
करना स्वारथ त्याग क्रोध से विजित न होना।
विपत-काल औ कठिन समय में धैर्य न खोना॥
ऐसीही कितनी और हैं द्वितिय भाँति की वीरता।
जिनमें न चाहिये विपुल बल और न वज्र-शरीरता॥३॥
रामानुज में द्विविध वीरता है दिखलाती।
समय समय पर जो चित को है बहुत लुभाती॥
पति बन जाता देख सिया थी जब अकुलाई।
सुत-वियोग-वश जब कौशल्या थी बिलखाई॥
उसकाल सुमित्रा-सुअन ने जो दिखलाया आत्म-बल।
वह उनके कीर्ति-निकेत का कलित खंभ है अति अचल॥४॥
तजा उन्होंने राजभवन-सुख सुर-उर-ग्राही।
तजी सुमित्रा-सदृश जननि सब भाँति सराही॥
आह! न जिसका विरह कभी जन सम्मुख आया।
तजी उर्मिला जैसी परम सुशीला जाया॥
पर बाल-प्रीति की डोरि में बधे रंग भायप रँगे।
वह तज न सके प्रिय बन्धु को, गये विपिन पीछे लगे॥५॥
यों उनका तिय-जननि-राज-सुख को तज जाना।
यती-भाव से वन में चौदह बरस बिताना॥
राम-सिया को मान पिता, माता औ स्वामी।
वन में सह दुख विपुल बना रहना अनुगामी॥

संसार चकित-कर कार्य्य है मिलित मनोरम धीरता ।
है यही आत्म-बल-संभवा परम अलौकिक बीरता ॥६॥
कुसुम चयन करते अलकावलि बीच लगाते ।
जब सीता सँग बिबिध-केलि-रत राम लखाते ॥
उसी काल सौमित्र रुचिर उटजादि बनाते ।
कर्तन करते मंजु शाल-शाखा दिखलाते ॥
सो किशलय पर जो यामिनी राम बिताते सुमुखि सह ।
वह निशि व्यतीत करते लखन नखतावलि गिन सजग रह ॥७॥
कभी जानकी पट-भूषण-पेटिका लिये कर ।
वे दिखला पड़ते चढ़ते गिरि दुरारोह पर ॥
लता, बेलि काटते, कटीले तरु छिनगाते ।
सुपथ बनाते, गहन विपिन मे कभी दिखाते ॥
पथ कभी सिय-कुटी से सरसि तक का हित गवनागवन ।
चिन्हित करते वे दीखते बाँध पादपों में बसन ॥८॥
यक तुषार से मिलन चन्द्रिका वती रयन में ॥
जब वह थी गतप्राय बड़ी सरदी थी बन में ॥
वे थे देखे गये बारि सरसी में भरते ।
सीकरमय तृण-राजि बीच बचकर पग धरते ॥
यक जलद-मयी यामिनी मे शिर पर जलधारादि ले ।
च्यूती कुटीर के काज वे तृण पत्ते लाते मिले ॥६॥
यह अति कोमल राज-कुँवर कर-कुवलय-लालित ।
सुवरन की सी कान्तिमान सुख में प्रतिपालित ॥
कुसुम सेज पर शयन-निपुन, मृदु-भूतल-चारी ।
वर व्यंजन वर बसन वर विभव का अधिकारी ॥
जब था कानन मे दीखता करते परम कठोर व्रत ।
तब अवगत होता था जगत वह कितना है राम-रत ॥१०॥

कपि-दल लेकर राम जलधि-तट पर जब आये।
उसका देखि कराल रूप कपि-पति अकुलाये॥
सुन गर्जन आवर्त सहित लख तुंग तरंगे।
हो बिलीन सी गई चमू की सकल उमंगें॥
पर विचलित हुये न अलप भी शूर-शिरोमणि श्री लखन।
कर धनु, शायक, लेकर कहे परम ओजमय ये वचन॥११॥
वहीं बीर है जो कर्त्तव्य-बिमूढ़ न होवे।
कार्य-काल को जो नहिं बन आकुल चित खोवे॥
क्या है यह जल-राशि कहो शर मार सुखाऊँ।
या कर इसे प्रभाव-हीन घट-तुल्य बनाऊँ॥
पर मरजादा का तोड़ना कभी नहीं होता उचित।
इस लिये करो सुजतन बिवश हो करके न बनो दुचित॥१२॥
इसी सुमित्रा-सुअन-कथन का सुफल हुआ यह।
जो बारिधि था अगम गया गिरि से बाँधा वह॥
उस पर से ही उतर पार सेना सब आई।
फिर लंका पर धूम धाम से हुई चढ़ाई॥
रण छिड़ जाने पर लखन ने जो दिखलाया विपुल बल।
वह अकथनीय है अगम है बीर-बृन्द में है विरल॥१३॥
सुन कर धनु-टंकार मेदिनी थर्राती थी।
दिग्दंती की द्विगुण दलक उठती छाती थी॥
विशिख-वृन्द से नभ मण्डल था पूरित होता।
जो था दश दिशि बीच बहाता शोणित सोता॥
प्रलय-बन्हि थी दहकती त्रिपुरारी थे कोपते।
जिस काल वीर सौमित्र थे समर-भूमि पग रोपते॥१४॥
अमर वृन्द जिसके भय से था थर थर कँपता।
जो प्रचंड पूषन सा था रण-भू में तपता॥

पाहन द्वारा गठित हुई थी जिसकी काया ।
विविधि-भयंकर-मूर्ति-मती थी जिसकी माया ॥
वह परम साहसी अति प्रबल मेघनाद सा रिपु-दमन ।
जिसके कोपानल में जला धन्य वह सुमित्रा-सुअन ॥१५॥
बालमीक मुनि-पुंगव ने वदनाम्बुज द्वारा ।
चरित सुमित्रा-सुत का जो अति सरस उचारा ॥
वह नितान्त तेजोमय है अति ओज भरा है ।
एक राम-जीवन-मय है निरुपम सुथरा है ॥
निज रुचि-प्रियता-ममतादि का है न पता उसमे कहीं ।
धारायें उसमे राम-हित की शुचिता सँग है बहीं ॥१६॥
अकपट-चित से बन अनन्य मल रोप युगल पग ।
वे करते अनुसरण राम का नीरवता सँग ॥
उसी काल यह मौन तपस्वी जीह हिलाता ।
मान सुयश हित रघुपति पर जब संकट आता ॥
जग-जनित ताप उपशमन के लिये त्याग निजता गिला ।
सौमित्र आत्मरति नीर था राम-प्रीति पय मे मिला ॥१७॥
कुंठित मति पौरुष विहीनता पर-वशता से ।
वे न सिया-पति अनुगत थे स्वारथ-परता से ॥
वरन हृदय में भ्रातृ-भक्ति उनके थी न्यारी ।
जिसने थी मोहनी अपर भावो पर डारी ॥
उनके जीवन-हिम-गिरि-शिखर पर अमरावति से लसी ।
राका-रजनी-चाँदनी सी स्नेह-वीरता थी लसी ॥१८॥
वे बासर थे परम मनोहर दिव्य दरसते ।
जब थे भारत-अंक लखन से बंधु विलसते ॥
आज कलह, छल, कूट-कपट घर घर है फैला ।
हृदय बंधु से बंधु का हुआ है अति मैला ॥

हे प्रभो ! बंधु सौमित्र से फिर उपजें गृह गृह लसें ।
शुचि-चरित सुखी परिवार फिर भारत-वसुधा में बसें ॥६॥

४—होली

मान अपना बचाओ, सम्हल कर पाँव उठावो ।
गावो भाव भरे गीतों को, बाजे उमग बजावो ॥
तानें ले ले रस बरसावो, पर ताने न सहावो ।
भूल अपने को न जावो ॥ १ ॥
बात हँसी की मरजादा से कहकर हँसो हँसावो ।
पर अपने को बात बुरी कह आँखो से न गिरावो ।
हँसी अपनी न करावो ॥ २ ॥
खेलो रंग अबीर उड़ावो लाल गुलाल लगावो ।
पर अति सुरंग लाल चादर को मत बदरंग बनाओ ।
न अपना रंग गँवावो ॥ ३ ॥
जनम-भूमि की रज को लेकर सिर पर ललक चढ़ाओ ।
पर अपने ऊँचे भावों को मिट्टी में न मिलाओ ।
न अपनी धूल उड़ावो ॥ ४ ॥
प्यार-उमंग-रंग में भीगो सुन्दर फाग मचावो ।
मिलजुल जी की गाँठे खोलो हित की गाँठ बँधाओ ।
प्रीति की बेलि उगावो ॥५॥

५—दुखिया के आँसू ।

बावले से घूमते जी में मिले ।
आँख में बेचैन बनते ही रहें ॥
गिर कपोलों पर पड़े बेहाल से ।
बात दुखिया आँसुओं की क्या कहें ॥१॥

हैं व्यथायें सैकड़ों इनमें भरी ।
ये बड़े गंभीर दुख में हैं सने ॥
पर इन्हें अवलोक करके दो बता ।
हैं कलेजा थामते कितने जने ॥२॥
बालकों के आँसुओं को देखकर ।
है उमड़ आता पिता-उर प्रेममय ॥
कौन सी इन आँसुओं में है कसर ।
जग-जनक भी जो नहीं होता सदय ॥३॥
चन्द्-बदनी-आँसुओं पर प्यार से ।
हैं बहुत से लोग तन मन वारते ॥
एक ये है, लोग जिनके वास्ते ।
हैं नहीं दो बूँद आँसू डालते ॥४॥
क्या न कर डाला खुला जादू किया ।
आँख के आँसू कढ़े या जब बहे ॥
किन्तु ये ही कुछ हमें ऐसे मिले ।
हाथ ही में जो बिफलता के रहे ॥५॥
पोंछ देने के लिये धीरे इन्हें ।
है नहीं उठता दयामय कर कहीं ॥
इन बेचारों पर किसी हम-दर्द की ।
प्यार-वाली आँख भी पड़ती नहीं ॥६॥
क्यों उरों से ये दृगों में आ कढ़े ।
था भला, जो नाश हो जाते वहीं ॥
जो किसी का भी इन्हें अवलोक कर ।
मन न रोया जी पसीजा तक नहीं ॥७॥
भाग फूटा बेबसी लिपटी रही ।
बहु दुखों से ही सदा नाता रहा ॥

बात अपनी ही सुनाता है सभी।
पर छिपाये भेद छिपता है कहीं॥
जब किसी का दिल पसीजेगा कभी।
आँख से आँसू कढ़ेगा क्यों नहीं॥११॥
आँख के परदों से जो छन कर बहे।
मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं॥
बूँद जिसकी आँख टपकाती रहे।
दिल जलों को चाहिये पानी वही॥१२॥
हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी।
आँख के आँसू न ये होते अगर॥
बावले हम हो गये होते कभी।
सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर॥१३॥
है सगों पर रंज का इतना असर।
जब कड़े सदमे कलेजे ने सहे॥
सब तरह का भेद अपना भूल कर।
आँख के आँसू लहू बन कर बहे॥१४॥
क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी।
रो पड़े हम पत तुम्हारी रह गई॥
ऐंठ थी जी में बहुत दिन से भरी।
आज वह इन आँसुओं में बह गई॥१५॥
बात चलते चल पड़ा आँसू थमा।
खुल पड़े वेंड़ी सुनाई रो दिया॥
आज तक जो मैल था जी में जमा।
इन हमारे आँसुओं ने धो दिया॥१६॥
क्या हुआ अंधेर ऐसा है कहीं।
सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया।

ढूँढ़ते हैं पर हमें मिलता नहीं ।
आँसुओं मे दिल हमारा बह गया ॥१७॥
देख कर मुझको सम्हल लो, मत डरो ।
फिर सकेगा हाय ! यह मुझको न मिल ॥
छीन लो , लोगो ! मदद मेरी करो ।
आँख के आँसू लिये जाते है दिल ॥१८॥
इस गुलाबी गाल पर यों मत बहो ।
कान से भिड़ कर भला क्या पा लिया ॥
कुछ घड़ी के आँसुओ मेहमान हो ।
नाक में क्यो नाक का दम कर दिया ॥१९॥
नागहानी से बचो, धीरे बहो ।
है उमंगो से भरा उनका जिगर ॥
यों उमड़ कर आँसुओ सच्ची कहो ।
किस खुशी की आज लाये हो ख़बर ॥२०॥
क्यों न वे अब और भी रो रो मरें ।
सब तरफ़ उनको अँधेरा रह गया ॥
क्या बिचारी डूबती आँखें करें ।
तिल तो था ही आँसुओं में बह गया ॥२१॥
दिल किया तुमने नहीं मेरी कही ।
देखते हैं खो रतन सारे गये ॥
जोत आँखो में न कहने को रही ।
आँसुओं में डूब ये तारे गये ॥२२॥
पास हो क्यों कान के जाते चले ।
किस लिये प्यारे कपोलों पर अड़ो ॥
क्यों तुमारे सामने रहकर जले ।
आँसुओ आकर कलेजे पर पड़ो ॥२३॥

आँसुओं की बूँद क्यों इतनी बढ़ी।
ठीक है तक़दीर तेरी फिर गई॥
थी हमारे जी से पहले ही कढ़ी
अब हमारी आँख से भी गिर गई॥२४॥
आँख का आँसू बनी मुँह पर गिरी।
धूल पर आकर वहीं वह खो गई॥
चाह थी जितनी कलेजे में भरी।
देखता हूँ आज मिट्टी हो गई॥२५॥
भर गई काजल से कीचड़ में सनी।
आँख के कोनों छिपी ठंढी हुई॥
आँसुओं की बूंद की क्या गत बनी।
वह बरौनी से भी देखो छिद गई॥२६॥
दिल से निकले अब कपोलों पर चढ़ो।
बात बिगड़ी क्या भला बन जायगी॥
ऐ हमारे आँसुओ! आगे बढ़ो।
आपको गरमी न यह रह जायगी॥२७॥
जी बचा तो हो जलाते आँख तुम।
आँसुओ! तुमने बहुत हमको ठगा॥
जो बुझाते हो कहीं की आग तुम।
तो कहीं तुम आग देते हो लगा॥२८॥
काम क्या निकला हुये बदनाम भर।
जो नहीं होना था वह भी हो लिया॥
हाथ से अपना कलेजा थाम कर।
आँसुओं से मुँह भले ही धो लिया॥२९॥
गाल के उसके दिखाकर के मसे।
यह कहा हमने हमें ये ठग गये॥

आज वे इस बात पर इतने हँसे ।
आँख से आँसू टपकने लग गये ॥३०॥
लाल आँखें कीं, बहुत बिगड़े बने ।
फिर उठाई दौड़ कर अपनी छड़ी ॥
वैस ही अब भी रहे हम तो तनें ।
आँख से यह बूँद कैसी ढल पड़ी ॥३१॥
बूँद गिरते देख कर यों मत कहो ।
आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई ॥
जो समझते हो नहीं तो चुप रहो ।
कंकरी इस आँख में है पड़ गई ॥३२॥
है यहाँ कोई नहीं धूआँ किये ।
लग गईं मिर्चें न सरदी है हुई ॥
इस तरह आँसू भर आये किस लिये ।
आँख में ठंढी हवा क्या लग गई ॥३३॥
देख करके और का होते भला ।
आँख जो बिन आग ही यों जल मरे ॥
दूर से आँसू उमड़ कर तो चला ।
पर उसे कैसे भला ठंढा करे ॥३४॥
पाप करते हैं न डरते हैं कभी ।
चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं ॥
सोच कर अपनी बुरी करनी सभी ।
यह हमारी आँख भर आई नहीं ॥३५॥
है हमारे औगुनो की भी न हद ।
हाय ! गरदन भी उधर फिरती नहीं ॥
देख करके दूसरों का दुख दरद ।
आँख से दो बूँद भी गिरती नहीं ॥३६॥

किस तरह का वह कलेजा है बना।
जो किसी के रंज से हिलता नहीं॥
आँख से आँसू छना तो क्या छना।
दर्द का जिसमे पता मिलता नहीं॥३७॥
वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी।
नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं॥
फूट जाये आँख वह जिसमें कभी।
प्रेम का आँसू उमड़ आता नहीं॥३८॥
पाप में होता है सारा दिन बसर।
सोच कर यह जी उमड़ आता नहीं॥
आज भी रोते नहीं हम फूट कर।
आँसुओं का तार लग जाता नहीं॥३९॥
बू बनावट की तनक जिनमें न हो।
चाह की छींटें नहीं जिन पर पड़ी।
प्रेम के उन आँसुओं से हे प्रभो॥
यह हमारी आँख तो भीगी नहीं॥४०

७—एक तिनका।

मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ।
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा॥
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ।
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा॥१॥
मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन सा।
लाल होकर आँख भी दुखने लगी॥
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे।
ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी॥२॥

जब किसी ढब से निकल तिनका गया।
तब "समझ" ने यों मुझे ताने दिये ॥
ऐंठता तू किस लिये इतना रहा।
एक तिनका है बहुत तेरे लिये ॥३॥

८–एक बूँद।

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ॥
सोचने फिर फिर यही जी में लगी।
आह क्यो घर छोड़ कर मैं यों कढ़ी ॥१॥
देव मेरे भाग में क्या है बदा।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ॥
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी।
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ॥२॥
बह गई उस काल एक ऐसी हवा।
वह समुन्दर ओर आई अनमनी ॥
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला।
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी ॥३॥
लोग यों ही हैं झिझकते सोचते।
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ॥
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें।
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर ॥४॥

९–फूल और कांटा।

हैं जनम लेते जगह में एकही।
एकही पौधा उन्हे है पालता ॥

रात में उन पर चमकता चाँद भी ।
एकही सी चाँदनी है डालता ॥१॥
मेह उनपर है बरसता एक सा ।
एक सी उन पर हवायें हैं बहीं ॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें ।
ढंग उनके एक से होते नहीं ॥२॥
छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ ।
फाड़ देता है किसी का वर बसन ॥
प्यार-डूबीं तितलियों का पर कतर ।
भौंर का है बेध देता श्याम तन ॥३॥
फूल ले कर तितलियों की गोद में ।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगंधों औ निराले रंग से ।
है सदा देता कली जी की खिला ॥४॥
है खटकता एक सब की आँख में ।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे ।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥५॥

१०—यशोदा का विरह ।

(प्रियप्रवास से)

प्रिय-पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ।
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ॥
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूं ।
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है ॥१॥
पल पल जिसके मैं पंथ को देखती थी ।
निशि दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती ॥

उस पर जिसके है सोहती मुक्तमाला ।
वह नवनलिनी से नैनवाला कहाँ है ॥२॥
मुझ विजित-जरा का एक आधार जो है ।
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा ॥
धन मुझ निधनी का लोचनों का उजाला ।
सजल जलद की सी कान्तिवाला कहाँ है ॥३॥
प्रतिदिन जिसको मैं अंक में नाथ ले के ।
निज सकल कुअंकों की क्रिया की लती थी ॥
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला ।
वह किशलय के से अंगवाला कहाँ है ॥४॥
वर-वदन बिलोके फुल्ल अंभोज ऐसा ।
करतल-गत होता व्योम का चंद्रमा था ॥
मृदु-रव जिसका है रक्त सूखी नसों का ।
वह मधु-मय-कारी मानसो का कहाँ है ॥५॥
रस-मय वचनों से नाथ जो सर्वदा ही ।
मम सदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था ॥
श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की ।
वह नव-खनि न्यारी मंजुता की कहाँ है ॥६॥
स्वकुल जलज का है जो समुत्फुल्लकारी ।
मम परम-निराशा-यामिनी का विनाशी ॥
व्रज-जन विहगो के वृन्द का मोद-दाता ।
वह दिनकर शोभी रामभ्राता कहाँ है ॥७॥
मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती सी ।
अनुपम जिसका हूँ शील सौजन्य पाती ॥
पर-दुख लख के है जो समुद्विग्न होता ।
वह सरलपने का स्वच्छ सोता कहाँ है ॥८॥

गृहतिमिर निराशा का समाकीर्ण जो था।
निज मुख-दुति से है जो उसे ध्वंसकारी॥
सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा।
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है॥९॥
सह कर कितने ही कष्ट औ संकटों को।
बहु यजन करा के पूज के निर्जरों को॥
यक सुअन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा।
प्रियतम! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है॥१०॥
मुखरित करता जो सद्म को था शुकों सा।
कलरव करता था जो खगों सा वनों में॥
सुध्वनित पिक लौं जो वाटिका था बनाता।
वह बहु विधि कंठों का विधाता कहाँ है॥११॥
खगमृग जिसके थे गान से मत्त होते।
तरुगण हरियाली थी महा दिव्य होती॥
पुलकित करती थी जो लताबेलि सारी।
उस कल मुरली का नादकारी कहाँ है॥१२॥
जिस प्रिय बिन सूना ग्राम सारा हुआ है।
प्रति सदन बड़ी ही छा गई है उदासी॥
जिस बिन ब्रज-भू में है न होता उँजाला।
वह निपट निराली कान्तिवाला कहाँ है॥१३॥
बन बन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों।
शुक भर भर आँखें भौन को देखता है॥
सुधि कर जिसकी है शारिका नित्य रोती।
वह निधि मृदुता का मंजु मोती कहाँ है॥१४॥
गृह गृह अकुलाती गोप की पत्नियाँ हैं।
पथ पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो॥

जिस कुंवर बिना मैं हो रही हूं अधीरा ।
वह खनि सुखमा का स्वच्छ हीरा कहाँ है ॥१५॥
मम हिय कँपता था कंस आतंक ही से ।
पल पल डरती थी क्या न जानें करेगा ॥
पर परम-पिता ने की बड़ी ही कृपा है ।
वह निज कृत पापों से नसा आप ही जो ॥१६॥
अतुलित वलवाले मल्ल कूटादि जो थे ।
वह गजगिरि ऐसा लोक आतंक-कारी ॥
मम उर उपजाते भीति थोड़ी नहीं थे ।
पर यमपुर-वासी ए सभी हो चुके हैं ॥१७॥
भयप्रद जितनी थीं और बाधा अनेकों ।
यक यक करके वे हो गईं दूर सारी ॥
प्रियतम ! अनसोची ध्यान में भी न आई ।
यह अभिनव कैसी आपदा आ पड़ी है ॥१८॥
मृदु किशलय ऐसा पंकजों के दलो सा ।
वह नवल सलोने गात का तात मेरा ॥
इन सब पवि ऐसे देह के दानवों का ।
नहिं कर सकता था नाश कल्पान्त में भी ॥१९॥
पर हृदय हमारा ही हमे है बताता ।
सब शुभ फल पाती हूँ किसी पुण्य ही का ॥
यह परम अनूठा पुण्य ही पापनाशी ।
इस कुसमय में है क्यो नहीं काम आता ॥२०॥
प्रिय-सुत संग भ्राता क्यों नहीं सद्म आया ।
वर नगर छटा को देख के क्या लुभाया ? ॥
वह कुटिल जनो के पेच में जा पड़ा है ।
प्रियतम ! उसको या राज्य का भोग भाया ॥२१॥

मधुर बचन से औ भक्ति भावादिकों से।
अनुनय बिनयों से प्यार की उक्तियों से॥
सब मधुपुर-वासी बुद्धिशाली जनों ने।
अतिशय अपनाया क्या ब्रजाभूषणों को ? ॥२२॥
बहु विभव वहां का देख के श्याम भूला।
वह बिलम गया या वृन्द में बालकों के॥
फँस कर जिसमें हा ! लाल छूटा न मेरा।
सुफलक सुत नें क्या जाल कोई बिछाया॥२३॥
परम शिथिल हो के पंथ की क्रांतियों से।
वह ठहर गया है क्या किसी बाटिका में॥
प्रियतम तुमसे या दूसरों से जुदा हो।
वह भटक रहा है या कहीं मार्ग ही में॥२४॥
बिपुल कलित कुंजे कालिन्दी कूल वाली।
अतुलित जिन में थी प्रीति मेरे प्रियों की॥
पुलकित चित से वे क्या उन्हीं में गये हैं।
कतिपय दिवसों की श्रान्ति उन्मोचनें को॥२५॥
विविध सुरभिवाली मंडली बालकों की।
पथ युगल सुतोने क्या कहीं देख पाई॥
निज सुहृद जनो मे वत्स में धेनुओं में।
बहु बिलम गये वे क्या इसी से न आये॥२६॥
निकट अति अनूठे नीप फूले फले के।
कलकल बहती जो धार है भानुजा की॥
अति-प्रिय सुत को है दृश्य न्यारा वहां का।
वह समुद उसे ही देखने क्या गया है ? ॥२७॥
सित सरसिज ऐसे गात के श्याम भ्राता।
यदुकुल-उपजे हैं वंश के हैं उँजाले॥

यदि वह कुल वालों की पड़े प्रीति में हैं।
सुत सदन अकेले ही चला क्यों न आया ॥२८॥
यदि वह अति नेही शील सौजन्य शाली।
तज कर निज भ्राता को नहीं सद्म आया॥
ब्रज अवनि बता दो नाथ कैसे बसेगी।
बिन बदन बिलोके आज मैं क्यों बचूँगी ॥२९॥
प्रियतम! अब मेरा प्राण है कंठ आता।
सच सच बतलादो प्राण प्यारा कहाँ है॥
यदि मिल न सकेगा जीवनाधार मेरा।
तब फिर निज पापी प्राण मैं क्यों रखूँगी ॥३०॥
विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाए।
प्रियतम बतला दो लाल मेरा कहाँ है॥
यह सब अनचाहा रत्न ले क्या करूँगी।
मम परम अनूठा रत्न ही नाथ ला दो ॥३१॥
उस बर-धन को मैं मांगती चाहती हूँ।
बरधित जिससे है बंश की वेलि होती॥
सकल जगत प्राणीमात्र का बीज जो है।
बिभव जिस बिना है विश्व का व्यर्थ होता ॥३२॥
इन अरुण प्रभा के रंग के पाहनो का।
पति सदन हमारे कौन सी न्यूनता है॥
प्रति पल उर में है लालसा वर्द्धमाना।
उस परम निराले लाल के लाभ ही की ॥३३॥
युग दृग जिस से है जोति स्वर्गीय पाते।
उर-तिमिर नसाता जो प्रभा पुंज से है॥
कल दुति जिसकी है चित्त उत्ताप खोती।
वह अनुपम हीरा नाथ मैं चाहती हूँ ॥३४॥

कटि-पट लख पीले रत्न दूँगी लुटा मैं।
तन पर सब नीले रत्न को वार दूँगी॥
सुत-मुख-छवि न्यारी आज जो देख पाऊँ।
बहु अपर अनूठे रत्न भी बाँट दूँगी॥३५॥
धन विभव अनेकों रत्न संतान आगे।
रज कण सम हैं औ तुच्छ हैं वे तृणों से॥
यह सब पति, यों हो पुत्र को त्याग लाये।
मणि-गण तज कोई कांच ज्यों सद्म लावे॥३६॥
परम-सुयश वाले कोशलाधीश ही हैं।
प्रिय-सुत बन जाते ही नहीं जी सके जो॥
यह हृदय हमारा वज्र से ही बना है।
वह नहिं अब भी जो सैकड़ों खंड होता॥३७॥
निज प्रिय मणि को जो सर्प खोता कभी है।
सर पटक धरा में प्राण है त्याग देता॥
मम-सदृश मही में कौन पापीयसी है।
मणि-हृदय गंवा के नाथ जो जीविता हूँ॥३८॥
लघुतर-सफरी भी भागवाली बड़ी है।
अलग सलिल से हो प्राण जो त्यागती है॥
अहह अवनि मैं ही भाग्यहीना महा हूँ।
प्रिय-सुत बिछुड़े जो आज लौं जी सकी हूँ॥३९॥
परम-पतित मेरे पातकी-प्राण ए हैं।
यदि नहिं अब भी हैं गात को त्याग देते॥
अहह दिन न जानें कौन सा देखने को।
दुखमय तन मे ए निर्ममों से रुके हैं॥४०॥
विधिवश इनमें हा! शक्ति बाकी नहीं है।
तन तज सकने की क्षीणताधिक्यता से॥

वह इस अवनी में भाग्यवाली बड़ी है ।
अवसर पर जो है मृत्यु के अंक सोती ॥४१॥
बहु कलप चुकी हूँ दग्ध भी हो चुकी हूँ ।
जग कर कितनी ही रात मैं रो चुकी हूँ ॥
अब उर न रहा है रक्त का लेश बाकी ।
तन बल सुख आशा मैं सभी खो चुकी हूँ ॥४२॥
लख सुखित न होगा चन्द आनन्द कोई ।
नहिं अमित उमंगों की कलायें कढ़ेंगी ॥
यह अवगत होती मैं सुनी बात से हूँ ।
ब्रज अब न बहेगी शान्ति-पीयूष-धारा ॥४३॥
प्रिय बिन अति सूना ग्राम सारा लगेगा ।
निशि दिवस बड़ी ही खिन्नता से कटेंगे ॥
ब्रज परम उदासी आज जो छा गई है ।
अब वह न टलेगी औ सदा ही खलेगी ॥४४॥
बहुत सह चुकी हूँ और कैसे सहूँगी ।
पवि सदृश कलेजा मैं कहाँ पा सकूँगी ॥
इस कृशित हमारे गात को प्राण त्यागो ।
दुख-विवश नहीं तो नित्य रो रो मरूंगी ॥४५॥

मन्दाक्रान्ता

हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे ।
हा ! प्राणों के परम-प्रिय हा ! एक मेरे दुलारे ॥
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप लावण्यवारे ।
हा ! बेटा हा ! हृदय धन हा ! नैनतारे हमारे ॥४६॥
कैसे होके अलग तुझसे आज लौं मैं बची हूँ ।
जो मैं ही हूँ समझ न सकी तो तुझे क्यों बताऊँ ॥

हां जीऊँगी न अब, पर है वेदना एक होती ।
तेरा प्यारा बदन मरती बार मैंने न देखा ॥४७॥
यों हीं बातें विविध कहते अश्रुधारा बहाते ।
धीरे धीरे यशुमति लगीं चेतनाशून्य होने ॥
जो प्राणी थे निकट उनके या वहां, भीत से हो ।
नाना यत्नों सहित उनको वे लगे बोध देने ॥४८॥
आवेगों से विकल अतिही नन्द ये पूर्व ही से ।
कान्ता को यों व्यथित लख के शोक में और डूबे ॥
बोले ऐसे वचन जिससे चित्त में शान्ति आवे ।
आशा होवे उदय उर में नाश पावे अनाशा ॥४९॥
धीरे धीरे श्रवण करके नन्द की बात प्यारी ।
जाते जो थे वपुष तज के प्राण वे लौट आये ॥
आँखें खोलीं जननि-हरि ने कष्ट से और बोलीं ।
क्या आवेगा कुंवर व्रज में नाथ दो ही दिनों में ? ॥५०॥
सारी पीड़ा हृदयतल की भूल के नन्द बोले ।
हाँ आवेगा कुंवर व्रज मे बाम दोही दिनों में ॥
ऐसी बातें कथन कितनी और नन्द ने कीं ।
जैसे तैसे जननि-हरि को धीरता से प्रबोधा ॥५१॥
जैसे कोई पतित कण पा स्वाति के नीरदों का ।
थोड़ी सी है परम तृषिता चातकी शान्ति पाती ॥
वैसे आना श्रवण करके पुत्र का दो दिनों में ।
संज्ञा खोती यशुमति हुई स्वल्प आश्वासिता सी ॥५२॥
पीछे बातें विविध करती काँपती कष्ट पाती ।
आईं लेके स्वप्रिय पति को सद्म में नंदबामा ॥
आशा की है अमित महिमा धन्य हैं देवि आशा ।
जो छू के हैं मृतक बनते प्राणियों को जिलाती ॥५३॥

लाला भगवानदीन



लाला भगवानदीन का जन्म जिला फ़तहपुर के बरबर गाँव में श्रावण शुक्ला ६ सं० १६२३ में हुआ। ये श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ हैं। इनके पूर्वज, जो पहले रायबरेली में रहते थे, ग़दर के समय में रामपुर चले गये थे। नवाबी ज़माने में इनके पूर्वजों को बख़शी का ख़िताब मिला था।

ग्यारह वर्ष की अवस्था तक ये अपनी जन्मभूमि बरबर ही में उर्दू और फ़ारसी पढ़ते रहे। उस समय इनकी माता का देहान्त हो जाने के कारण इनके पिता, जो बुन्देलखंड में नौकर थे, इन्हें अपने साथ ले गये। बुंदेलखंड मे ये नौगाँव छावनी मे अपने फूफा के पास रह कर फ़ारसी की विशेष शिक्षा पाते रहे। चार वर्ष बाद ये फिर घर लौट आये और दो वर्ष तक मदरसे में पढ़ते रहे। घर पर भी अपने दादा से इन्होंने हिन्दी पढ़ी। सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फतहपुर के हाई स्कूल मे भरती किये गये। वहाँ सात वर्ष पढ़ कर इन्होने इन्ट्रेंस परीक्षा पास की। मिडिल पास करने के बादही इनका विवाह होगया था। किन्तु फिर भी गृहस्थी के भार को सँभालते हुये इन्होने आगे पढ़ने का साहस किया। कायस्थ पाठशाला प्रयाग से छात्रवृत्ति पाकर ये प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में भर्ती हुये। गृहस्थी का झंझट फिर

पर होने के कारण इन्हें दो एक जगह ट्यूशन भी करनी थी, इससे ये कालेज की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके लाचार होकर पढ़ना छोड़कर ये कायस्थ पाठशाला में नियत हो गये और डेढ़ वर्ष तक वहाँ काम करते रहें। पश्चात ज़नाना मिशन हाई स्कूल में ये फ़ारसी होकर छः महीने तक वहाँ काम करते रहे। फिर के सेकंड मास्टर होकर ये छतपुर चले गये। और वहाँ १८६४ से १६०७ तक रहे। १६०७ में ये काशी के सेन्ट्रल कालेज में उर्दू के टीचर होकर आये। डेढ़ वर्ष पीछे नागरी प्रचारिणी सभा का हिन्दी शब्दसागर बनने लगा ये उसके सहकारी सम्पादक होकर आ गये। कई वर्षों ये वहीं काम करते रहे। बीच में एक बार कोश काश्मीर चला गया था, तब ये प्रयाग और गया में कुछ तक रहे। जब कोश-कार्यालय फिर काशी में वापस तब ये फिर उसमें सम्मिलित होकर काम करने लगे। आज तक कोशकार्य समाप्त नहीं हुआ, किन्तु हिन्दू विश्ववि में एक सुयोग्य हिन्दी साहित्यज्ञ अध्यापक की आवश्य होने पर ये कोश-कार्य छोड़कर उसमें आ गये, और अब उसी पद पर हैं।

हिन्दी की ओर लालाजी की रुचि बालकपन से ही थी १६ वर्ष की अवस्था में एक बार इनको अपने पिता के साथ महीने तक हरद्वार में रहना पड़ा था। उसी अवसर में कृष्ण चौसठिका नाम की एक कविता बनाई थी। छतपुर अवकाश के समय में बाबू जगन्नाथ प्रसाद की लायब्रेरी पुस्तकें पढ़ा करते थे। वहाँ बुंदेलखण्ड के प्राचीन कवियों कविता पढ़ने का इनको अच्छा अवसर मिला। वहीं

गाधर व्यास से इन्होंने काव्य के कुछ नियम सीखे। और र श्रृङ्गार शतक, श्रृङ्गार तिलक और रामायण के दोहों कुंडलियों की रचना की। वहां इन्होंने कविसमाज और व्यलता नाम की दो सभायें स्थापित कीं और भारतीभवन न का पुस्तकालय खोला था। उस समय ये रसिक मित्र, तक वाटिका और लक्ष्मी उपदेश लहरी में फुटकर कवि-एँ और लेख भी भेजा करते थे। सन् १६०५ में लक्ष्मी उप-लहरी के सम्पादक देवरी निवासी श्रीयुत मंजु सुशील देहांत होजाने पर उनके इच्छानुसार लाला जी को लक्ष्मी सम्पादन कार्य मिला। तब से अब तक ये योग्यतापूर्वक का सम्पादन कर रहे हैं। इनको "भक्ति भवानी" नाम की-विता लिखने पर एक स्वर्णपदक, और "रूस पर जापान विजयी हुआ" शीर्षक निबंध पर १००) का पुरस्कार ला था।

इनकी पहली स्त्री बुंदेला बाला भी कविता करती थीं। का देहान्त हो जाने पर छतपुर में इन्होंने दूसरा विवाह या। काशी आने पर उसका भी देहान्त हो गया, तब सन् १२ मे इन्होंने तीसरा विवाह किया। इस स्त्री से इनके क कन्या है।

लाला जी हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञों में से एक हैं। इनका खा हुआ "वीर पंचरत्न" एक पद्य-ग्रंथ हाल ही में प्रका-ित हुआ है, उसमें वीररस की अच्छी झलक है। खड़ी बोली र व्रज भाषा, दोनो में ये अच्छी रचना कर सकते हैं। ड़ी बोली की कविता के लिये ये उर्दू छन्दों को ज्यादा उप-क समझते हैं।

लाला जी बड़े परिश्रमी और साहित्य चर्चा के प्रेमी हैं। कुछ लिखते पढ़ते रहने का इनको व्यसन सा है। इनकी खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों प्रकार की कविताओं के नमूने नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

[१]

धनुष बान लखि राम कर दीनहि होत उछाह।
टेढ़े सूधे जड़न को है प्रभु हाथ निबाह॥

[२]

कोटिन कुबेरन को कनक कनूका सम ताको चागे बे एक अलप कहानी है। कामधेनु कलपतरु चिंतामणि आदि की ताको दान देखि देखि मति चकरानी है॥ पाँचहू मुकुति ताको दासी ह्वै खवासी करैं कालहू कराल की न ता सँग बिसानी है। दीन कवि जाके मन मंदिर में वास करैं राम सो सुराजा औ सिया सी महरानी है॥

[३]

ताके जाके थाके मान जावक जपा के सान मानिक प्रभा के म्रान विद्रुम हिना के हैं। तूल सुहँ ताके खाय मालन मन के पेखि पाद भूमिजा के सोच कंज कलिका के हैं॥ रंग मृदुता के साके जग में जना के 'दीन' कवित लता के दैनहार मनसा के हैं। सारदा सिवा के ना रमा के राधिका के ताके ऐसे शुभ पायँ जैसे जनक सुता के हैं॥

[४]

राजत राजस तामस पै कि कसौटी पै सोनो कसायो सुरंग है।
राग दबाये सिंगारहिं कै मघवा जित पै पसरो बजरंग है।
नील अकास लसे अरुणोदय कै जमुना पर बानि तरंग है।
'दीन' अनूप छटायुत कै रघुलाल के गाल गुलाल को रंग

[५]

कैधौ अनुराग पीछे धावत सिंगार फिरै विज्जु अनुगामी कैधौ मेघ नील अंग है। कैधौं स्वर्ण-सैल को खदेरे फिरै नीलाचल पोखराज-परी पीछे परो कै अनंग है। स्वर्ण रंग व्याल पै मयूर कैधौ धावा किये बेहर बसंती पै धौं कालिया भुजंग है। 'दीन' हितकारी धनुधारी रामचंद्र कैधौ पाछे लागे जात आगे कंचन-कुरंग है॥

[६]

सघन लतान सों लखात बरसात छटा सरद सोहात सेत फूलन की क्यारी में। हिम ऋतु काल जलजाल के फुहारन में सिसिर लजात जात पाटल-कतारी में॥ सौरभित पौन ते बसन्त सरसात नित ग्रीषम लौं दुःख-दह सोखै चटकारी में। 'दीन' कवि सोभा षट ऋतु की निहारी सदा जनक कुमारी की पियारी फूलबारी में॥

[७]

सुनि मुनि कौशिक ते साप को हवाल सब बाढ़ी चित करुना की अजब उमंग है। पद-रज डारि करे पाप सब छारि करि नवल सुनारि दियो धामहू उतंग है॥ 'दीन' भनै ताहि लखि जात पति-लोक और उपमा अभूत को सुभानो नयो ढंग है। कौतुक निधान राम रज की बनाय रज्जु पद तें उड़ाई ऋषि-पतनी पतंग है॥

[८]

पाय कपीश निदेश जुरे सु प्रवर्षण पै कपि साजि समाजैं।
रंग अनेकन के बंदरा विरचे ससिव्यूह महा धुनि गाजैं॥
मध्य लसैं सह लच्छन राम भनै कवि 'दीन' सु यौं छवि छाजैं।
घोर घटा पै सुरेस के चॉप के बीच मनो युग चंद्र बिराजैं॥

[९]

पावस की ऋतु मन भायो मास भाद्रपद, पाख अँधियार
बुध बासर सुहायगो। रोहिनी नषत तिथि आठैं हरषन जो
वृषभ लगन ससि उच्च अंस पायगो॥ कारे कारे बारिध
छोड़ैं बर बारि-धारा बीजुरी चमंकै सब लोक चौंधिया
गो। ताही समै कारागृह माहिं देवकी के ढिग जग उजियार
धरि कारो रूप आयगो॥

[१०]

देखत गुविंद को मुखारविंद चंद सम अमित अनंद देव
के उर छाय गो। टेरि बसुदेव को दिखायो सिसु रूप हा
पाय कै निदेस आसु गोकुलै सिधाय गो॥ नंद के भवन पै
सेज पै सोवाय वाल अति ही उताल फिरि ठौर निज आ
गो। 'दीन कवि' देखि बसुदेव की उताल चाल विज्जु थ
रानी पौन हिये हहराय गो॥

[११]

रोवत गुविंद सुनि जागी नँदरानी आसु जानि सुत जाय
उर आनँद समाय गो। सुनि सुत जनम मुदित नँदराय भ
मानो महा भूखो पाय अमृत अघाय गो॥ बाजे बजवाये घ
संपति लुटाई बहु देखि सब हरषे कुबेर सकुचाय गो। 'दी
कवि' बरनै अधिकता तहां की कैसे कमला को पति जह
सुत रूप आय गो॥

[१२]

सुनि सुत जनम सुनारी पुरवासिन की परम हुलास
कहैं आपुस में टेरि टेरि। छीरधि-निवासी की कृपा सों द
सात कछु नंद घरैं चलि सुख हँसी करैं फेरि फेरि॥ मंगलि

साज सजि आनँद बधाई हेत सारदा रमा सी अप्सरा सी आईं घेरि घेरि । आरती उतारैं सुभ सोहरे उचारैं मन वारि वारि डारैं मुख सुषमा को हेरि हेरि ॥

[१३]

माचो है उछाह चहुं ओर ब्रज-मंडल में आनँद-निसान धुनि लगत सोहावनी । देखिवे को सगुन सरूप परमेसुर को तीन लोक वासी ब्रज आय छाये छावनी ॥ पँवरि विराजे नंद बकसत दीनन को भूषन बसन धन मनि अति पावनी । पावत ही अश्व गज पालकी उचारैं सब 'जै कँधैया लाल की' सुधुनि मन भावनी ॥

[१४]

देखियत हरष विवस पुर नारिनर दीन दुखदावा दान-जल तें सिराय गो । माचो दधिकाँदो दुख तासहि में हेराय गो कि धूप धूम संग नभमंडल उड़ाय गो ॥ छीर धार संग किधौं समुंद बहाय गो कि जन-पद भार ते पताल में समाय गो । दीनदुखहर ब्रजचंद के डरन किधौं चूर ह्वै कपूर लौं समीर में विलाय गो ।

[१५]

आनँद महान अवलोकि ब्रजमंडल में कवि अनुमानैं किधौं सूर जीत पायगो । बांझ सुत जायो किधौं अंध आंखि पायो किधौं जनम को पंगुल पहार चढ़ि धाय गो । सुरतरु-छाया लही जनम-दरिद्र किधौं गुंग कविराज ह्वै के राम जस गाय गो । दीन-दुखदरन गुविंद भे प्रगट किधौं नंद के सदन में अनंद ढेर आय गो ॥

[१६]

एहो घनश्याम नित सींचि सींचि कृपा-वारि, कवित-लता को सदा राखियो हरी हरी । छाया करि आतप निवारियो कलेसन को, मंद धुनि करि उलहाइयो घरी घरी । राधेरूप विज्जु दरसाय हनि दुःख कीट, सफल-सफूल-पत राखियो हरी भरी । 'दीन' कवि चातक की विनय अनसुनी करि ए हो घनश्याम फिर सुनिहौ खरी खरी ॥

[१७]

थोरे घास पानी में अघानी रहै रैनि दिन दूध दही माखन मलाई देत खाने को । पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र, जाके हाड़ चाम आंत गोवर ठिकाने को ॥ 'दीन कवि' मेरे जान याही बात अनुमानि मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने को । ऐसे उपकारी की कृतज्ञता विसारि अब भारत-निवासी मारे फिरैं दाने दाने को ॥

[१८]

सुरति समर करि प्यारी अलसात अंग वैठी निज अटा छवि छटा लगी छहरान । नखछत सहित उरोजन पै टपकत स्वेद-वुंद अरु कारे केस लगे लहरान ॥ सो छवि विलोकि कवि दीन जोह्यो उपमान सोचन ही उकुति अनोखी यह ठहरान । मानो लखि घटउतकच अवसान रन रोय रहे पांडव मुदित नाचि रहे कान ॥

[१६]

चाँदनी ।

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चाँदनी ।
खोजती फिरती है किसको आज घर घर चाँदनी ॥

घनघटा घूँघट उठा मुसकाई है कुछ ऋतु शरद।
मारी मारी फिरती है इस हेतु दर दर चाँदनी॥
रात की तो बात क्या दिन मे भी बन कर कुंद कांस।
छाई रहती है बराबर भूमितल पर चाँदनी॥
सेत सारी युक्त प्यारी की छटा के सामने।
जँचती है ज्यों फूल के आगे हो पीतर चाँदनी॥
स्वच्छता मेरे हृदय की देख लेगी जब कभी।
सत्य कहता हूं कि कॅप जायेगी थर थर चाँदनी॥
नाचने लगते हैं मन आनंदियों के मोद से।
मानुषी मन को बना देती है बन्दर चाँदनी॥
भाव भरती है अनूठे मन में कवियों के अनेक।
इनके हित हो जाती है जोगी मछंदर चाँदनी॥
वह किसी की माधुरी मुसकान की मनहर छटा।
'दीन' को सुमिरन करा देती है अकसर चाँदनी॥

[२०]

मेंहदी।

तुमने पैरों में लगाई मेंहँदी। मेरी आँखों में समाई मेंहँदी
खूनी होते हैं जगत के सब्ज़रंग। दे रही है यह दोहाई मेंहँदी
कुल से छूटी कूट कर पीसी गई। तब तेरे पद छूने पाई मेंहँदी
कष्ट से मिलता है जग से इष्टपद। बात यह सच्ची बनाई मेंहँदी
खैर कहता है कलेजा दे के निज। मैंने है राती बनाई मेंहँदी
है कथन मेरा, मेरे अनुराग से। ले गई है कुछ ललाई मेंहँदी
माई के लालों से यह लाली मिली। इससे ढांपे है ललाई मेंहँदी
वस्तु मँगनी की सुरक्षित ही रहै। दिल में रखती है ललाई मेंहँदी
नील नभ मे ज्यों छिपी ऊषा रहै। त्यों छिपाती है ललाई मेंहँदी
प्रातसंध्या से तुम्हारे पैर पा। व्यक्त करती है ललाई मेंहँदी

रागमय जन अंग हैं शृङ्गार के। यह प्रगट देती दोहाई मेंहँद
दिल में रखना चाहिये अनुराग को। सीख देती है सोहाई मेंहँद
मेरी प्यारी के युगल चरणों के साथ। रखती है गाढ़ी सगाई मेंहँद
पैर पड़ पड़ कर पकड़ लेती है हाथ। छल में बामन से सवाई मेंहँद

[२१]

आँख।

कहो तो आज कह दें आपकी आँखों को क्या समझे।
सिता सिंदूर मृगमद युक्त अद्भुत कुछ दवा समझे॥
अगर इसको न मानो तो बता दें दूसरी उपमा।
सहित हाला हलाहल मिश्रिता सुन्दर सुधा समझे॥
न हो सन्तोष इसपर भी तो उपमा तीसरी लेलो।
युगल पद धारिणी त्रिगुणात्मिका ऋगु की ऋचा समझे॥
दवा कैसी? सुधा क्या है? ऋचा की बात जाने दो।
हँसी अनुराग युत शृङ्गार रस की भूमिका समझे॥
न मानो भूमिका तो पाँचवीं उपमा सुनो हमसे।
सकल जग तारने के हित त्रिवेणी की धरा समझे॥
त्रिवेणी की धरा सिकतामयी, ये हैं रसिकतामय।
मकरगत मन्द-मंगल-चन्द की शुभदा छटा समझे॥
भला इन अँखड़ियों से इस छटा की तुल्यता कैसी।
जगत को मोहनेवाली त्रिदेवों की प्रभा समझे॥
त्रिदेवों की प्रभा भी सामने इनके नहीं जँचती।
खरी त्रिगुणात्मिका माया की द्व्यर्थक फक्किका समझे॥
भला इस फक्किका से और इन आँखों से क्या संगत।
सुविद्या एक को अपरा तो दूजी को परा समझे॥
नहीं कहते बनी उपमा भुलावे में पड़े हम भी।
सदा ही 'दीन' हितकर राम-सीता की दया समझे॥

[२२]

बीरों को सुमाताओं का यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकबि होने का अभिमान जनाता॥
जो बीर सुयश गाने मे है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है, मान घटाता॥
दुनिया मे सुकवि नाम सदा उसका रहेगा।
जो काव्य मे वीरों की सुभग कीर्ति कहेगा॥१॥
'बाल्मीकि' ने जब वीर चरित राम का गाया।
सम्मान सहित नाम अमर अपना बनाया॥
श्री 'व्यास' ने तब नाम सुकवियों में है पाया।
भारत के महा युद्ध का जब गीत सुनाया॥
कब चंद भी हिन्दी का सुकबि आदि कहाता।
यदि बीर पिथौरा का सुयश-गान न गाता॥२॥
'होमर' जो है यूनान का कवि आदि कहाया।
उसने भी सुयश बीरो का है जोश से गाया॥
'फिरदौसी' ने भी नाम अमर अपना बनाया।
जब फारसी वीरो का सुयश गाके सुनाया॥
सब वीर किया करते हैं सम्मान क़लम का।
वीरो का सुयश गान है अभिमान क़लम का॥३॥
इस वक्त हैं हिन्दी के बहुत काव्य धुरंधर।
आचार्य कोई इन्दु कोई कोई प्रभाकर॥
काव्याद्रि कोई, कोई हैं साहित्य के सागर।
हैं काव्य के कानन के कोई सिंह भयङ्कर॥
मैं काव्य सुकुल कामिनी का बाल हूँ अज्ञान।
इस हेतु मुझे भाता है माताओं का यश ज्ञान॥४॥

(वीर माताऐं)

जगन्नाथदास (रत्नाकर)

बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) बी० ए० का जन्म भादों सुदी ५, सं० १९२३ को काशी में हुआ। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य हैं। इनके पूर्व-पुरुष पानीपत के रहनेवाले थे, और वे मुगल बादशाहों के यहाँ ऊँचे ऊँचे पदों पर काम करते थे। इनके परदादा लाला तुलाराम एक बार जहाँदार शाह के साथ काशी आये और तब से वे यहीं रहने लगे।

बाबू जगन्नाथदास के पिता का नाम बाबू पुरुषोत्तमदास था। वे फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। फ़ारसी तथा हिन्दी कविता से उनको बड़ा प्रेम था। उन्हीं की देखादेखी रत्नाकर जी को कविता की ओर रुचि उत्पन्न हुई।

इनकी शिक्षा काशी ही में हुई। सन् १८९१ में इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। थोड़े दिनों के पीछे इन्होंने रियासत आवागढ़ में नौकरी कर ली। वहाँ का जल-वायु इनके स्वास्थ्य के अनुकूल न होने के कारण, वहाँ दो वर्ष योग्यतापूर्वक काम करने के बाद, नौकरी छोड़ कर ये काशी चले आये। कुछ दिनों तक घर पर बैठे रहने के बाद सन् १९०२ में ये स्वर्गीय अयोध्यानरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुये, और उनके मृत्युकाल (नवम्बर १९०६) तक उसी पद पर रहे। उनके बाद इनकी योग्यता और कार्य-

पटुता से प्रसन्न होकर अयोध्या की महारानी साहबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। आज तक ये उसी पद पर सुशोभित है।

बी० ए० में इनकी दूसरी भाषा फ़ारसी थी, इससे पहले पहल ये उर्दू में शायरी करते रहे। धीरे धीरे इनकी रुचि हिन्दी की ओर बढ़ी, और अब ये हिन्दी साहित्य के अच्छे ज्ञाता और व्रजभाषा के उच्चश्रेणी के कवि है। इनकी कविता सरस और भावपूर्ण होती है। अबतक इन्होंने, हिन्डोला समालोचनादर्श, साहित्य-रत्नाकर, घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर और हरिश्चन्द्र नामक काव्य ग्रन्थो की रचना की है। सुनते हैं, आजकल बिहारी सतसई पर एक बड़ी ललित टीका लिख रहे हैं। इनके सिवाय कुछ फुटकर कविताएं भी हैं, जो प्रायः अप्रकाशित हैं। चंद्रशेखर के हमीर हठ, कृपाराम की हितकारिणी और दूलह कवि के कंठाभरण का भी सम्पादन इन्होंने किया है। कई वर्षा तक ये कई सहयोगियों के साथ "साहित्य-सुधानिधि" नाम का एक मासिक पत्र निकालते रहे। उसमें इनके कुछ काव्य और दोहा-नियम प्रकाशित हुये थे, जिन्हें डाक्टर ग्रियर्सन ने अपनी "लाल चन्द्रिका" तक में उद्धृत किया था।

यहाँ रत्नाकर जी के "हरिश्चन्द्र" से श्मशान का वर्णन उद्धृत किया जाता है :—

श्मशान का वर्णन।

(हरिश्चन्द्र से)

कीन्हें कम्बल बसन तथा लीन्हे लाठी कर।
सत्यव्रती हरिश्चन्द्र हुते टहरत मरघट पर॥

कहत पुकारि पुकारि "बिना कर कफन चुकाये ।
करहि क्रिया जनि कोइ देत हम सबहिं जताये ॥"
कहुं सुलगति कोउ चिता कहूं कोउ जाति बुझाई ।
एक लगाई जाति एक की राख बहाई ॥
बिविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गन्धनि महकति ।
कहुं चरबी सों चटचटाति कहुं दहदह दहकति ॥
कहुँ फूकन हित धर्यो मृतक तुरतहि तहँ आयो ।
पर्यो अंग अधजर्यो कहूं कोऊ करखायो ॥
कहूं स्वान इक अस्थि खंड लै चाटि चिचोरत ।
कहुँ कारौ महि काक ठोर सों ठोक टटोरत ॥
कहुँ शृगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत ।
कहुँ कोउ शव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ॥
जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे ।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ॥
हरहरात इक दिस पीपल को पेड़ पुरातन ।
लटकत जामें घंट घने माटी के बासन ॥
बर्षा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक ।
सरिता बहति सवेग करारे गिरत अचानक ॥
ररत कहूं मंडूक कहूं झिल्ली झनकारैं ।
काक मंडली कहूं अमंगल मंत्र उचारैं ॥
भई आनि तब सांझ घटा आई घिरि कारी ।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी ॥
भये एकट्ठा आनि तहाँ डाकिन पिसाचगन ।
कूदत करत कलोल किलकि दौड़त तोड़त तन ॥
आकृति अति बिकराल धरे कुइला से कारे ।
बक्र बदन लघु लाल नयन जुत जीभ निकारे ॥

कोऊ कड़ाकड़ हाड़ चाबि नाचत दै ताली।
कोऊ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली॥
कोउ अंतड़ी की पहिरि माल इतराइ दिखावत।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत॥
कोउ मुण्डनि लै मानि मोद कन्दुक लौं डारत।
कोउ रुण्डिन पै बैठि करेजो फारि निकारत॥

राय देवीप्रसाद "पूर्ण"



राय देवीप्रसाद "पूर्ण" वर्तमान हिन्दी कवियों में बहुत ऊँचा स्थान रखते थे। हिन्दी-कविता के लिये बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि पूर्ण के द्वारा वह पूर्ण न होने पाई। स्वर्गीय पूर्ण जी की जीवन-कथा उनके मित्र पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की ही ज़बानी सुनिये :—

"बड़े दुःख की बात है, बड़े ही परिताप का विषय है, बड़ी ही हृदय-दाहक घटना है—राय देवीप्रसाद अब इस लोक में नहीं। गत ३० जून १९१५ को सबेरे १० बजे वे उस "धाम" के पथिक हो गये जहाँ से फिर कोई लौट कर नहीं आता—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते"। ऐसे देश-भक्त, ऐसे उत्तम वक्ता, ऐसे उत्कृष्ट कवि, ऐसे हार्दिक हिन्दी-प्रेमी, ऐसे धुरीण धर्मिष्ठ की निधनवार्ता अचानक सुननी पड़ेगी, इसका स्वप्न में भी ख़याल न था। सुनकर सिर पर वज्रपात सा हुआ; कलेजा काँप उठा।

दूर होने के कारण अपने इस माननीय मित्र के अन्तिम दर्शनों से भी यह जन वञ्चित रहा। शोक! जिसकी हास्यरस-पूर्ण पर तर्कसङ्गत और युक्ति-युक्त, वक्तृता सुन कर, कुछ समय पूर्व श्रोता लोग लखनऊ में मुग्ध हो गये थे, वह विद्वान्, वह नामी वकील, वह धर्म-प्राण पुरुष, केवल ४५ वर्ष की उम्र में, अपने प्रेमियों को, अपने नगर के निवासियों को, अपने मित्रों और कुटुम्बियों को रुला कर चल दिया। कानपूर मे आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई बड़ा काम ऐसा न होता था जिसमें आप शरीक न होते हों। कोई कैसा ही क्यों न हो, यथा-शक्ति आप उसकी अवश्य ही इच्छापूर्ति करते थे। बस, आपके यहाँ तक उसे पहुँच भर जाना चाहिये। नवयुवकों तक की सभाओं में आप प्रसन्नता-पूर्वक जाते थे, व्याख्यान देते थे और प्रार्थना करने पर सभापति का पद भी ग्रहण कर लेते थे। धर्म आपकी बड़ी प्यारी वस्तु थी। ब्रह्मावर्त-सनातन-धर्म-मंडल की स्थापना आपही ने की थी, सङ्गीत में भी आप बहुत कुशल थे। कविता आपकी बहुत ही सरल और स्वाभाविक होती थी। बहुत बरसों तक आपके स्थान पर हर रविवार को एक कवि-मंडली का अधिवेशन होता था और निश्चित समस्याओं पर सुन्दर सुन्दर पूर्तियां बनाई जाती थीं। आप बहुत शीघ्र कविता करते थे। आपकी कई कवितायें सरस्वती मे भी निकल चुकी हैं। "देश-हित के कुण्डल" -पाठकों को अब तक न भूले होंगे। आप स्वयं थे तो कायस्थ, पर आचरण और विद्वत्ता में आप बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मणों से भी बढ़े हुये थे। वेदान्त आपका प्यारा विषय था। कुछ समय पूर्व आप पञ्चदशी का परिशीलन करते थे।

कानपुर के ज़िले में एक मौज़ा भदरस है। राय साहब वहीं के रहनेवाले थे। शिक्षा इन्होंने जबलपुर में पाई थी। वहीं ये बी० ए० और वहीं बी० एल० हुये। हाईकोर्ट वकील की परीक्षा पास करके इन्होंने कानपुर में वकालत शुरू की। थोड़े ही समय में इनकी गिनती कानपुर के नामी वकीलों में हो गई। ये अधिकतर दीवानी ही के बड़े बड़े मुक़द्मे लेते थे। इनका दीवानी-कानून-विषयक ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। बड़े बड़े पेचीदा मुक़द्मे बहुधा इन्हीं के पास आते थे। इन पर नगर निवासियो का बड़ा प्रेम था। इनकी निधन वार्ता फैलते ही शहर के बाज़ार बन्द हो गये। कचहरी भी बन्द कर दी गई।

राय साहब ने अनेक काम अपने ऊपर ले रक्खे थे। म्यूनिसिपल बोर्ड के मेम्बर थे; कांग्रेस कमेटी और पीपुल्स एसोशियेसन् के सभापति थे। १९१२ मे कानपुर मे जो प्रान्तिक कान्फ़रेन्स हुई थी, उसकी अभ्यर्थना-समिति के येही सभापति थे। गत एप्रिल के आरम्भ में हिन्दी का जो प्रान्तिक सम्मेलन गोरखपुर मे हुआ था, उसके भी सभापति येही हुये थे। लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी ने इनको अपना मेम्बर बनाया था।

राय साहब की लिखी हुई कितनी ही पुस्तकें है। चन्द्रकला भानु-कुमार नाटक और धाराधर-धावन की आलोचनायें, बहुत पहले सरस्वती में निकल चुकी हैं। पहिले ये रसिक-वाटिका नामक कविता-पुस्तक हर महीने निकालते थे। पीछे से धर्म-कुसुमाकर नामक एक मासिक-पत्र ये निकालने लगे थे। वकालत सँभाल कर और सर्वजनोपयोगी और भी कितने ही काम करके

ये साहित्य-सेवा के लिये भी समय निकाल लेते थे। थियासफिस्ट होकर भी ये अच्छे वेदान्ती थे। अपने धर्म में इनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी, और काम में चाहे त्रुटि हो जाय; पर धार्मिक कामों मे ये कभी त्रुटि न होने देते थे। हर साल होली पर, ये अपने गांव में बड़े ठाट से धनुपयज्ञ करते थे। कई साल से ये सनातन-धर्म-सम्बन्धी वार्षिक उत्सव भी करने लगे थे। इन उत्सवो में दूर २ से बड़े २ वक्ता आते थे।

ऐसे बहुगुण सम्पन्न, परोपकार-रत देशहितैषी पुरुष के न रहने से कानपूर ही की नहीं, सारे प्रान्त की और देश की भी बड़ी हानि हुई। उनके कितने ही मित्र तो अनाथ से हो गये। जो स्वयं ही शोक से विह्वल हैं वे राय साहब के कुटुम्बियों को किस तरह धैर्य्य दें और क्या कह कर समझावें। ईश्वर उन्हे इस दुसह दुख के सहने की शक्ति दे।"

यहां "पूर्ण" जी की कविताओ के नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

[१]

वर्षा का आगमन।

सुखद सीतल सुचि सुगन्धित पवन लागी बहन,
सलिल बरसन लगो बसुधा लगी सुखमा लहन।
लहलही लहरान लागीं सुमन बेली मृदुल,
हरित कुसुमित लगे झूमन वृच्छ मंजुल विपुल॥ १॥
हरित मनि के रङ्ग लागी भूमि मन को हरन,
लसति इन्द्रबधून अवली छटा मानिक बरन॥

विमल बगुलन पाँति मानहुं बिसाल मुक्तावली,
चन्द्रहास समान चमकति चञ्चला त्यों अति भली ॥ २ ॥
नील नीरद सुभग सुरधनु वलित सोभा धाम,
लसत मनु बनमाल धारे ललित श्री घनस्याम ।
कूप कुण्ड गँभीर सरवर नीर लाग्यो भरन,
नदी नद उफनान लागे लगे झरना झरन ॥ ३ ॥
रटत दादुर त्रिविध लागे रुचन चातक वचन,
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन ।
मेघ गर्जत मनहुं पावस भूप को दल सबल,
विजय दुन्दुभि हनत जग में छीनि ग्रीसम अमल ॥ ४ ॥

[२]

भरत-वाक्य ।

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै, विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै ।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै कीजै कीजै देश कल्याण कीजै ॥ १ ॥
सुमति सुखद दीजै फूट को लोग त्यागैं,
कुमति हरन कीजै द्वेष के भाव भागैं ।
तजि कुसमय निद्रा चित्त सों चित्त जागैं,
विषम कुपथ त्यागैं नीति के पंथ लागैं ॥ २ ॥
तन्द्रा त्यागैं लहि कुशलता होहिं व्यापार-नेमी,
सीखैं नीकी नव नव कला होहिं उद्योग-प्रेमी ।
पूरे रूरे नियम विधि सों स्वस्थता के निवाहैं,
उत्कण्ठा सों दिवस निसहूं देश की वृद्धि चाहैं ॥ ३ ॥
पावैं पूरी प्रतिष्ठा कविबर जग के शुद्ध साहित्य-ज्ञानी,
होवैं आसीन ऊँचे सुजन विदित जे देश सेवाभिमानी ।
पीड़ा दुर्भिक्षवारी जुगजुग कबहूं प्रान्त कोऊ न पावैं,
दीर्घायू लोग होवैं तिनढिग कबहूं रोग कोऊ न आवैं ॥ ४ ॥

सत्सङ्ग सन्त-सुर-पूजन धेनु-प्रेम,
श्रीराम-कृष्ण-चरितामृत-पान-नेम।
सौजन्य भाव गुरुसेवन आदि प्यारे,
सम्पूर्ण शील शुभ पावहिं देशवारे॥ ५॥
अन्याय को अङ्क कहूं रहैना, दुर्नीति की शङ्क कहूं रहैना।
होवै सदा मोदविनोद कारी, राजा प्रजा में अनुराग भारी॥६॥
समस्त वर्णाश्रम धर्म मानैं, सदाहि कर्तव्य प्रधान जानैं।
जसी तपस्वी बुधवीर होवैं, वली प्रतापी रणधीर होवैं॥ ७॥
लक्ष्मी दीजे लोक में मान दीजे, विद्या दीजे सभ्य सन्तान दीजे।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजे कीजे कीजे देश कल्यान कीजे॥८॥

[३]

मृत्युञ्जय।

प्रतिनिधे खल काल कराल के।
कुटिल क्रूर भयानक पातकी॥
अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया।
अशुच मृत्यु अरे अधमाधम॥ १॥

(बाग की सैर।)

करत सैर हुते कल बाग की।
तुरग बाग गहे कर रेशमी॥
सुनि परै तिनकी अब वारता।
चल बसे तजि के जग बाग सो॥ २॥
रतन मन्दिर मञ्जु अमन्द में।
रमत जौन निरन्तर ही रहे॥
दिवस अन्तर में सोइ सोवहीं।
अब भयङ्कर घोर मसान मे॥ ३॥

मखमली मृदु मञ्जुल तूल की ।
सुमन रञ्जित सेज बिहाय के ॥
मृदुल अङ्गन के लखिये परे ।
कठिन काठ चिता पर्य्यंक पै ॥ ४ ॥
लखत रंग हुते गनिकान के ।
निस निरन्तर जो जन जागि कै ॥
उन लई निँदिया इन काल की ।
मुंदि गई अँखिया सब काल को ॥ ५ ॥
कहुँ लखी तितुली लतिकान में ।
तरल मञ्जुल सुन्दरता भरी ॥
असन के हित आतुर ताहु पै ।
झपट चोट करी कर चोटिया ॥ ६ ॥
तुमल तीतर शोर कियो कहूँ ।
मुदित भीतर जाति पतीर के ॥
उतरि बाज भयानक तीर लौं ।
पकरि ताहि अचनक लै गयो ॥ ७ ॥
मुदित भृङ्ग कहूं मकरन्द पी ।
कमल संपुट में पटुता भुले ॥
मग तकै जब लौ दिनराज को ।
कवल कञ्जहि कुञ्जर कै गयो ॥ ८ ॥
गति सुधारन की करि धारना ।
उचित है चित धीरज धारियो ॥
झटित हो अथवा कछु काल में ।
अवशि जीतहिं गे हम काल को ॥ ९ ॥
शम दमादिक सम्पति जो कहीं ।
सुखद साधन है तिनको सदा ॥

उचित ग्रन्थन सौं सतसङ्ग सों ।
सगन कै लहिये गति ज्ञान की ॥ १० ॥
सकल पापन सों बचि कै सदा ।
शुभ सुकर्म करौ बिन वासना ॥
परम सार रहै नित ध्यान में ।
सुखद पन्थ यही बर ज्ञान को ॥ ११ ॥
चरित चिन्तन देव ऋषीन को ।
हरि हरादिक की शुभ अर्चना ॥
सुगुरु सेवन तीरथ आदि सों ।
सुगम होत सदा मन ज्ञान को ॥ १२ ॥
जगत है मन की सब कलपना ।
दृढ़ जबै यह निश्चय होत है ॥
जगत भासत पूरन ब्रह्म ही ।
बस वही परिपूरन ज्ञान है ॥ १३ ॥
पर दशा वह पूरन ज्ञान की ।
स्थिर सदा रस एक रहै नहीं ॥
न जबलौ मन को बस कीजिये ।
तजि सबै जड़ जङ्गम वासना ॥ १४ ॥
सुहृद सङ्ग सहोदर सुन्दरी ।
सुखद सन्तति धाम वसुन्धरा ॥
सुजस सम्पति की मनकामना ।
सबन को बस बन्धन मानिये ॥ १५ ॥
दनुज वंश भुजङ्गम देवता ।
मनुज कुञ्जर भृङ्ग विहङ्गम ॥
विपिन तुङ्ग तड़ाग तरङ्गिनि ।
जलद वृन्द दिवाकर चन्द्रमा ॥ १६ ॥

गगन मध्य धरातल मध्य मे ।
अरु रसातल मे जितनो जिते ॥
सकल सो जड़ जङ्गम जानिये ।
असत पञ्च प्रपञ्च विरञ्चि को ॥ १७ ॥
यदि लखात असार जहान है ।
कुढ़त जो जग बन्धन ते हियो ॥
उदित जो उर मुक्ति सुकामना ।
करहु तौ तुम साधन ज्ञान को ॥ १८ ॥
तिमिरि नाश प्रकाश बिना नहीं ।
घन बिलात न बात बिना यथा ॥
न बरखा बिन जात निदाघ ज्यों ।
मिटत काल नहीं बिन ज्ञान के ॥ १९ ॥
बिलग बारिधि ते न तरङ्ग है ।
पृथकता चरु मन्द विचारहीं ॥
लहर अम्बुधि दोनहु अम्बु है ।
जगत ब्रह्म भयो तिमि जानिये ॥ २० ॥
कनक के बरु कङ्कन किङ्किनो ।
अमित आकृति के रचिये तऊ ॥
कनक ते नहिं अन्य कछू तथा ।
सकल ब्रह्म भयो जग जानिये ॥ २१ ॥
पवन भासत नाहि बिना चले ।
अरु चले वह भासन लागई ॥
अचल चञ्चल है इकही हवा ।
पृथक मूढ़ भलो समुझो करै ॥ २२ ॥
यहि प्रकार अचञ्चल ब्रह्म में ।
स्फुरण चञ्चलता सम जानिये ॥

जगत भासन लागत है सही ।
पृथक तौन नहीं पर ब्रह्म सो ॥ २३ ॥
भवन मे मठ में घट में यथा ।
गगन देखि अनेक परै तऊ ॥
विमल बुद्धिन को नभ एक है ।
सबन मे परमातम है तथा ॥ २४ ॥

[४]

धाराधर-धावन ।

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपट प्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुम किसलयान्यं शुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥

अर्थ

कनक कमल उपजावनवारो मानस को जल पीजौ,
सलिल पियन त्यौं ऐरावत को मुख अँगौछि हित कीजौ,
कलपलतादल वायुवेग सों पट समान फहरैयो,
यहि विधि भोग विलास विविधि करि परबत पै सुख पैयो

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
नत्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गार मुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥

नगपति अंक लसै नागरि सी अलका नगरि सुहानी,
सुरसरिसारी रही सरकि सित तू लैहै पहिचानी,
पावस में अभिराम कामचर! धाम तुंग अति वाके,
धारत जलधर जाल बाल ज्यों बाल गुथे मुकता के ॥

नत्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि सुतरां मागमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥
आशा ही के सहारे अतुलित दुख मे मैं धरूँ धीर जैसे।
तू हू हे भागवन्ती दुसह विरह मे राखु री धीर तैसे॥
नाकोंऊ नित्य भोगै अति सुख, अरु ना नित्य ही दुःख भारी।
ऊँची नीची अवस्था लखियतु जग में चाल ज्यो चक्रवारी॥

[५]

गंगा जमुनी की कोउ सुखमा बतावै कोऊ संगति सतो-गुन रजोगुन अमन्द की। कोऊ धूप छांह की बतावत छटा है कोऊ लाज पै चढ़ाई कुसुमायुध सुछन्द की॥ सोभा सिन्धु नवला की बैस की विलोक संधि बारता सुहात मोहिं पूरन अनन्द की। रूप देस एकै संग राजै उजियारी चारु जोवन के सूरज की शैशव के चन्द की॥

[६]

अद्भुत डोरी प्रेम की जामें बांधे दोय।
ज्यो ज्यो दूर सिधारिये त्यों त्यों लांबी होय॥
त्यो त्यो लांबी होय, अधिकतर राखै कसिकै।
नेह न्यून ह्वै सकत नेक नहि दूरहु बसि कै।
विधिना देत बिछोह कहूँ तासो कर जोरी।
रखियो छेम समेत प्रेम की अद्भुत डोरी॥

[७]

प्रेम सुभग मे परि गयो विरह सिन्धु गम्भीर।
नाव दया है रावरी पहुँचावन को तीर॥

पहुँचावन को तीर तुमहिं समरथ सुखरासी ।
मैं अबला बिन बित्त बिना दामन की दासी ॥
मेरो है न अधार दूसरो तुम बिन जग मे ।
दीजौ तातें साथ प्रानपति प्रेम सुमग में ॥

[८]

अरे ! तू अधम काल के मित्र ! जगत के शत्रु ! नीच संग्राम !
अरे धिक्कार तोहिं सौ बार ! अमंगल ! दुःखद पातकधाम !
सघन-सुख-पङ्कज-पुञ्ज-तुषार ! देश-उन्नति-तरु-कठिन-कुठार !
शान्तिवनदहन प्रचण्ड कृशानु ! भयानक हिंसावंश अगार !
देश सम्पत्ति कृषी पै हाय ! परै तू टूटि गाज के रूप,
लोकद्रोही ! धिक् ! धिक् ! धिक् तोहिं ! युद्ध रे व्याधि देश के भूप !
नीच नृप के अघ के परिणाम ! देश दुष्कर्म विपाक स्वरूप !
प्रजामुदकुसुमाकर को ग्रीष्म ! अरे दारुण सन्ताप अनूप !
सहस्रन घायल डारे बीर कराहैं कलपि २ बस हीन ।
सहस्रन मूर्च्छित भरहिं उसास जियन को घटिका द्वै वा तीन ॥
सहस्रन जूझि गये बलवान सिपाही समर धीर सरदार ।
सहस्रन गज तुरंग भे नष्ट झेलि कै बानन की बौछार ॥
सहस्रन धामन में कुहराम मच्यो है सकरुन हाहाकार ।
चहूँ दिश शोकावलि सरसात सहस्रन उजरि गये घरबार ॥
सहस्रन बालक भोरे दीन भये असहाय हाय बिन बाप ।
बिलख लखि लखि कै तिनकी आज हिये में होत महा सन्ताप ॥
सहस्रन दुर्बल बूढ़े लोग निपुती भये रहे सिर फोरि ।
कहैं करि रोदन "बेटा ! हाय ! कहां तुम गये कमर को तोरि"
सहस्रन बन्धु दुहाई देत "हाय ! हरि हिये दया है नाहिं,
हमारो उटिगो बन्धु जवान, हमारी टूटि गई हा बाहिं" ॥

सहसन नारी यहि सप्ताह भई बिधवा, है शोक महान।
बरनि को सकै अहो दुख घोर? अहै सो करुनामूरतिमान!॥
मृतक सी परीं महीतल माहिं दया के योग्य भरीं सन्ताप।
कबहुँ जो होवै मुरछा दूर करैं तौ अतिशय घोर विलाप॥
"कहां तुम गये प्रानआधार! जगत जीवन के शोभा रूप?
गये कित स्वामी! सुख के धाम! बोरि दासी को दुखके कूप?
हाय! कहँ गये हमारे छत्र! छांड़ि औचकहि हमारो साथ?
हाय! सुरनगर बसायो जाय, निठुर ह्वै, करिहम दुखिन अनाथ,
हमारे चूड़ामनि सिरमौर! हमारे, पति, सम्पत्ति, सोहाग!
गये पिय! कित शृङ्गार नसाय? अरे निर्दई दई! हा भाग!
करौ हे पीतम! सो दिन याद जबै तुम गह्यो हमारो हाथ।
कह्यो करि साखी देवहि आप 'जनम लौं देहैं तुम्हरो साथ'।
प्रानप्यारे! क्यों मुख को मोरि गये तजि भला प्रतिज्ञा तोरि?
चले इत आवो हाय बहोरि, विनै है चरन परसि कर जोरि।
पिया शय्या पर सोवनहार! आज तुम परे कठिन रनखेत॥
कन्त! अँगराग लगावनहार धूरि तन भरी भूरि केहि हेत?
प्रानवल्लभ! नित रहे दयाल, सही नहिं कबहुँ हमारी पीर।
आज लखि हमैं हाय! बिलखात न पोछत काहे नैनन नीर?
कबहुँ नहिं कियो कन्त! आलस्य जगत हे नेकहि खटका पाय
निपट बेखटके सोवत नाथ! आज की कैसी निद्रा हाय?
कबहुँ जो जात हुते परदेश आप, वा, खेलन काज सिकार।
होत हो दारुन हमें कलेस रैन दिन प्रानन सालनहार॥
रहति है यद्यपि पूरी आस, कछुक दिन बीते ऐहैं कन्त।
तऊ अनुरागी चित को हाय बेदना होतहि हुती अनन्त॥
हाय! सोइ पीतम प्रेमनिधान आज तुम गये नहीं परदेस।
गये तुम सुरपुर हमैं बिहाय सदा को, हाय अपार कलेस॥

नाथ ! जो बहुरि न आवौ पास करौ तो एतो ही उपकार।
बुलावो हमको ही निज पास, होय काहू बिधि बेड़ा पार॥

नाथ ! तुम बिना निपट अँधियार भयो सूनो दुखप्रद संसार।
होत प्रानन छिन छिन दुखदाय अधम माटी को कारागार"॥

कहां लौ बरनो जाय प्रलाप दुखारी विधवागन को हाय।
बिसूरत ही तिनको सन्ताप सहज ही हिरदे फाटो जाय॥

अरे ! संग्राम ! घृणा के धाम ! धर्मद्रोही, अपकारी क्रूर !
रुधिर के प्यासे ! अरे पिशाच ! उपद्रव करन ! धूर्त्त भरपूर !

जगत में तूही बार अनेक प्रकट ह्वै किये घने उतपात ।
भरे इतिहासन में वृत्तान्त तिहारे दुर्गुण के विख्यात॥

सुरासुर समर महान प्रचण्ड भये भयकरण अनेकन वार ।
भई तिनमें हिंसा विकराल, अपरिमित सृष्टि भई संहार॥

पर्शुधर क्षत्रियगण के युद्ध नष्ट कर दीन्हें अगणित वंस ।
बली वर भूपति संख्यातीत प्रतापिन लह्यो सहज विध्वंस॥

राम रावण संग्राम प्रसिद्ध उपस्थित भयो भयानक घोर।
अपरिमित बलधर कलाप्रवीण नसे योद्धा विक्रान्त अथोर॥

लड़े त्यों जरासिन्धु यदुवंश, भयो हरि-बानासुर-संग्राम ।
भयङ्कर भयो महा विकराल महाभारत रण हिंसा-धाम॥

रूम यूनान मिश्र वा रोम स्पेन जर्मनि वा इंग्लिस्तान।
आस्ट्रिया फ्रान्स देश वा होय अफरिका अमेरिका जापान।

सबन को जेतो है इतिहास होय सो नवीन वा प्राचीन।
ठौर ही ठौर भरी तेहि माहिं युद्ध की कथा महा दुखलीन॥

अरे तू जगत उजाड़नहार ! अकथदुखकरन ! अपावन ! भीम
कहां लों बरनूं हे खलराज ! तिहारे निन्दित कर्म असीम !

[९]

धन्य जगवन्दन भै भञ्जन अनन्दकन्द, सङ्कट निकन्दन, अनन्तरूप धारी धन्य ! धाम करुणा के प्रभुता के महिमा के महासिन्धु सुखमा के श्रीरमा के चितहारी धन्य ! शेष शिव शारद सनातन शुकादि सेव्य संत सुर सुखद सहाय असुरारी धन्य ! आदि अज अजर अगोचर अनादि एक अमित अनेक ब्रह्म पूरन मुरारी धन्य !

[१०]

कोल्हू को कठिन भार काठ औ कवार तापै कांधे पै संभार धायो तिन भुल खाय खाय। सूधो चल्यो तौ हेतीं मञ्जिलें विपुल पार नन्दीपुर जाय हरखातो सुख पाय पाय॥ होनहार नाहीं इन तिलन मे तेल नेक पूरन सचेत होहु चित हित लाय लाय। अजहूँ चखन खोलि सोच तौ अनारी भला केती गैल काटी बैल रातौ दिन धाय धाय॥

[११]

माता के समान पर पतनी बिचारी नहीं, रहे सदा पर-धन लेनही के ध्यानन में। गुरुजन पूजा नहीं कीन्ही सुच भावन सो गीधे रहे नानाविधि विषय विधानन में॥ आपुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन में खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन मे। जिनसो वनी न कछु करत मकानन में तिनसों वनैगी करतूत कौन कानन मे॥

[१२]

पूरन सप्रेम जो न लेत मुख रामनाम, टीका अभिराम है निकास तासु आनन में। उर में नहीं जो हरिमूरति विराजी मंजु कौन महिमा है कंठमालन के दानन में॥ आसन को

नेम बिन बासना नमाये मिथ्या, बिन श्रुति ज्ञान होत मुद्रा वृथा कानन में। चहिये सुरीति धर्म कर्म के विधानन में रहिये मकानन में चाहे घोर कानन में॥

[१३]

तुम्हारे अद्भुत चरित मुरारि।
कबहूं देत विपुल सुख जग में कबहुं देत दुख भारि॥१॥
कहुं रचि देत मरुस्थल रूखो कहुं पूरन जलरास।
कहुँ ऊसर कहुँ कुञ्ज विपिन कहुँ कहुँ तम कहूँ प्रकास॥२॥

[१४]

बिरहा।

अच्छे २ फुलवा बीन री मलिनियां गूंधि लाव नीको २ हार।
फुलन को हरवा गोरी गरे डरिहौ सेजिया माँ होय रे बहार॥
हरि भजना करु गौने के साज।
चैत मास की सीतल चाँदनी रसे रसे डोलत बयार।
गोरिया डोलावै बीजना रे पिय के गरे बाहीं डार॥
हरि भजना—पिय के गरे बाहीं डार॥
बागन माँ कचनरवा फूले बन टेसुआ रहे छाय।
सेजिया पै फूल झरत रे जबही हँसि हँसि गोरी बतराय।
हरि भजना—हँसि हँसि गोरी बतराय॥
हरवर साइति सोधि दे बह्मनवा भरनी दिहिसु बरकाय।
पाछे रे जोगिनिआँ सामने चँदरमा गोरिया का लावहु लेवाय॥
हरि भजना—गोरिया का लावहु लेवाय॥
कोउ रे पहिनै मोतियन माला कोउ रे नौलगा हार।
गोरिया सलोनी मैं करौं रे अपने गरे का हार॥
हरि भजना—अपने गरे का हार॥

आमन कूकै कोइलिया रे मोरवा करत बन सोर।
सेजिया बोले गोरिया रे सुनि हुलसै जिय मोर॥
हरि भजना–सुनि हुलसै जिय मोर॥
काहे का विसाहौ रँग पिचकरिया काहे धरौं अबिरा मँगाय।
होरी के दिनन माँ गोरी के तन माँ रँग रस दुगुन दिखाय॥
हरि भजना–रँग रस दुगुन दिखाय॥
अबहीं बुलावौ नौवा बरिया अवही बुलावहु कहार।
गोरी के गवन की साइति आई करि लाई डोलिया तयार॥
हरि भजना–करि लाउ डोलिया तयार॥

सैयद अमीरअली 'मीर'



हिन्दुस्थान के सर्वप्रधान आधुनिक मुसलमान हिन्दी-कवि श्रीयुत सैयद अमीरअली जी "मीर" मध्यप्रदेश के रत्न हैं। इनका जन्म कार्तिक वदी २, सं० १९३० मे सागर में हुआ। इनके पिता का नाम मीर रुस्तम अली था। इन दिनो ये छत्तीसगढ़ के अन्तर्गत उदयपुर राज्य में पुलिस विभाग के सर्वोच्च कर्मचारी के पद की प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं।

ये हिन्दी के अच्छे गद्य-पद्य लेखकों में से हैं। इन्होंने हिन्दी की जो सेवा की है, जैसी सेवा कर रहे हैं और करेंगे ये बातें उनके लेखों पर से स्पष्ट झलकती हैं। इनके शिष्य-समुदाय मे से अनेक आज सुकवि, सुलेखक और सुग्रन्थ-

प्रकाशक तथा मुद्रितकार के नाम से ख्यात हो रहे है। 'हिन्दी हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा हो' ये इस सिद्धान्त के अनुयायी हैं। इनकी विद्या-बुद्धि प्रतिभा और हिन्दू शास्त्र पुराणों के कथा प्रसंगो की जानकारी बढ़ी चढ़ी हुई है। इन्होने "स्वावलम्बन", "देशी रोज़गार" "स्वदेश-प्रेम" "व्यापारोन्नति" पर बड़ी अच्छी रचनाएँ की है। इनके गद्य पद्य लेखों का उत्कर्ष इसीसे प्रकट है कि अनेक संस्थाओं ने इनको पदक और पदवियाँ प्रदान करके इनका मान चढ़ाया है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में ये रसीली कविता कर सकते है।

इनके कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

बूढे का व्याह (खण्ड काव्य), बच्चे का व्याह, नीति दर्पण की भाषा टीका, सदाचारी बालक, काव्य-संग्रह, गद्य-लेख-माला।

इनका स्वभाव बड़ा ही शान्त है, विनय और शील के तो मानो ये आगार हैं। आडम्बर तथा अभिमान तो छू भी नहीं गया है। स्वदेश की बनी वस्तुओ से इनको बड़ा प्रेम है। ये सदैव स्वदेशी वस्तुओ का व्यवहार किया करते हैं। प्रबन्ध कार्य में इनकी पटुता, प्रतिभा और बुद्धि की गंभीरता की प्रशंसा बड़े २ उच्च कर्मचारियो तक ने की है।

इनका धर्म-भाव उदार और व्यापक है। सदाचार और स्वधर्म में इनकी दृढ आस्था है। गोसाईं तुलसीदासजी महाराज के "रामचरित मानस" मे इनको अतुल अनुराग है। प्रयाग के प्रथम हिन्दी सा० सम्मेलन के लिए लिखित इनके "हिन्दी और मुसलमान" शीर्षक लेख की बड़ी प्रशंसा

हुई थी। "मुहर मीमांसा" नामक इनका पुरातत्व सम्बन्धी लेख इतना विशेषतापूर्ण समझा गया था कि उसका अँग्रेजी अनुवाद एक प्रख्यात सभा द्वारा प्रकाशित किया गया था।

"साहित्य रत्न", "काव्य रसाल" आदि पदवियाँ इनको विख्यात साहित्य संस्थाओं से प्राप्त हुई हैं।

मीर जी की कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैंः—

प्रार्थना

सब सों मीर गरीब हैं, आप गरीब निवाज।
कोर कृपा कर फेरबौ, वे दिन वे सुख साज॥ १॥
जान तुम्हें करुणाय न, करि करुणायुत वैन।
विनवहुं करुणा करहु अब, जासों पावहुँ चैन॥ २॥
दीनबन्धु तुम, दीन मैं, तुम्हरो ही मुहताज।
टेक नाम की राखिये, रहै दोउ की लाज॥ ३॥
तुम तो दाता सुमनि के, सुमनि दीजिए मोहिं।
जासों परहित करत मैं, भजत रहूं नित तोहिं॥ ४॥
जाँचे विन फलदेहु जो, दाता अहौ उदार।
करम देखि ज्यौ तारिहौ, तो कैसे करतार॥ ५॥
भटक्यो मृग जल में फिरयो, अब भ्रम भागी मोर।
व्यर्थ आस तजि लीन्ह गह, मीर भरोसो तोर॥ ६॥
जौलौं द्रवहु न नाथ तुम, तौलौं द्रवहि न और।
और कहा कहुं मिलत ना, ठाढ़ भये को ठौर॥ ७॥

दशहरा

आगया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह दल।
मातृ-पूजा, शक्ति-पूजा, वीर-पूजा है विमल॥

हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय उत्सव है ललाम ।
शरद की इस सुऋतु में है खड्ग पूजा धाम धाम ॥
दिखने लगे खञ्जन यहां, रहने लगे चकवा अशोक ।
अब चल पड़े योगी यती मग की मिटी सब रोक टोक ॥
भरने लगे बाजार हैं, खुलने लगे व्यापार द्वार ।
सजने लगे सेना नृपति बजने लगे बाजे अपार ॥
यह दशहरा क्षत्रियों का प्राण जीवन पर्व है ।
हिन्द के इतिहास में इस पर्व का अति गर्व है ॥
वीर पुरुषों को यही संजीवनी का काम दे ।
जीत दे फिर कीर्ति दे फिर मान दे धन धाम दे ॥
थी विजयदशमी यही जब राम ने दल साज कर ।
गिरि प्रवर्पण से चढ़ाई की थी लंका राज पर ॥
मार रावण को वहाँ उद्धार सीता का किया ।
और लंका का विभीषण को तिलक था दे दिया ॥
उस समय से इस दशहरे का बड़ा सम्मान है ।
धान गुण का यह प्रवर्तक क्षत्रियों का प्राण है ॥
आज करते हैं विजय की कामना सब वीर-वर ।
जाँचते हैं दृष्टि कर गज अश्व दल हथियार पर ॥
श्रेय विजया से भरे इतिहास के बहु पत्र हैं ।
आज भी प्रतिबिम्ब उसका देखते हम अत्र हैं ॥
जो सबक लेना हमें उससे, उचित लेते नहीं ।
स्वार्थ-पशु-बलि, त्याग की तलवार से देते नहीं ॥
इन्द्रियों की वासना ही है असुर शङ्का नहीं ।
ज्ञान शर से जीतते हैं लोभ की लङ्का नहीं ॥
हन्त जो कुविचार-रावण है उसे तजते नहीं ।
क्या कहें सुविचार श्रीवर राम को भजते नहीं ॥

नाश कर "कुविचार" का सद्बुद्धि सीता लाइए।
नृप विभीषण की तरह सन्तोष को अपनाइए॥
शान्त हो प्यारी अवध, फिर राज्य उसका कीजिए।
'मीर' विजया की विजय का इस तरह यश लीजिए।

अन्योक्ति सप्तक।

मैना तू वनवासिनी, परी पींजरे आन।
जान देव गति ताहि में, रहे शांत सुख मान॥
रहे शांत सुख मान, बान कोमल तें अपनी।
सब पक्षिन सरदार, तोहि कवि-कोविद वरनी॥
कहें 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे वैना।
तौ भी तुझको धन्य, बनी तू अजहूँ मै-ना॥ १॥
तोता तू पकड़ा गया, जब था निपट नदान।
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया, तौभी रहा अजान॥
तौभी रहा अजान, ज्ञान का मर्म न पाया।
जीवन पर के हाथ सौंप, निज घर बिसराया॥
कहे मीर समुझाय, हाय! तू अबलौं सोता।
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ़ के तोता॥ २॥
बिल्ली निज पति घातिनी, तुझको प्यारा गेह।
खाती है जिसका नमक, उससे नेक न नेह॥
उससे नेक न नेह, देह पर करती हमला।
खा खा कर घी-दूध, कमाई घर की कमला॥
कहें 'मीर' समुझाय, पढ़े तू चाहे दिल्ली।
नमक हरामी चाल, न छूटे तुझसे बिल्ली॥ ३॥
बगला बैठा ध्यान में, प्रातः जल के तीर।
मानौं तपसी तप करे, मल कर भस्म शरीर॥

मल कर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली।
कहैं 'मीर' असि चोंच, समूची फौरन निगली॥
फिर भी आवे शरण, वैर जो तज के अगला।
उनके भी तू प्राण, हरे, रे! छी! छी! बगला॥ ४॥
कैदी होने के प्रथम, था अलि 'मीर' स्वतंत्र।
उसे पवन ने छल लिया, कह के मोहन मंत्र॥
कह के मोहन मंत्र, तंत्र सा फिर कुछ करके।
उसे गयी ले खींच, पास में गहरे सरके॥
पड़ा प्रेम में अचल, वहां लकड़ी का भेदी।
था जो कोमल कमल, बनाया उसने कैदी॥ ५॥
जाने कौन्हों शमन है, मत्त मतङ्ग न मान।
हाय! दैव वश सिंह सो, परो पींजरे आन॥
परो पींजरे आन, श्वान के गन ढिग भूकैं।
विंहसैं ससा, सियार, कान पै आके कूकैं॥
मीर बात है सत्य, लोक में कहिगे स्याने।
का पै कैसो समय, कबै परिहै को जाने!॥ ६॥
कोयल तू मन मोह के, गई कौन से देस।
तो अभाव में काग मुख, लखनो परो भदेस॥
लखनो परो भदेस, वेस तोही सो कारो।
पै बोलत हैं बोल, महा कर्कस कटु न्यारो॥
कहैं 'मीर' हे दैव, काग को दूर करो दल।
लावो फेर बसंत, मनोहर बोले कोयल॥ ७॥

स्फुट।

सवैया।

क्यों यह सोच करै मन मूढ़ अरे दिन थे दुख के टरिहै क
त्यों दुखदायक दीनन के यह पापी कबै अपसों मरिहैं क

मानि ले तू सिगरो जग मीत है एकहु ना हमरे अरि हैं अब ।
जा दिन दैव दया करिहै तब ता दिन 'मीर' मया करिहैं सब ॥

कवित्त

चतुर गवैया होय, वेद को पढ़ैया चाहे
समर लड़ैया होय रणभूमि चौड़ी में ।
जानत समैया होय "मीर कवि" त्योंही चाहे
बात को जनैया होय नैन की कनौड़ी में ॥
नीति पै चलैया होय परउपकार आदि
कुशल करैया काज हाथ की हथौड़ी में ।
गुनन को शीला होय तोऊ ना वसीला बिन
कोऊ हो पुछैया भैया तोहि तीन कौड़ी में ॥

जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी

पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का जन्म संवत् १९३२ वि० विजयादशमी को नदिया जिले के छिटका गाँव में हुआ था । इनके पिता पण्डित कालीप्रसाद का स्वर्गवास संवत् १९३४ में ही हो गया। उस समय आपकी अवस्था दो ही वर्ष की थी । जब यह छह सात ही महीने के थे, तब इनके मामा पं० बलदेवप्रसाद पाण्डेय इन्हें अपने यहाँ, मलयपुर (मुंगेर) ले गये थे । इनके मामा तीन भाई थे । वे इन्हें अपने पुत्र से भी अधिक लाड़ प्यार से रखते थे । वहाँ देहात मे

इनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न हो सका। तेरह वर्ष की अवस्था में इन्होंने जमुई माइनर स्कूल के फोर्थ क्लास में भर्ती होकर पढ़ना आरम्भ किया। यह बुद्धि के बड़े तीव्र थे और इसीसे अल्पकाल में ही इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वार्षिक परीक्षा में ये बराबर उत्तीर्ण होने लगे। सन् १८९८ में इन्होंने कलकत्ते के मेट्रापोलिटिन इन्स्टिट्यूशन में सेकेण्ड डिविज़न मे एंट्रेन्स पास किया। एफ़० ए० की परीक्षा में फ़ेल होने के कारण इन्होंने कालेज छोड़ दिया। हिन्दी लिखने पढ़ने का इनको पहले से ही प्रेम था। हिन्दी कविता लिखने का भी शौक बचपन से था। इनकी उस समय की कविता पर कलक्टर साहब तथा प्राइज़-पोयट्री-फ़न्ड ने पारितोषक दिया था। कालिज छोड़ने पर भारतमित्र के सुयोग्य सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। भारतमित्र में ये समय समय पर लेख और कविता देने लगे। उसी समय इन्होंने संसार-चक्र नामक एक बड़ा ही रोचक उपन्यास लिखा।

संवत् १९५९ में ये अपने मामा के साथ चपड़े का काम देखने लगे। सं० १९६० में ये चार महीने तक हितवार्ता के सहकारी सम्पादक रहे। सं० १९६१ में इन्होंने चपड़े की दलाली शुरू की और तब से बराबर यही काम कर रहे हैं। इनके फ़र्म का नाम "मिरजामल जगन्नाथ एण्ड कम्पनी" है।

चतुर्वेदी जी बराबर मातृभाषा की सेवा निःस्वार्थ रूप से कर रहे हैं। ये गद्य और पद्य, दोनों ही के उत्तम लेखक हैं। इनके लेख और कवितायें बड़ी ही रसीली और चुभीली होती हैं। ये मूर्तिमान हास्यरस हैं। इनकी वक्तृतायें भी व्यंग और

हास्य से खूब भरी रहती हैं। इनकी भाषा सुसंस्कृत, व्यवहृत और मनोहारिणी होती है। इनकी लेखन-शैली भी भावपूर्ण तथा नवीन होती है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के जितने अधिवेशन हुए, ये प्रायः सभी में सम्मिलित हुए। इन्होंने सदा हिन्दी-साहित्य के विकास में तन मन धन से योग दिया है। इनके लेख तथा कवितायें इनके विनोद-प्रिय स्वभाव का परिचय देती हैं। इन्होंने निम्नलिखित गद्य पद्यात्मक पुस्तकें रची हैं:—

(१) वसन्त मालती, (२) संसार-चक्र, (३) तूफ़ान, (४) विचित्र-विचरण (५) भारत की वर्तमान दशा (६) स्वदेशी आन्दोलन (७) गद्य-पद्य-माला (८) निरंकुशता निदर्शन (९) कृष्ण चरित्र (१०) राष्ट्रीय गीत (११) अनुप्रास का अन्वेषण (१२) सिंहावलोकन (१३) हिन्दी-लिंग-विचार। इनकी कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं:—

[१]

सुखमय जीवन।

है विद्या और जन्म धन्य धरती पै तिनको।
पराधीनता माहिं कटत नहिं जीवन जिनको॥
कर्म पवित्र विचारन के जिनके अति सुन्दर।
सरल सत्य सों मिली निपुनता के जो आकर॥१॥
बुरी वासना मन में जिनके कबहु न आवत।
रूप भयङ्कर धारि मृत्यु नहिं जिनहिं डरावत॥
जगज्जाल में बँधे करत नहिं यत्न हजारन,
गुप्त प्रकट निज नाम सदा विस्तारन कारन॥२॥

जिनहिं ईरषा होति नाहिं पर-उन्नति देखे।
चाटुकारि अनजान वस्तु है जिनके लेखे॥
राजनीति को तत्व करत नहिं चित आकरसन।
धर्मनीति के ऊपर जो वारत तन-मन-धन॥३॥
भयो कलङ्कित नाहिं कबहुँ जिनको यह जीवन।
विमल-विवेचक-बुद्धि विपति में विनति निकेतन॥
खुशामदी नहिं खायँ उड़ावैं जिनकी सम्पति।
औ शत्रुन कहँ पबल करत नहिं जिनकी अवनति॥४॥
परमेश्वर को भजन करत जो साँझ सबेरे।
हरि-सेवा को छाँड़ि चहैं नहि सुख बहुतेरे॥
धर्म-ग्रन्थ-अवलोकन में ९ो समय बितावत।
साधुन के सत्सङ्ग बैठि हरि-कथा चलावत॥५॥
नहि उन्नति की इच्छा औ नहिँ अवनति को डर।
आशा-बन्धन काटि भये निरद्वन्द्वी सो नर॥
वसुधा-शासन भूलि करत निज मन को शासन।
यद्यपि सो अति सुखी कहावत तऊ "अकिञ्चन"६॥

[२]

वानी हिन्दी, भाषन की महरानी।
चन्द, सूर, तुलसी से यामें, कवी भये लासानी॥
दीन मलीन कहत जो याको, हैं सो अति अज्ञानी।
या सम काव्य छन्द नहि देख्यौ, है दुनियां भर छानी॥
का गिनती उरदू बंगला की, भरे अँगरेजिहु पानी।
आजहुं याको सब जग बोलत, गोरे, तुरुक, जपानी॥
है भारत की भाषा निहचय, हिन्दी हिन्दुस्थानी।
जगन्नाथ हिन्दी भाषा को, है सेवक अभिमानी॥

[३]

स्वदेश-प्रेम।

(स्काट के LOVE OF COUNTRY का उल्था।)

है ऐसो कोउ मनुज अधम जीवित जग माहीं।
जाके मुख सों वचन कबहुं निकस्यो यह नाहीं॥

"जन्मभूमि अभिराम यही है मेरी प्यारी।
वारौ जापै तीन लोक की सम्पत सारी॥"

सात समुद्दर पार विदेसन सों करि विचरन।
भयो नाहि घर चलन समय हरखित जाको मन॥

जौ ऐसौ कोउ होय वेगही ताको देखौ।
भली भांति सों वाके सब लच्छन को पेखौ॥

चाहे पदवी वाकी होय बहुत ही भारी।
वाको नाम बड़ो कर जाने दुनियां सारी॥

इच्छा के अनुकूल होय वाको अगनित धन।
कविता वाके हेत तऊ नहि करिहैं कविगन॥

केवल स्वारथपन ही में सब समय गँवायौ।
मन स्वदेश हित साधन में कबहूं न लगायौ॥

धरी रहत सब धन, बल, पदवी, एक किनारे।
सिर पै, जमके आय बजत हैं जबहि नगारे॥

सुठि सुन्दर सुख्याति नांहि जीवन मे पैहै।
जा माटी तें बनो फेरि वा में मिलि जै है॥

सुमरन, सोक, सुकाव्य मरे पै कोउ न करिहै।
करमहीन हत भाग मौत दुहरी सो मरिहै॥

[४]

शरद्वर्णन।

सरद समागम होत ही, फूले कास कपास।
घन गर्ज्जन वर्ज्जन भयौ, निर्ज्जल अमल अकास ॥१॥
निमल नीर नदियन बहै, सरवर कमल खिलन्त।
विकसीं कैरव की कलीं, निरखि चन्द निज कन्त ॥२॥
चक्रवाक चातक सुआ, कोकिल मंजु मराल।
चहकत चहुं दिसि चाव सो, जानि सरद यहि काल ॥३॥
दिव्य दिवाकर दिधित सों, दीपित दसो दिसान।
नूतन किसलय अरु लता, भासित स्वर्न समान ॥ ४ ॥
पंक रहित पृथ्वी भई, सरितन सलिल समान।
निज निज प्यारी सो मिलन, पथिकन कीन्ह पयान ॥ ५ ॥
खंजन मन रंजन करन, गंजन मृग चख मान।
आवत गुंजन कों चुगत, चंचलता की खान ॥ ६ ॥
मन्द मन्द मारुत चलै, सीतल सुखद महान।
खेतन मे झूमत खड़े, धानन के बिरवान ॥ ७ ॥
हरे हरे कोऊ पके, झुके सबै फल भार।
जगत पिता की करत हैं, विनती बान्ध कतार ॥ ८ ॥
सारदीय ससि की सुधा, बरसत चारो ओर।
करि दर्सन निज बन्धु कौ, प्रमुदित होत चकोर ॥ ९ ॥
कदम करौंदा केतकी, कुसुमित बेर मकोय।
निरखत ही तिलको सुमन, मन आनन्दित होय ॥ १० ॥
स्वच्छ सरद की सरसता, को करि सकै बखान।
सैनन मे समुझत मरम, जो हैं रसिक सुजान ॥ ११ ॥

[५]

राष्ट्र-संदेश ।

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देस ।
जो कुछ अपुनो है भलो, यही राष्ट्र संदेस ॥ १ ॥
जो हिन्दू हिन्दी तजें, बोलें इङ्गलिश जाय ।
उनकी बुद्धी पै पस्रो, निहचय पाथर आय ॥ २ ॥
जाको अपनी जाति कौ, नहिं नेकहु अभिमान ।
कूकर सम डोलत फिरे, सो तो वृथा जहान ॥ ३ ॥
कुल कुपूत करनी निरखि, धरनी के उर दाह ।
धधकि उठत सोई कबहुं, ज्वाला गिरि की राह ॥ ४ ॥
निरखि कुचाल कुपूत की, धरनी धरत न धीर ।
नैनन निरझर सो झरत, याते तातो नीर ॥ ५ ॥
देशन मे भारत भलो, हिन्दी भाषन माहिं ।
जातिन में हिन्दू भली, और भली कछु नाहिं ॥ ६ ॥

[६]

वसन्त-वर्णन । (बेतुका छन्द)

शेष हुआ जाड़े का मौसम, आया है अब समय वसन्ती ।
मगन हुए सारे नर नारी, लता, वृक्ष, पशु, पक्षी कोमल ॥
सारी दुनिया मस्त हुई है, मानो सब ने छानी गहरी ।
हुआ प्रकृति का रूप निराला आहा ! क्या अच्छी है शोभा ॥
है आकाश स्वच्छ अति सुन्दर, सूरज भी अब तेज हुआ है ।
नहिं सरदी नहिं गरमी भारी, ओ हो क्या प्यारी हैं रातें ॥
बौरे आम अधिक सुखदायी, कुहू कुहू कोयल करती है ।
मन्द मन्द वायू है चलती, लिये गन्ध अति भीनी भीनी ॥

फूले सेमर ढाक विपिन में, है नहिं इनमें गन्ध तनिक भी।
पर केवल है रंगत अच्छी, नाम बड़े और दर्शन छोटे ॥
रूप देख आये बहु पक्षी, पर लौटे अपना मुंह लेकर।
इससे कवि कहता है भाई, जो कुछ चमके सो नहिं सोना ॥
गेंदा और गुलाब, गुलतुरी, हुए सकल इक साथ प्रफुल्लित।
गुंजत मधुकर मधु की खातिर, भूमि हुई गुलशन का टुकड़ा ॥
रहे वृक्ष जो लुण्डे मुण्डे, उनमें भी अब पत्ते निकले।

[७]

नया काम कुछ करना बाबा, नया काम कुछ करना।
दूध दही घृत मक्खन छोड़ो, चरबी पर चित धरना ॥बाबा०॥
गो-सेवा को दूर भगावो, पालो घोड़े कुत्ते।
भगतिनियो की पूजा करके पितरों को दो बुत्ते ॥ २ ॥
वेद शास्त्र का पढ़ना छोड़ो, छोड़ो सन्ध्या वन्दन।
बाम्हनपन की धाक जमाओ, खूब लगाकर चन्दन ॥ ३ ॥
दो सच्चों को झूठा करना, खाना नमक हलाली।
"कृषि गोरक्षा वाणिज्य' को छोड़ो, करो दलाली ॥ ४ ॥
कन्या को वर बूढ़ा ढूँढ़ो, युवती को वर छोटा।
विधवाओ का ब्याह कराओ मार मार कर सोटा ॥ ५ ॥
जो न बने कुछ तुमसे भाई, पीटो पकड़ लुगाई।
अथवा नाचो ताक धिनाधिन, सिर पर उसे बिठाई ॥ ६ ॥

[८]

राष्ट्र-संदेश ।

जिस हिन्दू को है नहीं, हिन्दी का अनुराग।
निश्चय उसके जान लो, फूट गये हैं भाग ॥ १ ॥
जिसको प्यारी है नहीं, निज भाषा निज देश।
वह सूकर सा डोलता, धरे मनुज का भेष ॥ २ ॥

कामता-प्रसाद गुरु



पंडित कामताप्रसाद गुरु का जन्म सं० १९३२ के पौष में सागर ज़िले के गढ़पहरा गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित गंगा-प्रसाद गुरु था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। यद्यपि ये पांडेय हैं, तथापि बहुत से लोगों को दीक्षा देते रहने से वंशानुक्रम से ये गुरु ही कहलाते हैं। इनके पूर्वज उत्तर भारत से जाकर गढ़पहरा में बस गये थे। तबसे वे वहीं रहने लगे। गुरु जी की शिक्षा सागर में ही हुई। सन् १८९२ में १७ वर्ष की अवस्था में इन्होंने एंट्रेंस पास किया। तबसे अबतक ये शिक्षक का कार्य्य कर रहे हैं आजकल जबलपुर के नार्मल स्कूल में शिक्षक हैं। स्कूल छोड़ने के बाद ही इनकी रुचि समाचार-पत्रों की ओर हुई। ये पत्रों में समय समय लेख और कवितायें भेजने लगे सन् १८९५ से ये पुस्तकें लिखने लगे। पहले ये ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे, आजकल खड़ी बोली के अच्छे कवियों में इनकी गणना है। इनके लेख और कवितायें सरस्वती में प्रायः निकला करती हैं। हिन्दी व्याकरण के ये अच्छे पंडित हैं। इनका लिखा हुआ हिन्दी का एक बड़ा व्याकरण ग्रंथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है। ये संस्कृत, मराठी, बँगला, उड़िया और उर्दू भी जानते हैं। उड़िया की

एक पुस्तक के आधार पर इन्होंने हिन्दी में "पार्वती और यशोदा" नाम की पुस्तक लिखी है ।

गुरु जी की रहन-सहन बहुत सादी है । आडंबर इन्हें पसंद नहीं । ये बड़े सुशील और स्पष्टवक्ता हैं ।

इनकी कविता का एक उदाहरण नीचे प्रकाशित किया जाता है:—

सहगमन

छूटने पाया न कङ्कण व्याह का ।
आगया आदेश विक्रम शाह का ॥
शीघ्र ही जयसिंह जाओ युद्ध पर ।
देशहित के हेतु सर्वस त्याग कर ॥१॥
पास पत्नी के गये ठाकुर तभी ।
और उसको पत्र दे बोले अभी ॥
शीघ्र ही फिर भेंट कर उसको हिये ।
हट गये झटपट निकलने के लिये ॥
देवकी ने धीर अपना खो दिया ।
प्राणपति से झट लिपट कर रो दिया ॥
पर अचानक भाव उसका फिर गया ।
मोह का परदा हृदय से गिर गया ॥
प्रेम से उसने सुना पति का कहा ।
खेद पति के चित्त का जाता रहा ॥
किन्तु आई जब बिछुड़ने की घड़ी ।
गाज सी दोनो मनो पर आ पड़ी ॥
मोह का सङ्केत फिर कर अनसुना ।
धर्म का कर्तव्य दोनो ने गुना ॥

देवकी ने शीघ्र रण-कङ्कण दिया।
    बाँध उसको हाथ में पति ने लिया॥
चिन्ह दोनो साथ ले उत्साह में।
    जा रहे जयसिंह है रन चाह में॥
सुध प्रिया की मार्ग में आती रही।
    किन्तु रन-मैदान में जाती रही॥
युद्ध में तो और ही कुछ ध्यान है।
    पूर्ण हिय में देश का अभिमान है॥
प्राण है क्या देश के हित के लिये।
    देश खो कर जो जिये तो क्या जिये!
मग्न हैं जयसिंह रन के चाव में।
    ला रहे हैं शत्रु को निज दाव में॥
घाटियाँ, मैदान, पर्वत खाइयाँ।
    सब कहीं है सूरमा औ दाइयाँ॥
रात-दिन है अग्नि-वर्षा हो रही।
    रात-दिन है पूर्ण लोथों से मही॥
व्योम जल थल सब कहीं है रन मचा।
    युद्ध के फल से नहीं कोई बचा॥
एक दिन जयसिंह धावा मार कर।
    दल सहित जब आ रहे थे केन्द्र पर॥
एक दाई घायलों के बीच में।
    दिख पड़ी सोती रुधिर की कीच में॥
ध्यान से जयसिंह ने उसको लखा।
    और फिर उसके हृदय पर कर रखा॥
हो विकल उसको जगाने वे लगे।
    मर चुकी थी वह भला अब क्यों जगे॥

घायलों की वीर सेवा में लगी।
और फिर प्रिय ध्यान में पति के पगी॥
गोलियों से शत्रु के भागी न थी।
चोट घातक पाय वह जागी न थी॥
शोक में जयसिंह कुछ बोले नहीं।
थे जहाँ बैठे रहे बैठे वहीं॥
दुःख में अब घोर चिन्ता छा गई।
प्रियतमा कैसे यहाँ अब आ गई॥
आ गये उस काल सेनापति वहाँ।
वीर नारी की लखी शुभ गति वहाँ॥
वीर होकर भी हुई उनको व्यथा।
आदि से कहने लगे उसकी कथा॥
दाइयाँ कुछ आपके दल के लिये।
कुछ समय पहिले मुझे थीं चाहिये॥
की गई इसकी प्रकाशित सूचना।
देवकी ने शीघ्र भेजी प्रार्थना॥
दाइयों में इस तरह भरती हुई।
अन्त लों निज काज यह करती हुई॥
शत्रु के अन्याय से मारी गई।
पायगा फल दुष्टता का निर्दई॥
हाल सुन जयसिंह का दुख बढ़ गया।
शत्रु पर अब क्रोध उनको चढ़ गया॥
सौंप कर प्रिय देह सेनापति-निकट।
प्रण किया सब से उन्होंने यह विकट॥
भस्म जब मैं कर चुकूँगा रिपु-नगर।
तब पड़ेगी अग्नि इस प्रिय देह पर॥

और जो मैं ही मरूँ रिपु हाथ में ।
फूंकना मुझको प्रिया के साथ में ॥
दूसरे दिन व्योम से जलता हुआ ।
पर कटे खगराज सा चलता हुआ ॥
केन्द्र से कुछ दूर रव करके बड़ा ।
युद्ध का नभ-यान आकर गिर पड़ा ॥
नष्ट पुर को यान ने था कर लिया ।
मार्ग रक्षित केन्द्र का था धर लिया ॥
किन्तु रिपु का क्रुद्ध गोला चल उठा ।
और उसकी आग से यह जल उठा ॥
पर दिया था बुझ चुका यह आग से ।
या बुझे उस द्वीप के अनुराग से ॥
प्रेम-बन्धन जन्म लय का सार है ।
प्रेम-बन्धन देश का उद्धार है ॥
प्रेम-बन्धन देवकी जयसिंह का ।
तोप से भी रिपु न खण्डित कर सका ॥

रामचरित उपाध्याय



इस संसार में उसी मनुष्य का जन्म लेना सार्थक है कि जो अपने तन मन वचन से संसार का उपकार करते हुए अपनी जीवन-यात्रा निर्वाहित करता है। संसार में मानव-जन्म बहुत दुर्लभ है। इस जन्म को पाकर जो मनुष्य इसे शास्त्र की शिक्षा और लोकोपकार में व्यतीत करता है वह धन्य है।

हमारे चरितनायक श्री पण्डित रामचरित जी उपाध्याय ऐसे ही सदाशय पुरुषों में हैं। हिन्दी की आधुनिक कविता पढ़ने वाले बहुत दिनों से आपके नाम से परिचित है। आज हम आप लोगों को सविशेष रूप से आपका कुल परिचय देते है। आशा है कि आपका परिचय आप लोगों को आनन्द और उपदेश का हेतु होगा।

आपका जन्म एक विद्वान सरयूपारीण ब्राह्मण वंश में विक्रम संवत् १६२६ कार्तिक कृष्ण चतुर्थी रविवार को गाज़ीपुर में हुआ था। आपके पिता एक बड़े विद्वान व्यक्ति थे। उन्होंने लड़कपन में ही हमारे चरितनायक को अक्षर बोध कराकर संस्कृत व्याकरण से परिचित करा दिया था परन्तु विक्रम संवत् १६४४ मे आपके पूज्य पिता का वैकुण्ठवास हो गया, तब से पण्डित रामचरित जी उपाध्याय अपने पूर्व

पुरुषों की जन्मभूमि महाराजपुर (आजमगढ़) में सकुटुम्ब आ रहे और वहाँ तथा बरेली में अपने भ्राता पण्डित महादेव शास्त्री जी से आप संस्कृत के विविध ग्रन्थों को पढ़ते रहे। सन् १८९० ई० में उपाध्याय जी काशी में आये और वहीं अशेष शास्त्राध्याय महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी के गृह पर रह कर तीन चार वर्षों तक विद्याध्ययन करते रहे। आपकी बुद्धि विलक्षण थी इससे व्याकरण और साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान सहजही हो गया, गुरु-भक्त होने से गुरु की भी आप पर बड़ी कृपा रहती थी।

इतने ही में इटावे के एक रईस ब्राह्मण के पुत्र को पढ़ाने के लिए अपने गुरुवर की आज्ञा से उपाध्याय जी काशी छोड़ कर वहाँ अध्ययन कार्य करने लगे और प्रायः ढाई तीन वर्षों तक उस कार्य को उत्तम रीति से करते रहे, इसके बाद फिर काशी चले आये और आकर ज्योतिषाचार्य्य पण्डित दीना-नाथ मिश्र जी की कृपा से आपने उसी वर्ष गणित की मध्यम परीक्षा पास की, जिस वर्ष कि कर्जनी दिल्ली दरबार हुआ था। तत्पश्चात् आपने आचार्य के भी दो खण्ड पास किये, सन् १९०३ ई० में काशी से अपने घर चले आये और वहीं पर रह कर जमींदारी तथा कृषि-कार्य को करने लगे।

पण्डित रामचरित त्रिपाठी नामक एक कवि आपके ज़िले मे थे। उन्हीं की देखादेखी और नाम की ललना से हिन्दी की कविता करने की आपकी भी अभिरुचि हुई, और अपने पहले समय में होली, कजली, चैती इत्यादिक पुराने ढंग की कविता लिखते रहे। उन दिनों सन् १९०६ ई० तक आपने "विजयी बसन्त" "श्रावण-शृङ्गार" "सुधा-शतक" "राम चरितावली" "बरवा चौसई" "सिनेह चौसई" इत्यादि

कई पुरानी चाल के काव्य लिखे। इनके अतिरिक्त संस्कृत के "घटकर्पर" काव्य की भाषा-टीका भी आपने लिख दी। कालान्तर से खड़ी बोली की कविता की ओर लोगों की रुचि देख कर इस ओर भी आपका ध्यान झुका, सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में आपकी अनेक मनोरञ्जक और उपदेशप्रद कवितायें प्रकाशित होने लगीं। अब तक बराबर आप अपनी मनोहर, अनूठी कविताओं के द्वारा हिन्दी के पाठकों का उपकार किया करते हैं। "सूक्तिमुक्तावली" "देवदूत" "रामचरित चन्द्रिका" "रामचरित चिन्तामणि" "देवी द्रौपदी" "उपदेश-रत्नमाला" "मेघदूत" "विचित्र विवाह" नामक आठ कविता पुस्तकें आपने अब तक खड़ी बोली में भी तैयार की हैं और इस समय "भारतीय रत्नाकर" लिख रहे हैं।

आपकी कविता अकृत्रिम भावमयी होती है। आप चूँकि संस्कृत काव्यो के ज्ञाता हैं इस कारण आपकी कविता में कहीं कहीं उनकी छटा भी दिखाई दे जाती है जिससे आप की कविता की मनोहरता और भी बढ़ जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी के वर्तमान सत्कवियों में आप भी बहुत अच्छा स्थान रखते हैं।

पण्डित रामचरित जी उपाध्याय का गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त ही सादा है, आप इतने ऊँचे पण्डित होने पर भी बड़ा सादा कृषक जीवन बहुकाल तक व्यतीत करके अब पतितपावनी भागीरथी की गोद में बैठने की इच्छा से गाजीपुर में निवास करते हैं। और अपनी जमींदारी तथा कृषि को अपने भाइयों की आन्तरिक इच्छा की पूर्ति के लिए गृह का परित्याग कर बैठे। सब के साथ सदा सच्चा सद्व्यवहार करना और देशोपकार करना उपाध्याय जी का

परम ध्येय है। आपकी धर्मपत्नी बड़ी सुशीला और गार्हस्थ्य जीवन में उत्तम प्रकार से आपका साथ देती थीं, किन्तु बड़े दुःख की बात है कि मार्च १९१३ में उन्होंने आपका साथ चिरकाल के लिए छोड़ दिया, आपके एक पुत्री और एक पुत्र है।

निदान उपाध्याय जी का चरित देखते हुये हमें कहना पड़ता है कि आपका जीवन बहुत ही पवित्र और अनुकरणीय है। आपने गाज़ीपुर में एक संस्कृत पाठशाला और सनातन धर्म सभा की भी स्थापना की है, उस सभा के साथ साथ एक हिन्दी पुस्तकालय भी चल रहा है, आप में धैर्य, क्षमा, वाक्पटुता, विद्याविलासिता, परोपकारिता, निर्भीकता, स्वतन्त्रता, आदि सत्पुरुषो के स्वाभाविक गुण विद्यमान हैं। परमात्मा उत्तरोत्तर आपके द्वारा लोक-कल्याण और विद्या-प्रचार करावे, यही प्रार्थना है।

आपकी कविताओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

[१]

देव-दूत।

किसे नहीं भयदायक होगा, भारत तेरा रूप विराट।
तू सब देशों का शिक्षक है तू सब देशों का सम्राट्॥
तीस कोटि मुख साठ कोटि कर कभी किसी को मिले कहीं?
सुधा सरोवर, तुझे छोड़ कर वेद कमल क्या खिले कहीं?
कल्पवृक्ष सा पनप रहा है, प्रकटित भी होंगे फल फूल।
धर्ममूल, दृढ़ रह, अपने को सपने में भी कभी न भूल॥
मर्यादा-सागर नागर है गुण-रत्नो से मण्डित है।
कृष्ण केसरी तू भू पर है दानी, मानी, पण्डित है॥

भारत यदपि पुराना तू है किन्तु हुआ है वृद्ध नहीं ।
कौन कार्य है कठिन जिसे तू, कर सकता है सिद्ध नहीं॥
पर तू अपने वर विक्रम को, सत्साहस को भूल गया ।
दास वृत्ति को सुखद समझकर, हा निर्लज्ज हो फूल गया॥
अहिपति खगपति मृगपति सा हो, क्यों भारत तू रोता है ।
हो जा खड़ा वड़ा सुख होगा, पड़ा पड़ा क्यों सोता है॥
कौन वस्तु है ऐसी जग में, जो है तेरे पास नहीं ।
हो कटिबद्ध काम कर अपना कहीं किसी का तास नहीं॥

[२]

लक्ष्मी-लीला ।

श्रीपति ने गोसेवा की है, वही बुद्धि लक्ष्मी की भी है ।
नर-पशु की सेवा करती है, विज्ञो से सुदूर रहती है॥ १॥
धनी-गेह में श्री जाती है, कभी न जाती निर्धन-घर में ।
वारिधि में गंगा गिरती है, कभी न गिरती सूखे सर में॥ २॥
जिनके घर लक्ष्मी रहती है, वे नर अविचारी होते हैं ।
लक्ष्मीपति को क्या कमती है, पर वे पन्नग पर सोते हैं॥ ३॥
उद्यम-हीन आलसी जो नर, रमा न रहती है उसके घर ।
जैसे तरुणी वूढ़े वर से, प्रेम नहीं करती है उर से॥ ४॥
स्त्री की मति उलटी होती है, उभय कुलों को वह खोती है ।
वारिधि सुता विष्णु की जाया, उस श्री के मन शठ नर भाया

[३]

कुसङ्ग ।

अति खल की सङ्गति करने से, जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के सँग में पड़ने से, घन की मार अनल सहता है॥ १॥

सबसे नीतिशास्त्र कहता है, दुष्ट-सङ्ग दुख का दाता है।
जिस पय में पानी रहता है, वही खूब औंटा जाता है ॥ २ ॥
उनके प्राण नहीं बचते हैं, जिनको दुर्जन अपनाते हैं।
जो गेहूं के सँग रहते है, वे ही घुन पीसे जाते है ॥ ३ ॥
जहाँ एक भी दुष्ट रहेगा, वह समाज क्यों चल पावेगा।
जहां तनिक भी अम्ल पड़ेगा, मनो दूध भी फट जावेगा ॥ ४ ॥

[४]

सपूत ।

चन्दन, चन्द, उशीर, हिमोपल, हिम-रजनी भी और कपूर।
ये सब मिलकर भी न करेंगे, मानव-हृदय-ताप को दूर ॥
पर सपूत जिस कुल में होगा उसका समय आपही आप।
पलट जायगा, यश फैलेगा, मिट जावेगा सब सन्ताप ॥ १ ॥
विमल चित्त हो, दानशील हो, शूरवीर हो, सरल-विचार।
सत्य-वचन हो प्रेमयुक्त हो, करे सभी से सम व्यवहार ॥
ज्ञानी, सहृदय, हो उपकारी और गुणी हो, अपना धर्म।
कभी न छोड़े, देशभक्त हो, ये सब सत्पुत्रों के कर्म ॥ २ ॥

[५]

कपूत ।

आलस-रत शोकातुर, लम्पट, कपटी और सदा बलहीन।
मानस-मलिन, सदा निद्रातुर, लोभी और अकारण दीन ॥
ऐसे सुत से क्या फल होगा ? हे चतुरानन दे वरदान।
कभी कपूत किसी को मत दे, चाहे करदे निस्सन्तान ॥१॥
पर से प्रेम द्रोह अपने से, करते नित्य दुष्ट-गुण-गान।
गुरुजन की निन्दा कर हँसते, अपने को कहते गुणवान ॥

काला अक्षर भैंस बराबर, पर तो भी रखते अभिमान।
क्रोधानल में जलते रहते, यही कपूतों की पहचान ॥२॥

[६]

याचक ।

"मुझे दीजिये कुछ" यों कह जब याचक कर फैलाता है।
तभी शरीर काँपने लगता उसका स्वर घट जाता है॥
उसी समय उसके शरीर से ये पाँचो हट जाते हैं।
ज्ञान, तेज, बल और मान, यश, अधम प्राण रह जाते हैं ॥१॥

[७]

वीर-वचनावली ।

निज बल से बलि के बन्धन को तोड़ न सका पैठि पाताल;
शशि-कलङ्क मैंने नहिं मेटा, मेरे हाथों मरा न काल ।
शेष-शीस से धरा छीन कर, ले न सका सिर उसका भार;
शत्रु-शमन कर सका न अपना, लाख बार मुझको धिक्कार ॥१॥
खाकर जिसे उगल देते हैं फिर उसको ही खाते श्वान;
छोड़ दिया है जिसे उसे फिर, छूते नहीं कभी मतिमान।
प्राणों ही के साथ सर्वदा प्रण भी उनका जाता है;
शीतल कभी न होता पावक, बुझ ज़रूर वह जाता है ॥ २ ॥
खा कर लात शान्त जो रहते साधु नहीं वे पूरे मूढ़;
मारो लात धूलि पर देखो, हो जावेगी सिर-आरूढ़ ।
रिपु से बदला लिये विना ही कायर नर रह जाते हैं;
तेजस्वी जन उसके सिर पर पद रख यश फैलाते हैं ॥ ३ ॥

[८]

विधि-विडम्बना ।

सरसता-सरिता-जयिनी जहाँ,
नवनवा नवनीत-पदावली ।

तदपि हा ! वह भाग्य-विहीन की,
सुकविता कवि-ताप-करी हुई ॥ १ ॥
जनम से पहले विधि ने दिये,
रजत, राज्य, रथादि तुम्हें स्वयं।
तदपि क्यों उसको न सराहते,
मचलते चलते तुम हो वृथा ॥ २ ॥
पतन निश्चित है जिसका हुआ,
हठ उसे प्रिय है निज देह से।
अटल है उसकी विधि-वामता,
विनय से नय से घटती नहीं ॥ ३ ॥
तनिक चिन्तित हो मत तू कभी,
मिट नहीं सकती भवितव्यता।
सुकृत रक्षक है सब का सदा,
भवन में बन मे मन ! मान जा ॥ ४ ॥
महिमता जिसकी अवलोक के,
अनिश निन्दक है खल-मण्डली।
सुयश क्या उसका जग में नहीं,
धवल है ? बल है यदि दैव का ॥ ५ ॥
हृदय ! सुस्थिर होकर देख तू,
नियति का बल केवल है जिसे।
कठिन कण्टक मार्ग उसे सदा,
सुगम है गम है करना वृथा ॥ ६ ॥
दुखित हैं धन-हीन, धनी, सुखी,
यह विचार परिष्कृत है यदि।
मन ! युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई ?
विभवता भव-ताप-विधायिनी ॥ ७ ॥

शत-सहस्र-गुणान्वित हैं यहाँ,
विविध शास्त्र-विशारद हैं पड़े ।
हृदय ! क्यों उनमें फिर एक दो,
सुकृत से कृत-सेवक लोक हैं ॥ ८ ॥
जनन का मरना परिणाम है,
मरण हो न मिले फिर देह क्यों ।
मन ! बली विधि की करतूत से,
पतन का तन का चिर सङ्ग है ॥ ९ ॥
मन ! रमा, रमणी, रमणीयता,
मिल गईं यदि ये विधि-योग से ।
पर जिसे न मिली कविता सुधा,
रसिकता सिकता-सम है उसे ॥ १० ॥
अयश है मिलना अपभाग्य से,
तदपि तू डर कुत्सित कर्म से ।
हृदय ! देख कलङ्कित विश्व मे,
विबुध भी बुध भी विधु से हुये ॥ ११ ॥
स्मरण तू रखना गत शोक हो,
मरण निश्चित है, मन ! दैव के—
नियम से यम के वन जायँगे,
कवल ही बल-हीन बली सभी ॥ १२ ॥
अमर हो तुम जीव ! सहर्ष हो,
कमर बांध सहो निज भाग्य को ।
समर है करना पर काल से,
दम नहीं मन ही मन में भरो ॥ १३ ॥
सुविधि से विधि से यदि है मिली,
रसवती सरसीव सरस्वती ।

मन! तदा तुझको अमरत्वदा,
नव-सुधा वसुधा पर ही मिली ॥ १४ ॥
चतुर है चतुरानन सा वही,
सुभग-भाग्य-विभूषित-भाल है।
मन! जिसे मन मे पर काव्य की,
रुचिरता चिरताप-करी न हो ॥ १५ ॥

[६]

पूर्व-स्मृति।

हर्म्ये सा स्वकरेण शुभ्रवसना, वेनी रही बांधती।
औत्सुक्यातिशयेन हा मम सखे, जी भी वहीं जा बंधा ॥
दृष्टोऽहं च यदा तया दयितया, मेरी दशा जो हुई।
ज्ञास्यत्येव हि तां स यस्य हृदये, होगी कटारी लगी ॥ १ ॥
मैं था देख रहा छटा जलद की, बैठा हुआ बाग़ मे।
काचित् चन्द्रमुखी पुरो मम सखे! तत्र भ्रमन्त्यागता ॥
धीरे से मुझको कुछेक हँस के, उसने इशारा किया।
स्मृत्वा तां हृदये स्फुरत्यपि कथं प्राणा न गच्छन्ति धिक् ॥ २ ॥
बातें थीं करती सखी सँग मुझे, तो भी रही देखती।
गत्वा सा कतिचित् पदानि सुमुखी, धीरे खड़ी हो गई ॥
जाने क्यों हँसती चली फिर गई, क्या मोहिनी मूर्ति थी।
स्वप्ने साद्य न दृश्यते क्षणमहो, हा, राम! मैं क्या करूँ ॥ ३ ॥

[१०]

पहेली।

ऐनक दिये तने रहते है अपने मन साहब बनते हैं।
उनका मन औरों के काबू, क्यों सखि सज्जन?
नहिं सखि बाबू ॥१॥

जाड़ों के दिन में आता है, रोज हज़ारों को खाता है ।
क्या अनुपम है उसका वेग, क्यों सखि राक्षस ?
नहिं सखि प्लेग ॥ २ ॥
ठठरी उसकी बच जाती है जिसको हा वह धर पाती है ।
छुड़ा न सकते उसे हकीम, क्यों सखि डाइन ?
नहीं अफीम ॥ ३ ॥
धर्म-हेतु तन को धरते हैं, कभी न निज प्रण से टरते हैं ।
पर-हित में देते हैं तन मन, क्यों सखि ईश्वर ?
नहिं सखि सज्जन ॥ ४ ॥
पर-गुण को गाते रहते हैं; दोष किसी का नहिं कहते हैं ।
निज कुल को करते हैं मण्डित, क्यों सखि सुर-गण ?
नहि सखि पण्डित ॥ ५ ॥

[११]

अङ्गद और रावण ।

(रामचरित चिन्तामणि से) ।

अङ्गद

मम निवेदन है कुछ आपसे,
सुन उसे उर मे धर लीजिये ।
ग्रहण है करता जिस युक्ति से,
मधुप सारस-सार सहर्ष हो ॥१॥
जनकजा रघुनायक हाथ में,
तुरत जाकर अर्पण कीजिये ।
पर-वधू-जन से रहते सदा,
अलग सन्तत सन्त तनीचर ! ॥२॥

कुशल से रहना यदि है तुम्हें;
दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिये।
शरण में गिरिये रघुनाथ के,
निबल के बल केवल राम हैं ॥३॥
दुखद है तुमको जनकात्मजा;
तुरत दूर उसे कर दीजिये।
सुखद हो सकती न उलूक को,
नय-विशारद ! शारद चन्द्रिका ॥४॥
बहुत बार हुये विजयी सही;
पर नहीं रहते दिन एक से।
सम्हल के रहिये, अब आपकी,
ग्रह-दशा न दशानन ! है भली ॥५॥
स्वकुल की करिये शुभ-कामना;
सपदि युक्ति वही नृप ! सोचिये।
न अब भी जिसमे करना पड़े,
कठिन सङ्गर सङ्ग रमेश के ॥६॥
स्वमन को वश में रखिये सदा;
अनय से पर-वस्तु न लीजिये।
नृप ! कभी सुखदायक हैं नहीं,
सुत रमा, धन साधन के बिना ॥७॥
समय है अनमोल, कुकर्म में,
तुम विनष्ट करो उसको नहीं।
दनुज ! है जगमें सुखदायिनी,
नियम-हीन मही न महीप को ॥८॥
परम वीर चढे रघुवीर हैं,
तव पुरी पर वारिधि बाँध के।

क्षितिप ! आकर के रिपु राज्य में,
तनिक भीरु कभी सकते नहीं ॥६॥
कवि, गुणी, बुध, वीर, नयज्ञ भी,
समझिये मन में निज को स्वयम् ।
पर बिना कुछ कार्य्य किये कभी,
न मन-मोदक मोद-कलाप है ॥ १० ॥
सब सुरासुर हैं वश आपके,
करगता यदि हों सब सिद्धियां ।
तदपि हे दनुजेश्वर ! जानना,
निज विनाशक नाशक राम को ॥ ११ ॥
अखिल-लोक नृपेश्वर राम को,
समझ के उनसे मिलिये अभी ।
यह पुरी रघुनाथ रणाग्नि में,
दनुज ! होम न हो, मन में डरो ॥ १२ ॥

रावण ।

सुन कपे ! यम, इन्द्र, कुवेर की,
न हिलती रसना मम सामने ।
तदपि आज मुझे करना पड़ा,
मनुज-सेवक से बकवाद भी ॥ १ ॥
यदि कपे ! मम राक्षस राज का,
स्तवन है तुझसे न किया गया ।
कुछ नहीं डर है—पर क्यों वृथा,
निलज ! मानव-मान बढ़ा रहा ॥ २ ॥
तनय होकर भी मम मित्र का,
शठ ! न आकर क्यों मुझसे मिला ?

उदर के वस हो किस भाँति तू,
नर-सहायक हाय कपे! हुआ ॥ ३ ॥
बसन भोजन ले मुझसे सदा;
विचर तू सुख से मम राज्य में।
उस नृपात्मज के हित दे वृथा,
सुखद जीव न जीवन के लिये ॥ ४ ॥
तुम बिना करतूत बका करो;
वचन-वीर! सुनो हम वीर हैं।
रिपु-विनाशक यज्ञ किये बिना,
समर-पावक पा बकते नहीं ॥ ५ ॥
बल सुनाकर तू सठ! राम का,
पच मरे, पर मैं डरता नहीं।
झख भयातुर हो करके, बता,
कब तिरोहित रोहित से हुआ ॥ ६ ॥
कवल-दायक के गुण-गान में,
निरत तू रह बानर! सर्वदा।
समर है सुख-दायक सूर को;
कब रुचा रण चारण को भला? ॥ ७ ॥
जनकजा-हत चित्त हुआ सही,
तदपि तापस से कम मैं नहीं।
मधुर मोदक क्या पच जायगा,
कपि! सवा मन वामन-पेट में ॥ ८ ॥
लड़ नहीं सकता मुझसे कभी,
तनिक भी नृप बालक स्वप्न में।
कब, कहाँ, कह तो किसने लखा,
कपि! लवा रण वारण से भला ॥ ९ ॥

यह असम्भव है यदि राम भी,
समर सम्मुख रावण से करे।
कह कपे! उठ है सकती कभी;
यह रसा बक-शावक-चोंच से ॥ १० ॥
निलज हो वहको, निज-नाथ के—
सुयश-गान करो, कपि-जाति हो।
जगत में दिखला कर पेट को,
वचन-वीर! न वीर बना कभी ॥ ११ ॥
मम नहीं हित-साधक जो हुआ,
वह न हो सकता पर का कभी।
कपट रूप बना कर राम का,
कपि! विभीषण भीषण शत्रु है ॥ १२ ॥
मर मिटें रण मे, पर राम को,
हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपे जग में बस वीर के,
सुयश का रण कारण मुख्य है ॥ १३ ॥
चतुरता दिखला मत व्यर्थ तू;
रसिक हैं रण के हम जन्म से।
रुक नहीं सकते सुन के कभी,
वचन-वत्सल वत्स! लड़े विना ॥ १४ ॥

मिश्रबंधु

पंडित गणेश बिहारी मिश्र, पंडित श्याम बिहारी मिश्र और पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र हिन्दी-संसार में "मिश्रबन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हैं। मिश्रबंधु सहोदर बंधु हैं। साहित्य का जो कुछ निर्माण ये करते हैं उसमें तीनों भाई सम्मिलित रहते हैं। इनके ग्रन्थों में से कोई यह निर्णय नहीं कर सकता कि कौनसी रचना किसकी है। यहाँ तक कि कभी कभी एक एक दोहा, सवैया और कविता की रचना भी सब मिल कर करते हैं। इसीसे यह सोचकर कि जब उनकी सम्पूर्ण साहित्य-रचना मिश्रित है तो मैं ही उनके जीवन-चरित को अलग अलग लिखने का अपराध क्यों करूँ सब की जीवनी एक साथ लिखी जा रही है।

मिश्रबन्धु कहने से यद्यपि मिश्रत्रय का ही बोध होता है, किन्तु ये चार भाई थे। बड़े भाई पंडित शिवबिहारी लाल का जन्म सं० १९१७ में हुआ था, वे वकालत करते थे। कवि भी थे, किन्तु अब उनका देहान्त हो चुका है। मिश्रबन्धु शब्द से तीन भाई ही अमर हैं।

मिश्रबन्धु के पिता पंडित बालदत्त मिश्र प्रसिद्ध महाजन जमींदार और कवि थे। उन्होने बाल्यावस्था में हिन्दी और

संस्कृत पढ़ी, और व्यापार-पटुता से बहुत धन और ज़मींदारी प्राप्त की।

पंडित गणेश विहारी मिश्र का जन्म माघ कृ० ४ सं० १९२२ में हुआ। बाल्यावस्था में इनको हिन्दी संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा मिली। सं० १९४६ में अपने पूज्य पिता जी की अस्वस्थता के कारण इन्होंने गृहस्थी सँभालने का भार अपने ऊपर लिया। तब से ये अपना अधिकांश समय गृह-प्रबंध ही में व्यतीत करते हैं।

इनके क्रमशः दो विवाह हुये थे। अब दोनों का देहान्त हो चुका है। उनसे दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र पंडित राजकिशोर मिश्र अमेरिका से इंजिनियरी का काम सीख कर आये हैं और बम्बई में काम करते हैं। दूसरे पुत्र का नाम पंडित प्रतापनारायण है।

ये लखनऊ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के २०-२२ वर्ष से मेम्बर थे। आजकल वाइस चेयरमेन हैं।

कविता का शौक इन्हें बाल्यावस्था से ही है।

पंडित श्यामविहारी मिश्र का जन्म भादों वदी ४ सं० १९३० में इँटौजे में हुआ। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ना आरंभ कराया गया। पहले उर्दू की शिक्षा दी गई, हिन्दी इन्होने अपने साथियों की संगति से सीख ली। धीरे धीरे उसमें इन्होंने यहाँ तक उन्नति कर ली कि ये हिन्दी के अच्छे कवि और लेखक हो गये। १५-१६ वर्ष की अवस्था से ही ये हिन्दी कविता लिखने लग गये थे। बारह वर्ष की अवस्था होने पर इन्होंने अँग्रेज़ी पढ़ना आरंभ किया। सन् १८९१ में इंट्रेंस और सन् १८९५ में बी० ए० की परीक्षा इन्होंने पास

की, इस परीक्षा में इनका नम्बर अवध में पहला आया और अँग्रेज़ी में आनर्स प्राप्त हुये । इसके लिये इन्हें दो स्वर्ण पदक मिले और इनका नाम कालेज के हाल में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया । १८६६ में इन्होंने एम० ए० परीक्षा पास की, १८६७ में ये डिप्टी कलक्टर हुये और १६०६ में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस, इसके पश्चात् ये छत्रपुर में दीवान होकर चले गये । छत्रपुर में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । दो बार ये अस्थायी कलक्टर भी रहे । छत्रपुर में १६१३ तक थे । इसके बाद आबकारी के पर्सनल असिस्टेंट कमिश्नर हुये । आजकल गोंडा के डिप्टी-कमिश्नर हैं ।

इनका विवाह ११ वर्ष की अवस्था में हुआ । इनके ज्येष्ठ पुत्र का जन्म १८६६ में हुआ । १६०७ में उसका शरीरांत भी हो गया । इस पुत्र के वियोग से मिश्र जी को बहुत ही शोक हुआ । दूसरे पुत्र आदित्य प्रकाश का जन्म १६०४ में हुआ । तीसरे पुत्र का नाम आवाल प्रकाश है ।

सं० १६५६ में सरस्वती पत्रिका निकली, तभी से ये गद्य लेख लिखने लगे । इनका पहला गद्य-लेख हमीर-हठ की समालोचना विषयक था, जो सरस्वती के प्रथम भाग में छपा है ।

पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र का जन्म सं० १६३५ में इंटौजा में हुआ । वाल्यावस्था में इन्होंने भी उर्दू ही पढ़ना प्रारंभ किया । सं० १६४६ में ये लखनऊ जाकर अँग्रेज़ी पढ़ने लगे । सं० १६५७ में इन्होने बी० ए० पास किया । सं० १६५८ में हाईकोर्ट वकील की परीक्षा पास की । सं० १६६४ में ये मुंसिफ होकर बिलग्राम गये । कुछ दिनों तक सीतापुर में भी मुंसिफ रहे ।

सीतापुर से सं० १९७१ में छतपुर के दीवान होकर चले गये। गत वर्ष तक छत्रपुर में रहे। २२ अप्रेल १९१९ में सब-जज हुये। तीनों भाइयों का आपस में बड़ा प्रेम है। सभी बड़े सज्जन, मिलनसार, उदार और साहित्य-रसिक हैं। इनका कुटुम्ब सब प्रकार से सुखी है। धन, जन, रूप, विद्या, यश आदि सब विभवों से सुसम्पन्न है।

मिश्रबंधुओं ने बहुत सी पुस्तकों की रचना, समालोचना और सम्पादन किया है। उनमें से ख़ास ख़ास पुस्तकों के नाम ये हैं:—

मिश्रबंधुविनोद तीन भाग, लवकुश चरित, विक्टोरिया अष्टादशी, व्यय, भूषण ग्रन्थावली, जापान का इतिहास, रूस का इतिहास, हिन्दी नवरत्न, वीरमणि, नेत्रोन्मीलन नाटक, भारतविनय, आत्मशिक्षण, पुष्पांजलि, पूर्वभारत नाटक, भारतवर्ष का इतिहास, दो भाग, बूँदी वारीश। कुछ पुस्तकें अँग्रेज़ी में भी हैं।

यहाँ मिश्रबंधुओं की कविता के नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

चारु धर को सदा प्रान सों अधिक विचारौ।
प्रान तजन सों अधिक डरहु जब धरम न धारौ॥
करौ वचन प्रतिपाल जऊ निज सरबस हारौ।
कौनिहु विधि जनि झूठ वचन कहुँ भूलि उचारौ॥
पुनि धेनु वेद अरु विप्र को करहु मान सुन प्रान सम।
इनके पाले सब लोक हित सधैं सहित पावन धरम॥
करौ भरोसो सदा बाहुबल को पन धारी।
एक तेग को गुनौ जीविका साधन भारी॥

ज़ब लौं कर में रहै तेग हिम्मति जनि हारौ।
सरबस हू चलि गये न आपुहि निबल विचारौ॥
नित भूमि वीरपतिनी रही यहै मरम समुझहु सुवन।
जग राखि वीरता लाज तुम रन महि मैं मरदहु दुवन॥
एक निवल जनि हनौ वार सबलन पर घालौ।
सरनागत को सदा प्रान के सम प्रतिपालौ॥
तहीं वीरता साथ क्रूरता रंचहु धारौ।
क्रोध छोड़ि गुन धरम समर में सस्त्र प्रहारौ॥
पुनि प्रबल शत्रु सों अभिरि कै नासहु जन बहु मूल्य तन।
कहुँ टरि बचाय कहुँ जुगुति सों करो कुसलता सहित रन॥
धधकत अनल विलोकि सलभ सम जनि तनु जारौ।
यह मूरखता गुनौ वीरता नाहिं विचारौ॥
उचित समै जनि प्रान छोड़िबे सों मुख मोड़ो।
पै नाहक तजि प्रान जनम भूमिहि जनि छोड़ो॥
यहि जनम भूमि को मातु सम गुनो प्रीति भाजन परम।
सुत याको हित साधन सुनो एक परम पावन धरम॥
सब देसिन को सदा भ्रात गन सम सतकारौ।
सब ही को सम गुनौ जाति अरु पाँति विसारौ॥
जौ बाँभन गुन धरै ताहि बाँभन अनुमानौ।
ताही के हित किये देस मंगल थिर जानौ॥
करि मान एक गुन को सुवन अधम लोक चालन तजौ।
जनि औरन को कछु करत लखि अन्ध सरिस सोई भजौ॥
उचित गुनो जो चाल ताहि सन्तत सिर धारौ।
जनि समाज डर कहूँ रंच आचरन बिगारौ॥
दीन दुखी के सदा शूर बनि आड़े आवो।
दया करन में जाति पाँति को भाव भुलावो॥

विपदा हू में जनि बिचलि सिथिलित करौ विचार बर ।
जो थिर वर सम्मति पर रहै वहै बड़ो है वीर नर ॥
राज न सम्पति गुनौ राज गुरु भार विचारौ ।
सुख साधन गुनि राज सुवन जनि धरम बिसारौ ॥
आपुहि सेवक मात्र प्रजागन को अनुमानौ ।
परजा को हित परम धरम नृप को पहिचानौ ॥
जो परजा सों कर लै खरच निज हित में अनुचित करै ।
विस्वासघात को पाप लहि घोर नरक में सो परै ॥
सदा कान दे सुनहु प्रजा सम्मति गुनकारी ।
ताको पालन गुनौ धरम राजा को भारी ॥
हठ करि विद्या दान अबस परजा कहँ देहू ।
सब गुन गन में सुनहु सुवन गुरुतम गुन एहू ॥
पुनि करहु खरच सोई भरै जासौं दुखिया को उदर ।
कै धन उत्पादक शक्ति वर होय प्रजा की प्रबल तर ॥
करौ आलसी पुरुष राज में मान बिहीना ।
बिनु श्रम कोई कहूं होन पावै जनि पीना ॥
सदा श्रमी को देस रतन गुनि मान बढ़ावो ।
व्यापारहि उतसाह देइ सन्तत अपनावो ॥
पुनि सकल प्रजागन को सदा करौ मान सब भाँति सम ।
नहिं भिन्न भिन्न परजान में प्रीति भाव छिन होय कम ॥
नीच न काहुहि गुनौ करौ सब को सनमाना ।
प्रति मनुष्य के गुनौ सात अधिकार महाना ॥
जीवमात्र पै करौ दया सन्तत गुनकारी ।
आरज तन को चारु धरम समुझौ यह भारी ॥
सुत संपति अरु विपति में सदा एकरस ह्वै रहहु ।
है यह महानता को धरम याहि औसि चित सौं गहहु ॥

भारी बिपदा परेहु भूलि सुत जनि घबरावो ।
नहीं धरम सौं तबहु रंच बिस्वास हटावो ॥
अन्यायी जनि गुनौ ईस कहँ न्यायी जानौ ।
बिपदाहू को कछू भलौ कारन अनुमानौ ॥
जो एक जन्म में नहिं लखौ न्याय होत नर सौं कहीं ।
तो और जनम को ध्यान करि करौ चित्त चंचल नहीं ॥
सुख में फूलो नहीं न दुख में बनौ दीन मन ।
रहि सब छिन गंभीर करौ कारज संपादन ॥
दृढ़ता धारन करौ परम भूषण यहि जानी ।
दृढ़ता विनु को पुरुष नीच पशु सो अनुमानी ॥
अति छोटेहु करमन पै सदा नर गन के राखहु नजरि ।
सच्चो सुभाव गुन अटल ये देत पुरुष को प्रगट करि ॥
जो कछु करिबो होय जौन छिन में मन माहीं ।
ताही छिन सो करौ निमिष अन्तर भल नाहीं ॥
गुनौ समै को मूल्य बहुत बातन सौं भारी ।
करौ समै अनुसार सकल कारज पन धारी ॥
यह सोचौ सदा दिनान्त में काल सफल कितनो भयो ।
केहि कारन बस कितनो समै आजु अकारथ ह्वै गयो ॥
होत अकारथ लखौ काल जिन लोगन संगा ।
भूलि न उनको करहु कबहु सतसंग अभंगा ॥
जितनो स्रम सहि सकै देह उतनो ही कीजै ।
काल सफलता लाग देह बल जनि हरि लीजै ॥
नित नियम सहित व्यायाम करि सदा सबल तन राखिये ।
जनि यह तन छनभंगुर समुझि भूलि पराक्रम नाखिये ॥
गुनि यह लोक सराय मानि मिथ्या जग नीको ।
माया मै संसार समुझि मति मानो फीको ॥

राख सरिस जग विरचि ईस नहिं तुमहिं भ्रमावत।
बाजीगर सम बैठि तमासे नहिं दिखरावत॥
गुनि करम भूमि यहिँ सुत सदा करतव्यन पालन करौ।
जग दृढ़ता सौं करि नाक सम धरम धारि आनँद भरौ॥
भारी दोषन लखे क्रोध कबहूँ नहिं कीजै।
धरि समता रहि शान्त दोष सम दंड करीजै॥
जो खुसामदी और मीत को अन्तर नीकौ।
निरखि जाँचि अरु जानि ताहि राखौ प्रिय जीकौ॥
पुनि बालक पालन में रहौ सदा विचच्छन सजग मति।
जो तुम्हरौ दूषन वे लखैं होय तासु फल दुखद अति॥
बालक भूषन जानि ताहि धारैं सिर सादर।
जीवन में ह्वै जाहिं तौन बालक दूषित नर॥
सदा बढ़ावो मान तरुनि गन को सुखदाई।
सुत सम तनया गुनै देस मंगल अधिकाई॥
नित ही संग्रह जसु को करहु स्वारथ भाव भुलाय करि।
परतिय रति लालच आदि सब विषय-वासना दूरि धरि॥
सीलहिं दै गुरु मान करौ ताको सुत धारन।
नेह न तोरौ कबौं पाय कैसोऊ कारन॥
जोरन में नव नेह नाहिँ चंचलता आनौ।
जुरे नेह पै ताहि निबाहत ही अनुमानौ॥
पुनि राजकरमचारी चुनन मे प्रवीनताई धरहु।
गुन सील देस कुल सोचि कै नियत कुसलता सों करहु॥
करौ शास्त्र अभ्यास कुसंगति सों सुत भागौ।
पंडित साधु उदार जसिन के सँग अनुरागौ॥
नहिं प्रमाण करि श्रवण अन्ध सम ताकहँ मानौ।
ताको कारन खोजि बुद्धि बल सों अनुमानौ॥

सिगरी बातन को ध्यान सों देखि सुमति बल जाँचिये।
यहिं कालचक्र की चाल को रहि अति सजग सबांचिये॥
उन्नति पथ पै जौन देस पुहुमी के राजैं।
जिनके प्रबल प्रताप निरखि बैरी डरि भाजैं॥
तिनकी उन्नति ओर ध्यान पूरन सुत देहू।
धरि के विमल विचार तासु कारन गुनि लेहू॥
पुनि देखि पतित देसन सविधि अवनति कारन ज्ञात करि।
दुरगुन वराय निज देस को करौ समुन्नत गुननि भरि॥
मानुस गन की चाल ढाल पै ध्यान जमावो।
देसिन के सतिभाव निरालस रहि अजमावो॥
होनहार को ज्ञान जथा मति संचित कीजै।
ताके सब प्रतिकार खोजिवे में मन दीजै॥
इन अरु ऐसी ही अन्य सब बातन पै नित ध्यान धरि।
सुत करौ राज अब जाय तुम परम सजगता सौं विचरि॥

ब्रह्मचर्य।

ऋषियों ने व्रत ब्रह्मचर्य को नित सनमाना।
सकल व्रतों का इसे सदा सिरताज बखाना॥
चढ़ती है जो जोति वदन पर इस व्रत वर से।
मिलती है जो सकति भुजों को इस जस धर से॥
वह नहीं स्वान मे भी कहीं और भाँति नर पा सकै।
वरु खाय हज़ारों औषधैं सब संतो की दिसि तकै॥
यह व्रत बर पच्चीस वरस तक जो नर पाले।
सिंह सरिस वह गजै सदा रोगो को घाले॥
लखौं जियें अरु सुनों चलौं सत वरस अदीना।
विदित प्रार्थना है जु वेद मे यह कालीना॥

वह जग में ऐसे मनुज की पूरन होती है सदा।
जो पहले कर व्रत पूर्न यह बरता है पतिनो तदा॥
बाल ब्याह कर करै अंध जो भोग विलासा।
कर विवाह बहु रमैं सदा जो मनसिज दासा॥
आतम हत्या सरिस पाप वे लहै सदा हीं।
अरु उनके संतान महा निरबल हो जाहीं॥
जो निज तन तिय तन पुत्र तन तनया तन का बल हरै।
इस बूढ़े पितु की दीन रट वह कुपुत्र कब मन धरै?

ईश्वर-वाद।

है नहीं काज उत्पत्ति हेतु बिन और जगत है काज बड़ा।
यह बिस्व रचयिता के होने का है प्रमान जग मान्य कड़ा॥
यदि ईश्वर को भी काज गुनै तो जावै मति चकराय।
उसके रचने वाले का भी कुछ नहीं पता दरसाय॥
बस एक ईस को अंतिम कर्ता ग्रहन सुमति भी करती है।
पर सकल जगत को अंतिम कारन कहने में सक धरती है॥
हैं एक सूर्य के साथ घूमते अगिनित ग्रह दिन रात।
है भू-मंडल भी उन ग्रह गन में एक परम लघु गात॥
उस प्रति नक्षत्र लोक अपने में सूरज सरिस विचरता है।
अरु उसके भी सब ओर ग्रहों को मंडल निसि दिन फिरता है॥
इन सब नक्षत्रों के गिनने में है कोई न समर्थ।
यों हैं ब्रम्हाण्डों की गिनती का सदा सकल स्रम व्यर्थ॥
उस ईश्वर के प्रति रोम कूप यों कोटि२ ब्रम्हाण्ड बसैं।
अरु अगिनित ये सब लोक गगन में बस कर सुख से सदा लसैं॥
ये अपनी अपनी चाल चलैं पर जावैं नहिं टकराय।
पड़ती है इनकी चालों में कर्त्ता की मति दरसाय॥

इस प्रति सूरज के प्रति ग्रह को प्रति वस्तु अचंभा देती है ।
कुछ कारन जाने पीछे नर की मति गति को हर लेती है ॥
नित काल और थल की गति जग को परम सरल दरसाय ।
पर आदि अंत इनका भी सोचै नर बुधि गोता खाय ॥
हम जाने पत्ती कढ़ी विटप से विटप बीज से हुआ बड़ा ।
अरु हुआ बीज भी एक बिटप से झंझट इतने बीच पड़ा ॥
यह पहला तरुवर हुआ कहाँ से क्यों उपजा किस भाँति ?
जिससे जग में चल पड़ी उसी बिधि के बिरछों की पाँति ॥
पुहुमी से खींच बिटप की जड़ सुंदर पानी हर लेती है ।
मारुत से खींच कारबन पत्ती चारा तरु को देती है ॥
पर मिला खींचने का बल इनको किस प्रकार किस काल ।
अरु वह बल रहता है थिर पाकर किसकी शक्ति विशाल ॥
गरुता करषन की सक्ति प्रबल जिससे जग ने महिमा पाई ।
यह किसने किस प्रकार दी इसको क्यों थिर है यह सुखदाई ॥
नहिं बन सकती है अकस्मात ही इतनी वस्तु विसाल ।
इनका रचने वाला है कोई महा प्रबल गुन आल ॥
यदि सकल संसकृत वर्न सहस्रों बरस हिलाये नित जावैं ।
तो भी नहिं कालिदास बिनु वे रघुवंस विरचि कर दरसावैं ॥
इससे भी बढ़ कर नभ रचना का है ईश्वर बिन हाल ।
हठ औ कुतर्क बिन है अति दुरलभ नास्तिक पद विकराल ॥
सब ईश्वर और अनीश्वर वादी मान बहुत कुछ लेते हैं ।
पर भोलेपन को अधिक अनीश्वरवादी आस्रै देते हैं ॥
नहिं विना आँख के मीचे होता सिद्ध अनीश्वरवाद ।
कर ईस्वर पर विस्वास पुत्र वर करो उसी की याद ॥

रघुनाथसिंह

राय बहादुर ठाकुर रघुनाथसिंह रियासत ईसलपूर ज़िला प्रतापगढ़ के तालुक़दार सेकंड क्लास आनरेरी मजिस्ट्रेट और मुंसिफ़ हैं। आप चौहान क्षत्रिय सम्राट् पृथ्वीराज के वंशोद्भव हैं। आपका जन्म कार्तिक शुक्लाष्टमी संवत् १९३५ में हुआ। आपके पिता बड़े धर्मिष्ठ और सज्जन पुरुष थे। उन्होंने आपको व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक और धर्म्मशास्त्रादि का अध्ययन कराया। इनके अतिरिक्त आपने स्वयं फ़ारसी, कुछ अर्बी और अँग्रेज़ी का भी अभ्यास किया। सन् १९०२ ई० मे आप अपने सम्बन्धी माननीय राजा प्रतापबहादुर सिंह सी० आई० ई० प्रतापगढ़ाधीश के साथ इङ्गलैंड गये। वहाँ योरोप के अनेक स्थानों का आपने भ्रमण भी किया। वहाँ से नया अनुभव लेकर वापस आने पर खेती की उन्नति के लिये आपने अपनी रियासत में एक बहुत बड़ा बाग़ और कई एक एग्रीकलचरल फार्म तैयार किये। आपको चीता, स्याह गोश, बाज़, बहरी इत्यादि के शिकारों का बड़ा शौक है, इस विषय के आप अच्छे जानकार भी हैं। इस विषय का बाज़नामा नामक आपका एक ग्रन्थ भी छप रहा है। आप सनातन धर्म के उदार अनुयायी हैं। आपने कमला जी और महाकाली का

मन्दिर बनवाया तथा बेली पाठशाला स्थापित की है, जिसकी नींव संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बेली साहब ने रखी थी। आपने पाइक नगर भी बसाया है। जिसकी नींव फैज़ाबाद के कमिश्नर मिस्टर पाइक साहब ने डाली थी।

जर्मन युद्ध में द्रव्य तथा रंगरूटों की भर्ती में अच्छी सहायता करने के कारण आपको गवर्नमेन्ट से रायबहादुर की पदवी तथा तीन ग्राम मुसल्लम एक का कुछ हिस्सा माफ़ी में मिला।

आपकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सन् १९११ में दिल्ली दरबार के अवसर पर सरकार की ओर से आपको एक पदक प्रदान किया गया।

आपके तीन पुत्र हैं। बड़े पुत्र ठाकुर रुद्रप्रतापसिंह रियासत के कामकाज को बड़ी तत्परता और बुद्धिमानी से सँभालते है। अपने पिता को ये राजकाज मे बड़ी सहायता पहुंचाते हैं। दूसरे पुत्र ठाकुर व्रजनारायण सिंह हैं, जो अन्य देशों के समान अपने यहाँ भी कला-कौशल की विशेष उन्नति चाहते हैं। तीसरे पुत्र ठाकुर रामनरेश सिंह कृषि-सुधार की ओर विशेष रूप से संलग्न है। इन्होने कृषि-सम्बन्धी कई पुस्तकें भी लिखी हैं। ये तीनो भाई अपने योग्य पिता की योग्य संतान हैं। इन तीन पुत्रों के सिवाय ठाकुर साहब के पाँच पौत्र भी हैं। इस समय आप शिक्षा, सम्पत्ति, परिवार, राज-सम्मान और सुकीर्ति सब प्रकार से सुसम्पन्न हैं।

ठाकुर साहब से मुझे मिलने का अवसर मिला है। आप बड़े मिलनसार, सरस हृदय और साहित्य-रसिक हैं। आप हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में कविता रचने की अच्छी प्रतिभा रखते हैं। कविता में आप अपना उपनाम "रमनेश"

रखते हैं। फारसी, उर्दू और संस्कृत मिश्रित छन्दों की रचना भी आपने की है। आप बीन, मृदङ्ग आदि के बजाने में भी बड़े सिद्धहस्त हैं। यद्यपि आपका रचा कोई ग्रंथ छपा हुआ मेरे देखने में नहीं आया, परन्तु आपके रचे हुये कुछ पद्य मुझे मिल गये। उन्हें मैं नीचे उद्धृत करता हूं:—

[१]

परम पवित्र पद्म प्रिय पशु चिन्ह हीन प्रेषित ह्व पेखि सुख पावत प्रसिद्धि ए। वनिता वदन सों विजित न विकाशहीन मूंदैं ना बढ़ै ना बने वानिक विविधि ए॥ राहु रद रहित रसीले सुधारसवारे कवि रमनेश रसिकेश नवनिधि ए। कुहू करि कबहूँ कह्यौ न कोऊ काह भयो कनक लता पै कहौ कौन कलानिधि ए॥

[२]

उड़त गुलाल गुल आब सौरभित शुभ्र भभरि भगानी छवि अद्भुत वाँ ह्वै गई। जैसे कुच भार फेर वैसोई सकुच भार नेह नव भार लङ्क लाखन वलै दई॥ रमनेश सुमन के हार सों भार हार भार अतिहि डेराय मन लै गई। मुख वारिजात पै अबीर वार कैसे सहै कई बार प्यारी वार भारन ते नै गई॥

[३]

दर शहर शुमा वफ़ताद वदर अज़ वहर ख़ोदा वरमन विनिगर। दिलोजान ववुर्द ई क़त्ल अज़ीं गोई कि चुनी रस में दिलवर॥ मनरश्क चरा न कुनम तुवगो अज़ दीदन खेश रक़ीब गुज़र। रमनेश तुर्द मन जानो जिगर वर रूप कसे हरगिज़ मनिगर॥

[४]

दौरि दुरि द्वार के दरीचे दर मूँदियो री त्रिविधि समीर कहूँ इते आन पावै ना । किंशुक गुलाब कचनारन अनारन के कलम करावो हाय कैहूँ फूलि आवै ना ॥ दिनकर तुमसों कहत कर जोरि जोरि कुहू के विहीन दूजी निशि होन पावै ना । आवै ना महीपति मदन ऋतुराज मंत्री विनहि गुनाह विरहीन को सतावै ना ॥

[५]

पति प्राण प्रियस्त्वमहर्निशयोः मरा गुफ़्ई भूल न जाइये गा । हमते तो रिसाय गये मितऊ सुण दां दिलो दीं कांई लाइए गा ॥ युमि नून सरा तुल मुस्त क़ौम कहलीं फिर अहुर्न भुलाइए गा ॥ माई डार्लिङ्ग वेष्ट विशेज़ विद मी रमनेश पै पाती पठाइए गा ॥

[६]

ग़म है वो अलम है सितम का तेरे इसे लेकर के कर मीजिये गा । दिल ही एक सौदा था सो लै लिया फरमाइये तो कुछ दीजियेगा ॥ रमनेश जू होनी जो होगी सो होइ ही इल्तिजा है इसे कीजियेगा । इस कुश्तये नाज़ सों प्यारी कभी ज़रा सा तो गले मिल लीजियेगा ॥

गिरिधर शर्मा

संवत् १९३८ विक्रम की ज्येष्ठ-शुक्ला अष्टमी को सिंह लग्न में पंडित गिरिधर शर्मा का जन्म झालरापाटन शहर में हुआ। इनके पिता का भट्ट ब्रजेश्वर जी और माता का नाम पन्नी बाई है। इनके पितामह भट्ट गणेशराम जी और प्रपितामह भट्ट बलदेव जी झालावाड़ के प्रतिष्ठित राजगुरु हो गये हैं। ये जाति के प्रश्नोरा नागर हैं, गोत्र भारद्वाज है। इन्होंने झालरापाटन, जयपुर और काशी में शिक्षा पाई है। समय समय पर ये संस्कृत और हिन्दी के निम्नलिखित पत्रों में लेख लिखते रहे हैं—काव्य कादम्बिनी, संस्कृत चन्द्रिका, मञ्जु भाषिणी, संस्कृत रत्नाकर, काव्य सुधाधर, हिन्दोस्तान, राजस्थान समाचार, सरस्वती, मर्यादा, हिन्दी चित्रमयजगत्, मनोरंजन, श्री वेंकटेश्वर, हिन्दी समाचार, जैन हितैषी, इत्यादि। इन्होंने कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है। जिनमें अर्थशास्त्र, व्यापार शिक्षा, शुश्रूषा, कठिनाई में विद्याभ्यास, आरोग्य दिग्दर्शन, जयाजयन्त, राई का पर्वत, सरस्वतीचन्द्र, सुकन्या, सावित्री, ऋतुविनोद, शुद्धाद्वैत, सिद्धान्त-रहस्य, चित्राङ्गदा, भीष्मप्रतिज्ञा, कविता-कुसुम, भक्तामर, कल्याण मंदिर, बारह भावना, रत्नकरंड, विषापहार मुख्य हैं। इनमें कई छप चुके हैं। ये "विद्या भास्कर" नाम के पत्र का भी सम्पादन कर

चुके हैं, जो राजपूताना भर में पहला और एक ही पत्र था। इन्दौर में इन्होंने "मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति" की स्थापना में बड़ा प्रयत्न किया है और झालरापाटन में "राजपूताना हिन्दी साहित्य सभा" स्थापन करने में उत्साहपूर्वक काम किया है। भरतपुर में "हिन्दी-साहित्य-समिति" की स्थापना की। कई राज्यो मे नागरी लिपि का प्रवेश कराया, अब ये अपने जीवन का विशेष भाग हिन्दी के हितसाधन मे बिता रहे हैं। ये एक उत्तम वक्ता और प्रभावशाली व्यक्ति है। संस्कृत, हिन्दी और गुजराती में भी कविता लिखते हैं। उर्दू, मराठी, बङ्गला और प्राकृत का भी अच्छा ज्ञान रखते है। इन्होंने बम्बई, प्रयाग, दिल्ली, भरतपुर, लाहौर, मथुरा, फ़ीरोज़ाबाद, जयपुर, इन्दौर, पटना आदि स्थानो में हज़ारों मनुष्यों के सन्मुख महासभाओं मे व्याख्यान दिये हैं, और अपने काव्यों से सर्वसाधारण को आनंदित कर दिया है। इनकी योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर काशी के विद्वत्समाज ने "नवरत्न" की, काशी के भारतधर्म महामण्डल ने "महोपदेशक" की, चतुः सम्प्रदाय श्री वैष्णव महासभा ने "व्याख्यान भास्कर" की उपाधियां प्रदान की हैं। यहां पर उनकी कविताओं के कुछ नमूने दिये जाते है:—

[१]

अंगरेज़ी जरमन फ्रेंञ्च ग्रीक लैटिन त्यों,
रशियन जपानी चीनी प्राकृत प्रमानी हो।
तामिल तैलंगी तूलू द्राविड़ी मराठी ब्राह्मी,
उड़िया बंगाली पाली गुजराती छानी हो॥
जितनी अनार्य आर्य भाषा जग जाहिर हैं,
फ़ारसी ऐराबी तुर्की सब मन आनी हो।

जनम वृथा है तोभी मेरे जान मानव को,
हिन्द में जनम पाके हिन्दी जो न जानी हो ॥

[२]

जाना नहीं अच्छा कभी जैनियों के मंदिर में,
किसी भांति अच्छी नहीं कृष्ण की उपासना।
शंभु का स्मरण किये होना जाना क्या है कहो,
राम नाम लेने से क्या सिद्ध होगी कामना।
बुरे हैं मुसलमान हिन्दू बड़े काफ़िर हैं,
ऐसी हो परस्पर मे बुरी जहां भावना ॥
प्रेम हो न आपस का एका फिर क्योंकर हो,
क्यों न भोगे हिन्दमाता नई नई यातना ॥

[३]

उदय न होगा भानु पूर्व छोड़ पश्चिम में,
आकर्षणशक्ति कहीं धरा की न जावेगी।
हिलेगा न हिमालय चाहे जैसी हवा चले,
मणिमय दिये की न ज्योति बुझ जावेगी ॥
बहेगी न उलटी गंगा झुकेंगे न वीर-शिर,
प्रकृति स्वधर्म से न कभी चूक जावेगी।
टरेंगे न ब्रह्मवाक्य भोगेंगे स्वराज्य हम,
संपदा यहां की यहीं पाछी लौट आवेगी ॥

[४]

हेरे भी मिलेंगे नहीं संकट के चिन्ह कहीं,
जायँगे कहाँ के कहाँ सारे विघ्न बाधा पीर।
बनेगा जगत भर तुम्हारी दया का पात्र,
देख के तुम्हारा मुख आखों मे भरेगा नीर ॥

रख कर माथे हाथ भाग्य के भरोसे पर,
बैठे मत रहो, सुनो भारतनिवासी वीर ।
काम करो काम करो, काम करो काम करो,
काम करो काम करो, काम करो धरो धीर ॥

[५]

जाते हैं समुद्र बँध रहते न अद्रि आड़े,
अग्नि जल वायु आदि हुकुम उठाते हैं ।
हुकुम उठाते हैं उमंग भरे धीर बीर,
होते धन धान्य शाह मस्तक नवाते हैं ॥
मस्तक नवाते है जगत के सकल लोग,
गिरिधर मूर्ति निज हिय मे बिठाते हैं ।
हिये में बिठाते है त्यो महिमा पराक्रम की,
पौरुष दिखाये क्या क्या काम हो न जाते हैं ॥

[६]

मेरा देश देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान,
मेरा सनमान मेरे देश की बड़ाई में ।
जियूंगा स्वदेश हित, मरूँगा स्वदेश काज,
देश के लिये न कभी करूंगा बुराई मैं ॥
भीषण भयंकर प्रसंग में भी भूल के भी,
भूलूंगा न देश हित राम की दुहाई मैं ।
जब लौं रहेगी सांस सर्वस भी लुटा दूंगा,
ईश को भी झुका लूंगा देश की भलाई में ॥

[७]

चर्चा जहाँ देश की हो मेरी जीभ वहीं खुले,
और नहीं खुले कहीं खुदा की खुदाई में ।

मेरे कान गान सुने सांचे देशभक्तन के,
और गान आवे कभी मेरे ना सुनाई में ॥
मेरे अंग रंग चढ़े एक देशप्रेम को ही;
और रंग भंग होके बूड़े जा तराई में ॥
मेरो धन मेरो तन मेरो मन मेरो जीव,
मेरो सब लगे प्रभो देश की भलाई में ॥

[८]

वाके पास बुध एक तेरे पास नाना वुध,
वाको तेज दिन में तू सदा तेजधारी है ।
वाके आसपास फिरे चक्कर लगाती भूमि,
भूमिदेव देव तुल्य तेरे दरबारी हैं ॥
वहाँ एक मंगल है जलते अंगार ऐसो,
तेरे यहाँ मंगल समूह सुखकारी है ।
भानुवंश भूषण भवानी सिंह भने रत्न,
तू है जग भान बड़ो मति ये "हमारी" है ॥

[९]

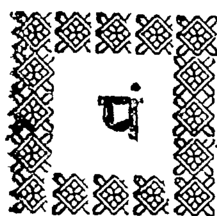
प्याली पै प्याली पी पी खाली किया करौ पीपे,
नशा करौ आफू भंग चरस अकूती को ।
घर को बिगारो रार धारो घर वारिन सों,
करौ वार वनिता कौ मान पठा दूती को ॥
लोहा करिबे की जगह हो हा करो सीखो मत,
अस्त्र शस्त्र विद्या रणचातुरी निपूती को ।
देश के कपूतौ राजपूतो डूब मर जाओ,
नाम ना लजाओ वीर प्यारी रजपूती को ॥

[१०]

पुस्तक-प्रेम ।

मैं जो नया ग्रन्थ बिलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है ।
देखूँ उसे मैं नित बार बार;
मानो मिला मित्र मुझे पुराना ॥१॥
"ब्रह्मन तजो पुस्तक-प्रेम आप,
देता अभी हूँ यह राज्य सारा ।"
कहे मुझे यों यदि चक्रवर्ती,
"ऐसा न राजन् कहिये" कहूँ मैं ॥२॥
अखण्ड भण्डार भरा हुआ है;
सुवर्ण का जो मम गेह में ही ।
बताइये हे मम मित्र-वर्य्य,
क्यों लूँ किसी के फिर दान को मैं ? ॥३॥
गिने हुये सज्जन वृन्द का तो,
कभी कभी मैं करता सुसङ्ग ।
परन्तु है पुस्तक मित्र ऐसा,
होता कभी जो मुझसे न न्यारा ॥४॥
इच्छा न मेरी कुछ भी बनूँ मैं,
कुवेर का भी जग में कुवेर ।
इच्छा मुझे एक यही सदा है,
नये नये उत्तम ग्रन्थ देखूँ ॥५॥

माधव शुक्ल



डित माधव शुक्ल प्रयाग के निवासी है। इनके पिता का नाम पंडित रामचंद्र शुक्ल है। इनका जन्म सं० १६३८ में हुआ। इनके पूर्वज मालवा के निवासी थे। लगभग तीन सौ बरस हुये जब वे मालवा से यहां आकर बसे।

पंडित माधव शुक्ल ने संस्कृत की प्रथमा परीक्षा पास की है, और स्कूल मे एन्ट्रेंस क्लास तक अंग्रेज़ी पढ़ी है। बँगला और गुजराती भाषा का भी इन्हे ज्ञान है। स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट के पास ये प्रायः प्रतिदिन जाया करते थे। उन्हीं की संगति से इन्हें समाचार-पत्रों में लेख लिखने का चस्का लगा। पहले पहल ये "हिन्दी प्रदीप" मे कविताएँ लिखते रहे, फिर "कर्मयोगी" और "अभ्युदय" मे भी इनकी कविताएँ बराबर निकलती रहीं।

शुक्ल जी को नाटक से बड़ा शौक है। ये पार्ट भी बहुत अच्छा करते है। प्रयाग में इन्होंने सब से पहले "हिन्दी-नाट्य-समिति" स्थापित की; और लगभग पंद्रह वर्ष तक बड़ी दिलचस्पी से ये उसका संचालन करते रहे। लगभग तीन वर्ष हुये, ये प्रयाग से कलकत्ते चले गये। वहां इनके जाने से हिन्दी नाटक की चर्चा ज़ोर शोर से होने लगी। इनके उद्योग से वहां "हिन्दी नाट्य-परिषद" की स्थापना हुई।

शुक्ल जी की पद्यरचना बड़ी ओजस्विनी होती है। नवयुवकों को वह बहुत पसंद है। अब तक इन्होंने छोटी बड़ी कुल पांच पुस्तकें रची हैं। उनके नाम ये हैं:—भारतगीतांजलि, महाभारत नाटक, स्वराज्य गायन, सामाजिक चित्र दर्पण, राष्ट्रीय तरंग। कलकत्ते में शुक्ल जी इलाहाबाद बैंक मे काम करते थे। अब सुना है कि इन्होंने वह कार्य छोड़ दिया और अब ये स्वतंत्र जीविका के प्रयत्न में हैं। इस समय इनके दो पुत्र और एक कन्या है।

शुक्ल जी की पद्यरचना के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते है:—

[१]

जिनके शुभ्र स्वच्छ हिय पट पर जग विकार का लगा न दाग।
भरा हुआ है अटल जिन्हो में केवल मातृदेवि अनुराग॥
जिनकी मृदु मुसुकानि सरलता विकसित गालों की लाली।
देख देख सुन्दर फूलो को रचता है जग का माली॥
बँधी हुई मुट्ठी को जिनने अब तक नहीं पसारा है।
जिनको हाथो से पैरो का अधिक अँगूठा प्यारा है॥
भावी भारत गौरव गढ़ की सुदृढ़ नीव के जो पत्थर।
आर्य देश की अटल इमारत का बनना जिन पर निर्भर॥
उन्हीं अनूठे कानों में यह मेरी स्वरमय आत्मपुकार।
पहुंचे आश लता की जड़ मे जिसमें होय शक्ति संचार॥

[२]

जग विच स्वर्ग हमारो देश।
भारत अस शुभ नाम लेत छन उपजत प्रेम विशेष।
तापै जन्मभूमि शोभा लखि रहत न दुख लवलेश॥
॥ जग विच स्वर्ग० ॥

पगतर उदधि बहत शिर ऊपर नील छत्र सदिनेश ।
उत्तम हिमगिरि परम मनोहर जहँ नित रमत महेश ॥
॥ जग विच स्वर्ग० ॥
पावन, निर्मल गंग नीर जेहि परसत कटत कलेश ।
प्रगटे ब्रह्म-रूप जग-कारक जहँ ब्रजेश अवधेश ॥
॥ जग विच स्वर्ग० ॥
धर्म ध्वजा फहरात जहां नभ रत्नन खानि अशेष ।
'माधव' अस लखात कतहूं नहिं जस मम भारत देश ॥
॥ जग विच स्वर्ग हमारो देश ॥

[३]

जय जय दीन सङ्कट हरन ।
आर्य भारत जन पतित ह्वै रहे चारो बरन ।
छांड़ि आपन धर्मगौरव भये पापाचरन ॥ जय जय०
होत नारिन अति अनादर, लगीं लक्ष्मी टरन ।
बुद्धि हीन कपूत लागे मात गौवध करन ॥ जय जय०
दूध अरु घृत हीन ह्वै जन निबल लागे मरन ।
खोय निज पौरुष सहायक लगे डूबन तरन ॥ जय जय०
पहिर पट अभिमान कायरतादि को आभरन ।
कुप्रथा की नाव चढ़ि भव पार चाहत करन ॥ जय जय०
डांड लै दुष्कर्म की ह्वै अन्ध खेवत तरन ।
राखियो प्रभु दृष्टि इनपै नाहिं ह्वैहै मरन ॥ जय जय०
आज 'माधव' धर्म को है देश से परिहरन ।
नाथ! अब अवतार धारहु सुमिरि आपन परन ॥ जय जय०

[४]

कहौं का अपने हिय की भूल ।
जाको जानत रह्यों महासुख सो अति दुख को मूल ।

समुझत जिनको हितू आपनो सो निकसो प्रतिकूल ॥
कहौं का अपने हिय की भूल ।

देव मानि पूज्यो बहुविधि जेहि दै अक्षत फल फूल ।
अधम पिशाच चोर निकस्यो मम हिय बिच हन्यो त्रिशूल ॥
कहौं का अपने हिय की भूल ।

अबहुं बिचार देख मन मूरख मत बन बैठ मभूल ।
'माधव' जग नहिं कोउ काहू को केवल पौरुष मूल ॥
कहौं का अपने हिय की भूल ।

[५]

इस मौके पर कोई देश नहिं निर्धन औ अज्ञान रहा ।
रहा अगर तो तीस कोटि लोगों का हिन्दुस्तान रहा ॥
जिनने कुछ तकलीफ़ उठा कर अपना कर्तव दिखलाया ।
उसका उसने उस मालिक से अच्छा पूरा फल पाया ॥
उन सब में अव्वल नम्बर एक छोटासा जापान रहा ।
रहा अगर तो० ॥

खूब तरक्की औ आज़ादी चारो तरफ़ दिखाती है ।
उन देशों की बला आन कर इसी जगह टकराती है ॥
सोते थे सो भरी नींद में वे सब एकदम जाग पड़े ।
कमर कसे अभिमान त्याग कर करते अपने काम खड़े ॥
वह मुर्दा क्या उठेगा जिसके जलने का सामान रहा ।
रहा अगर तो० ॥

अपना ध्यान जिन्हें होता है उन्हें शौक़ से काम नहीं ।
धन देकर गैरों को बनते सब्ज़ परी गुलफ़ाम नहीं ॥
नहिं शराब नहिं जुवा खेलते रंडी नहीं नचाते हैं ।
पुण्यभूमि पर इस प्रकार से ऊधम नहीं मचाते हैं ॥

क्यों न नाश हो नहीं जिन्हों में धर्म और ईमान रहा ।
रहा अगर तो० ॥
हों चाहे कमज़ोर आलसी पढ़े भी न गर होवें कुछ ।
पर दिल में हो चोट देश की कर सकते हैं वे सब कुछ ॥
सुनो भाइयो जिसके बल पर सारे मज़े उड़ाते हो ।
उस बेचारे भारत को क्यों मिल कर नहीं उठाते हो ॥
"माधव" कहता हाय न कोई आज वीर सन्तान रहा ।
रहा अगर तो० ॥

[६]

ये दिल मे आता है उठ खड़े हो, समय हमें अब जगा रहा है ।
बिला हुये तार भी लहू मे वो तारबर्क़ी लगा रहा है ॥
ये दिल में० ।
जहां अँधेरा था मुद्दतों से न देख सकता कोई किसी को ।
उसी जिगर मे छिपा हुआ कुछ न जाने क्या जगमगा रहा है ॥
ये दिल मे० ।
सनातनी में न कोई हैं बल न हैं समाजी में कोई कर्तव ।
इसाई मुसलिम बिचारे क्या है ये बात वो हैं जो लापता है ॥
ये दिल मे० ।
कभी भी मायूस हो न "माधो" ज़माना ये इनक़िलाब का है ।
उठाना सब को है काम इसका जो अपनी हस्ती मिटा रहा है ॥
ये दिल मे० ।

[७]

कलियुगी साधु ।

है नहीं जिनको ज़रा भी ध्यान अपने देश का ।
जिनके दिल कुछ भी असर होता नहीं उपदेश का ॥

एक अक्षर भी पढ़े लिक्खे नहीं होते है जो ।
आजकल घरबार तज कर साधु बन जाते है वो ॥
रंग लिये कपड़े कमंडल भी लिया एक हाथ मे ।
बांध लंगोटी जटा सिर भस्म सारे गात मे ॥
कनफटा कानों में खप्पर हाथ चिमटा भी बड़ा ।
राह चलते टनटनाता एक घंटा भी पड़ा ॥
धंवमाते बैल से जिस दर पै ये जाकर अड़े ।
कुछ न कुछ लेकर हटेंगे जग मरे पत्थर पड़े ॥
हाय ! बावन लाख ऐसे मुफ़्तखोरे आज है ।
जिनके घर दर गांव गोरू घोड़े हाथी राज हैं ॥
खान है पापों के बेपरवाह है कानून के ।
हिन्द के रक्षक हैं या प्यासे हमारे खून के ॥

[८]

गाना (सोहर)

जुग जुग जीवें तोरे ललना, झुलावें रानी पलना,
जगत सुख पावइं हो ।
बजै नित अनन्द बधैया, जियैं पांचों भैया,
हमन कहँ मानइं हो ॥
धन धन कुन्ती तोरी कोख, सराहै सब लोक,
सुमन बरसावइं हो ।
दिन दिन फूलें रानी फूलें, दुआरे हाथी झूलें,
सगुन जग गावइं हो ॥

(महाभारत नाटक)

गयाप्रसाद शुक्ल (सनेही)



पंडित गयाप्रसाद शुक्ल का जन्म श्रावण शुक्ल १३ संवत् १९४० वि० में हुआ था। ये शुक्ल कुलोत्तम कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। युक्तप्रान्त में उन्नाव ज़िले के अन्तर्गत क़स्बा हड़हा इनकी जन्मभूमि और निवास स्थान है। इनके पिता पण्डित अवसेरी लाल शुक्ल ग्राम के प्रभावशाली और प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। बाल्यावस्था में ही सनेही जी को पितृ-वियोग का दुःख उठाना पड़ा। इसलिए इनका पालन पोषण इनके चचेरे भाई पण्डित लालप्रसाद शुक्ल ने बड़ी सावधानी और स्नेह से किया।

सनेही जी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम की ही पाठशाला में हुई। प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी और उर्दू में शीघ्र ही समाप्त करके छात्रवृत्ति पाकर ये वर्नाक्युलर फाइनल की शिक्षा प्राप्त करने पुरवा टौन स्कूल गये। वहाँ से इन्होंने सन् १८९७ ई० में वर्नाक्युलर फाइनल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इस परीक्षा में इनकी प्रथम भाषा उर्दू थी। कविता की अभिरुचि, जो इनमें स्वाभाविक ही थी, वहीं से प्रबल हुई। क्योंकि उस समय वहाँ के हेड मास्टर पण्डित सदासुख मिश्र बड़े कविताप्रेमी थे।

फाइनल परीक्षा पास करके ये गाँव ही में फारसी का अध्ययन करने लगे। सौभाग्यवश इसी बीच हिन्दी तथा

फारसी के मर्मज्ञ तथा कवि लाला गिरधारी लाल जी श्रीवास्तव्य पेंशन पाकर अपने जन्मस्थान हड़हा को आये। उनके परिचय और सम्पर्क से इनकी कविताभिरुचि अत्यन्त प्रबल हो उठी। और फिर यह उन्हीं से हिन्दी काव्य का मनन करने लगे। साहित्य की शिक्षा सनेही जी ने इन्हीं से प्राप्त की।

इसी बीच उर्दू के प्रसिद्ध कवि श्री० मुंशी रामसहाय जी "तमन्ना" शिक्षा-विभाग उन्नाव के डिप्टी-इन्सपेक्टर से भेंट हुई। उन्होंने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया कि ये अवश्य अध्यापकी करें; क्योंकि इस विभाग मे पढ़ने पढ़ाने का अच्छा अवसर और विशेष सुविधा रहती है। अतएव इन्होंने १५,१६ वर्ष की ही अवस्था में अध्यापकी कर ली। और 'तमन्ना' जी की ही कृपा से ये शीघ्र ही नार्मल स्कूल लखनऊ मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गये। वहाँ ये एक योग्यतम विद्यार्थी थे और सभा उत्सव आदि में अपनी मधुर कविता से लोगों को मुग्ध करते थे। इनके इन अपूर्व गुणों से अध्यापकगण अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे। उस समय इन्हें उर्दू कविता में नार्मल स्कूल के फ़ारसी मुदर्रिस मौ० सय्यद इब्राहीम हुसेन "नाज़िम" से इसलाह लेने का अवसर प्राप्त हुआ।

वहाँ से आने के कुछ मास के पश्चात ही ये सफीपुर में फाइनल स्कूल के सेकिंड मास्टर नियुक्त हुए। वहाँ के उर्दू के मुशायरे मे ये सदा भाग लेते थे। उन्नाव में फाइनल स्कूल खुलने पर ये उन्नाव चले आये। और यहीं पर अपने कृपालु "तमन्ना" साहब से अधिक सम्पर्क होने के कारण उर्दू में भी खूब कहने लगे। इस समय ये "रसिक मित्र," रसिक रहस्य "काव्य सुधानिधि" और "साहित्य सरोवर" आदि कविता

भक्त की अभिलाषा।

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं, एक तारा क्षुद्र हूं,
तू है महासागर अगम मैं, एक धारा क्षुद्र हूं।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूंद समान हूं,
तू है मनोहर गति तो मैं एक उसकी तान हूं॥ १॥

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूं;
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूं।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूं;
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अङ्क में आसीन हूं॥ २॥

तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूं
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या आश्रेय हूं।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूं;
तुझको नहीं मैं भूलता हूं, दूर हूं या पास हूं॥ ३॥
तू है पतित पावन प्रकट तो, मैं पतित मशहूर हूं
छल से तुझे यदि है घृणा, तो मैं कपट से दूर हूं।
है भक्ति की यदि भूख तुझको, तो मुझे तव भक्ति है
अति प्रेम है तेरे पदों मे, प्रेम है आसक्ति है॥ ४॥
तू है दया का सिन्धु तो मैं भी, दया का पात्र हूं
करुणेश तू है, चाहता मैं, नाथ करुणामात्र हूं।
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है, मैं दीन से भी दीन हूं
तू नाथ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु हीन हूं॥५॥
तव चरण अशरण शरण है, मुझको शरण की चाह है
तू शीतकर है दग्ध को, मेरे हृदय में दाह है।
तू है शरद राकाशशी, मम चित्त चारु चकोर है
तव ओर तज कर देखता वह, और की कब ओर है॥६॥

हृदयेश अब तेरे लिए, है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ आ इधर आ शीघ्र आ, यह शोर यह गुल हो रहा।
यह चित्त चातक है तृषित, कर शान्त करुणा वारि से
घनश्याम तेरी रट लगी आठो पहर है अब इसे ॥७॥
तू जानता मन की दशा, रखता न तुझसे बीच हूं,
जो कुछ कि हूं तेरा किया हूं उच्च हूं या नीच हूं।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े,
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वार अब किसके अड़े ॥८
तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू मैं मोर हूं,
सब भावनायें छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूं।
मुझ मे समा जा इस तरह तन प्राण का जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूं तू और है ॥९॥

[२]

अन्धेर।

पड़े हैं बन्धन में गजराज, मुक्त फिरता है श्वान समाज।
कुढङ्गा है कोकिल का साज, धरा कुक्कुट के सिर पर ताज॥
इसे हम कहें दिनों का फेर।
या कहें दुनियां का अन्धेर ॥१॥
कूप का निर्मल शीतल नीर, महा खारी है उदधि गँभीर।
ईश के भक्त अशक्त अधीर, दुष्ट राक्षस होते हैं वीर॥
घरों में अजा वनों में शेर।
देखिए दुनियां का अन्धेर ॥२॥
नहीं घटती तारों की आब, नहीं स्थिर माहेताब की ताब।
कुशल से किंशुक खिले जनाब, कठिन काँटों से खिंचे गुलाब।
रत्न कम पत्थर के हैं ढेर।
देखिए है कैसा अन्धेर ॥३॥

पर्वतों में सोने की खान, राजपूताना रेगिस्तान।
शङ्ख का है सूखा सम्मान, किया सीपी को मुक्ता दान॥
विधाता की सुबुद्धि का फेर।
हो रहा है विचित्र अन्धेर॥४॥
कहाँ वह कमल कहाँ वह कीच, न समझा उच्च न समझा नीच।
लगाया है कलङ्क शशि बीच, लेगया वह मनोज्ञता खींच
दिया है गरल सुधा में गेर।
विधाता यह कैसा अन्धेर॥५॥
महा गुणकारी कड़वी नीम, बताते डाक्टर वैद्य हकीम
भरे मीठे में दोष असीम, बिके दो गिन्नी सेर अफीम।
और गुड़ दोही आने सेर।
कौन यह कहे नहीं अंधेर॥६॥
महाज्ञानी थे अष्टावक्र, और परसन्तापी है शक्र।
चलाता है विधि ऐसा चक्र, किया करता है ऐसे मक्र॥
लगे अन्धे के हाथ बटेर।
लोग हैं चकित देख अन्धेर॥७॥
खपाया किए जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर।
उड़ाते माल धनिक भरपूर, मलाई लड्डू मोतीचूर॥
सुधरने में जग के है देर।
अभी है बहुत बड़ा अन्धेर॥८॥
अन्नदाता हैं धीर किसान, सिपाही दिखलाते हैं शान।
डराते उन्हें तमाचा तान, तुम्हें क्या सूझी है भगवान॥
आँवले खट्टे मीठे बेर।
किया है क्यों ऐसा अन्धेर॥९॥
फिलीपाइन के हिंसक लोग, जिन्हें था कल तक पशुता रोग।
भोगते हैं स्वराज्य सुख भोग, पड़ा ऐसा आकर संयोग।

रहा है भारत पर मुख हेर।
बड़ा अन्धेर! बड़ा अन्धेर ॥१०॥

[३]

मौन भाषा।

जिनके रसना नहीं मौन हैं बेज़बान हैं;
अथवा दुखवश बने मूक ही के समान हैं।
दर्द भरी वे यदपि नहीं छेड़ते तान हैं;
अपनी बीती प्रकट नहीं करते बयान हैं॥
तदपि भाव क्या क्या प्रकट करते हैं चुपचापही।
कहाँ शक्ति वक्तृत्व मे है, यह कहिए आपही ॥ १ ॥
यह असीम आकाश असंख्य चमकते तारे;
औषधीश रजनीश सूर्य्य सर्वस्व हमारे।
अगम अगाध समुद्र उच्चगिरि गुरुता धारे;
बड़े बड़े मैदान विशद नद कटे करारे॥
यह सब प्रभु की सृष्टि मे क्या है रहते ही नहीं।
माना हैं यह मौन पर क्या कुछ कहते ही नहीं ॥ २ ॥
खँडरों की यह झुकी खड़ी दरकी दीवारें;
कुछ कहने को खोल रहीं मुख नहीं दरारें।
बेज़बान हैं हाय! और किस तरह पुकारें;
रोती हैं चुपचाप और क्या ढाढ़ें मारें॥
चहल पहल वह अब रही और न वे स्वामी रहे।
मिटने को है नाम भी कहने को नामी रहे ॥ ३ ॥
इनकी करुणा कथा आप क्या कुछ न सुनेंगे;
क्या इनकी दुर्दशा देखकर शिर न धुनेंगे।
भाव रत्न है ढेर आप क्या कुछ न चुनेंगे;
क्या रोड़ों को आप व्यर्थ की वस्तु गुनेंगे॥

टूटे फूटे खण्ड ये बिखरे ग्रन्थ पवित्र हैं।
पुरातत्व इतिहास के इनमें जीवित चित्र है ॥ ४ ॥

दीना विधवा हाय! सहाय सहारे जिसके;
प्रियतम श्रीपतिदेव देवपुर असमय खिसके।
रहे कलेजा थाम न रोये तड़पे सिसके;
पर न करेगी छेद हृदय पत्थर मे किसके॥
उसकी वह चिर मौनता मुख छवि मुरझाई हुई।
घोर उदासी क्षीणता अङ्ग अङ्ग छाई हुई ॥ ५ ॥

कह देंगी क्या न वे सजल आँखें पुकार के;
बेड़ा डूबा हाय हमारा बीच धार के।
चिह्न कमलिनी पर न छिपेंगे चिर तुषार के;
बिखर कहेंगे बाल भ्रमर से भरे छार के॥
बिगड़ गया सर्वस्व ही अब सँवार के दिन गए।
तीक्ष्ण तपनि का समय है वे बहार के दिन गए ॥ ६ ॥

वह अनाथ असहाय भिखारी बालक भूखा;
कोई उसको नहीं खिलाता रूखा सूखा।
हाय कौन अब कहे लाल मेरे चल तू खा;
पड़े कई उपवास पेट सूखा मुँह सूखा॥
नहीं माँगना जानता खड़ा हुआ चुपचाप है।
मानो सम्मुख आगया मूर्तिमान परिताप है ॥ ७ ॥

बिना कहेही व्यक्त कर रही करुण कहानी;
दुखिनी आँखें और कांति मुख की कुम्हिलानी।
बोल रहा प्रत्यङ्ग कि माँ की गोद न जानी;
बड़ा हुआ था द्वार द्वार का दाना पानी॥
वाम विधाता ने किये जो जो अत्याचार हैं।
मुख मुद्रा से हो रहे जाहिर सब आसार हैं ॥ ८ ॥

पर कतरे हैं कैद किया है ज़बां काट ले,
दे दे छलिया छुरी की खंजर लहू चाट ले।
बुलबुल से खल बधिक बैर अपना निपाट ले;
पर पीड़न के पाप पुञ्ज से भवन पाट ले॥
सिर पर चढ़ कर खून पर छिपा न फिर रह जायगा।
नुचे परों का ढेर सब उड़ उड़ कर कह जायगा॥ ९॥

कर्मवीर चुपचाप खड़ा करता न शोर है;
मुंह से कहें न लोग चित्त पर उसी ओर है।
है यह भाषा मौन मगर किस कदर जोर है;
इस बोली को पहुंच सका चातक न मोर है॥
दृढ़ शरीर उसका नहीं अति विशाल मीनार है।
ख़बर उसीसे दे रहा बिना तार का तार है॥१०॥

भारत मन्त्री दुःख दर्द सुनने आये है;
समुचित सुखद सुधार सार चुनने आये हैं।
राजनीति का नया वस्त्र बुनने आये हैं;
क्या है किसके स्वत्व तत्व गुनने आये हैं॥
उनसे अपना ध्येय हैं कहते सभी पुकार के।
पर बेचारे कृषक हैं रहे मौन ही धार के॥११॥

हां, हां वेही कृषक चल रहीं जिनसे रोटी;
जिनके तन पर रही सिर्फ है फटी लँगोटी।
जिनकी मिहनत खरी किन्तु है किस्मत खोटी;
ज्यों ज्यों अन्धा बटे करे त्यो पड़वा छोटी॥
जितनी ही खेती बढ़ी उतनाही टूटा पड़ा।
निर्दय हृदयों करो से उनका घर लूटा पड़ा॥ १२॥

उनकी यह मौनता नहीं क्या क्या कहती है;
चित्तवृत्ति भी कहीं छिपाये छिप रहती है।

माना घर घर नहीं अश्रुधारा बहती है;
करुणा श्रोतस्विनी लाज-भाँवर गहती है ॥
सहते क्या क्या कष्ट है क्या क्या पाते क्लेश हैं।
पर घर बैठे मौन ही करते एड्रस पेश हैं ॥ १३ ॥
कहते सकरुण अहो दयानिधि आओ आओ;
जो जो मांगे लोग स्वत्व उनको दिलवाओ ।
हम दीनो को महोदार ! पर भूल न जाओ;
हम हैं मरणासन्न हमारे प्राण बचाओ ॥
इन कानूनों में प्रभो ऐसा सदय सुधार हो ।
अपने खेतों पर हमें कुछ भी तो अधिकार हो ॥ १४ ॥
इस भाषा की कहूं कहां तक महा महत्ता;
चर हों या हों अचर सभी में इसकी सत्ता ।
बोली यह बोलता फूल हो या हो पत्ता;
है यह इतनी मधुर कि मानो मधु का छत्ता ॥
मुँह बँध जाता है सदा इसके मञ्जु मिठास से ।
होता उज्ज्वल हृदय नभ इसके ही आभास से ॥ १५ ॥
चप तक मिलती नहीं समय यों चुप जाता है;
किन्तु न उसका चरण चिह्न कुछ तुप जाता है ।
शिक्षा का तरु हृदय-कुञ्ज में रुप जाता है;
जग के मत्थे सुफल कुफल सब थुप जाता है ॥
विद्यालय में विश्व के लेकिन वे तारीख लें ।
जिनको हो कुछ सीखना सबक समय से सीख लें ॥ १६ ॥
कर लें पहिले किन्तु मौन भाषा का अर्चन ;
यह कोरी बकवास करे बुधवर्य विसर्जन ।
कभी बरसते नहीं अधिक जो करते गर्जन;
कर सका है कौन मौन भाषा का वर्जन ॥

ो उमङ्ग जी खोल कर इस भाषा में बोल लें।
रल हृदय पहले बनें हृदय ग्रन्थियां खोल लें ॥ १७ ॥

मित्रो पहले पहल मनुज जब जग में आया;
भाषा थी तब यही कि जिसने काम चलाया।
न तो कोष था कहीं न था व्याकरण बनाया;
लेते अब भी काम इसीसे शिशु मां दाया ॥
प्रकृति शिक्षिका है बनी इसे सिखाने के लिए।
हृदय निष्कपट चाहिए राह दिखाने के लिए ॥ १८ ॥

बनें आप यदि कहीं मौन भाषा विज्ञानी;
हो त्रिकाल दर्शित्व प्राप्त फिर रहे न सानी।
बातें सब आ जांय नई हों याकि पुरानी;
झूठे कपटी कह न सकें फिर कपट कहानी ॥
आप वृथा भटकें नहीं सामुद्रिक की चाह में।
दिव्य दृष्टि मिल जायगी चलिए तो इस राह में ॥ १९ ॥

जबसे हमने पाठ मौन भाषा का छोड़ा;
रही मनुजता नहीं पड़ा है इसका तोड़ा।
किसी दीन को डांट डपट कर पकड़ झंझोड़ा;
पड़ा किसी पर बूट किसी पर सटका कोड़ा ॥
कष्ट किसी को क्यों न हो हमें काम से काम है।
नहीं जानते सदयता किस चिड़िया का नाम है ॥ २० ॥

ता-मा तो नर सकल जगत् के कर लेते हैं;
इसकी शिक्षा पूर्ण सुकवि बुधवर लेते हैं।
मति पक्षी के लिए इसीसे पर लेते हैं;
ज्ञान महोदधि इसी नाव से तर लेते हैं ॥
पढ़िये प्रियवर आप भी मैं कैसा हूं कौन हूं।
श्रीगणेश कर दीजिये मैं अब होता मौन हूं ॥ २१ ॥

[४]

सदाय वतन

नहीं है और हवस दिल में है हवाय वतन।
पसन्द कुछ भी नहीं मुझको है सिवाय वतन॥
बदल लूँ शौक से मैं इस्फ़हानी सुर्मे से।
मिले किसी से अगर मुझको ख़ाके पाय वतन॥
जनाब लन्दनो पेरिस की है हक़ीक़त क्या।
न लूँ बहिश्त का भी नाम मैं बजाय वतन॥
वो सर ज़मीं है जहां सर फ़रोस लाखों हीं।
हुए प्रताप शिवा जी से हैं फ़िदाय वतन॥
वतन की ख़ाक से उट्ठा हूँ मैं वतन का हूँ।
वतन है आशना मुझसे मैं आशनाय वतन॥
मुसाफ़िरत मे ये गुल काँटे से खटकते हैं।
बसे हैं दिल में मेरे हाय! ख़ार-हाय वतन॥
तेरी गुज़श्ता वो अज़मत जो याद आती है।
निकलता आह के है साथ मुह से हाय वतन॥
ख़याल अहले वतन को हुआ तरक़्क़ी का।
मक़ामे शुक्र है बदली है कुछ हवाय वतन॥
वतन परस्तों के दिल में है यही आठ पहर।
बलन्द चारों तरफ़ से हो अब सदाय वतन॥

[५]

वह वेपरवाह बने तो बनें हमको इसकी परवाह का है।
वह प्रीति का तोड़ना जानते है ढंग जाना हमारा निबाह का है॥
कुछ नाज़ जफ़ा पर है उनको तो भरोसा हमें बड़ा आह का है।
उन्हें मान है चन्द्र से आनन पै अभिमान हमें भी तो चाह का है॥

दाह रही दिल में दिल ह्वै क बुझी फिर आपै कराह नहीं अब।
जानि कै रावरे रूरे चरित्र गुन्यो हिय मे कि निबाह नहीं अब॥
चाहक चारु मिले तुमको चित माहि हमारे भी चाह नहीं अब।
जो तुम मे न सनेह रहा इनको भी नहीं परवाह रही अब॥

[६]

रावन से बावन बिलाने है बचे न एक चाल नहिं काल से किसी की चल पाई है। कौरव कुटिल कुल कुल के कठोर भये कृष्ण जी सों कंस की न दाल गल पाई है॥ हाय की हवा सों जल गये हैं जवन जूथ हासिल हुकुम पै न लागे पल पाई है। या ते बल पाय फल पाय लेहु जीवन को दीन कलपाय कहो कौने कल पाई है॥

रूपनारायण पाण्डेय

पंडित रूपनारायण पाण्डेय का जन्म लखनऊ के रानी कटरा में सम्वत् १९५१, आश्विन शुक्ल १२ को हुआ। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण गेगासों के पाण्डेय (पट्कुल) हैं। इनके पिता का नाम पं० शिवराम पाण्डेय था। जब ये एक ही वर्ष के थे उसी समय उनका देहान्त हो गया था। इस अवस्था में, इनके पितामह पं० राधाकान्त पाण्डेय ने अपने आश्रय एवं प्रेम से इनका लालन-पालन किया।

इनका विद्यारम्भ पहले पहल घर ही पर कराया गया। पहले संस्कृत की शिक्षा दी जाती रही। फिर इन्होंने कैनिङ्ग कालेज से प्रथमा परीक्षा पास करके मध्यमा का कोर्स पढ़ना शुरू किया। इसी अवसर में बाबा का भी देहान्त हो गया और गृहस्थी का सारा भार इन्हीं पर आ गिरा। उसे सम्हालने में पढ़ाई से हाथ खींच कर इन्हें नौकरी का सहारा लेना पड़ा। किन्तु विद्याभ्यास बराबर जारी रहा और वही क्रम अब भी जारी है। धर्म-भ्रष्ट होने के भय से, बाबा ने इन्हें अंग्रेज़ी की विशेष शिक्षा नहीं दिलाई; पर अपने परिश्रम से इन्होंने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

स्कूल में इनका विद्याध्ययन बहुत ही थोड़ा हुआ था। इन्होंने जो कुछ योग्यता प्राप्त की है वह इनके निज के परि·

श्रम तथा पुस्तकावलोकन का ही फल है। स्कूल में इन्होंने संस्कृत सिद्धान्त कौमुदी (समग्र), रघुवंश, मेघदूत, किरातार्जुनीय, माघ, तर्कसंग्रह, मुक्तावली, श्रुतबोध, साहित्य-दर्पण आदि का अध्ययन किया है। 'वर्ण परिचय' देख कर इन्होंने बंगला भाषा एक सप्ताह में सीखी है। मराठी, गुजराती और उर्दू का भी साधारण ज्ञान स्वयं सीखकर प्राप्त किया है।

बचपन से ही इनको साहित्य से रुचि है। जब १५ वर्ष के थे, तभी से इन्होंने कुछ न कुछ लिखना आरम्भ कर दिया था। इस समय तक इनके द्वारा रचित और अनुवादित ग्रन्थों की संख्या साठ के लगभग पहुंच चुकी है।

पहले ये कुछ दिनो तक बाबू कालीप्रसन्न सिंह सबजज के यहां रहकर कृत्तिवास रामायण का पद्यानुवाद करते रहे। फिर सात वर्ष तक 'नागरी प्रचारक मासिक-पत्र' का सम्पादन किया। तीन वर्ष तक भारतधर्म-महामण्डल की मुख पत्रिका 'निगमागम-चन्द्रिका' का सम्पादन किया। इसके पश्चात् दो वर्ष तक 'इन्दु' मासिक-पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम किया, वहां इन्हें इन्दु रौप्य पदक मिला। फिर एक वर्ष इंडियन प्रेस में रहे। दो वर्ष तक 'कान्यकुब्ज' मासिक-पत्र का सम्पादन किया। आजकल स्वतंत्र रूप से घर पर बैठे पुस्तक रचना मे निमग्न है। अब तक इनके लिखे हुये लगभग २०० गद्य लेख और १०० पद्य सामयिक पत्रों में निकल चुके हैं।

पांडेय जी बड़े विद्याव्यसनी, सुशील और मिलनसार हैं। अब तक इनका जीवन एकमात्र साहित्य चर्चा ही में बीत

रहा है । इनके गद्य-पद्य दोनों प्रकार के लेख सरस और सुपाठ्य होते हैं।

इनके द्वारा रचित और अनुवादित ग्रन्थों की सूची नीचे दी जाती है :—

१—श्रीमद् भागवत का समग्र अविकल अनुवाद (शुकोक्ति सुधासागर, २—आँख की किरकिरी ३—शान्तिकुटी ४—चौबे का चिट्ठा ५—दुर्गादास ६—उस पार ७—शाहजहाँ ८—नूरजहाँ ९—सीता १०—पापाणी ११—सूम के घर धूम १२—भारत रमणी १३—बंकिम निबन्धावली १४—ताराबाई १५—ज्ञान और कर्म १६—विद्यासागर १७—बाल कालिदास १८ बालशिक्षा १९—तारा २०—राजा रानी २१—घर बाहर २२—भूप्रदक्षिण २३—गल्प गुच्छ (५ भाग) २४—समाज २५—शिक्षा २६—महाभारत संपूर्ण का हिन्दी अनुवाद २७—रमा २८—पतित पति २९—शूर शिरोमणि ३०—हरीसिंह नलवह ३१—गुप्तरहस्य ३२—खाँजहाँ ३३—मूर्खमंडली ३४—मंजरी ३५—कृष्णकुमारी ३६—बंकिमचन्द्र ३७—अज्ञातवास ३८—बहता हुआ फूल ३९—पोष्यपुत्र ४०—चंद्रप्रभा चरित ४१—पृथ्वीराज ४२—प्रफुल्ल ४३—शिवाजी ४४—वीरपूजा ४५—नारीनीति ४६—आचार प्रबन्ध ४७—घरजमाई ४८—स्वतंत्रता देवी ४९—नीति रत्नमाला ५०—भगवती शतक ५१—शिव शतक ५२—रंभा-शुक-संवाद पद्यानुवाद ५३—पत्र पुष्प । पाण्डेय जी की कविताओं का कुछ नमूना आगे देखिये ।

दलित कुसुम ।

[१]

अहह ! अधम आँधी, आ गई तू कहाँ से ?
प्रलय-घन-घटा सी छा गई तू कहाँ से ?

पर-दुख-सुख तू ने, हा ! न देखा न भाला।
कुसुम अधखिला ही, हाय ! यों तोड़ डाला॥

[२]

तड़प तड़प माली अश्रु धारा बहाता।
मलिन मलिनिया का दुःख देखा न जाता॥
निठुर ! फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से।
इस नव लतिका की गोद सूनी किये से॥

[३]

यह कुसुम अभी तो डालियों में धरा था।
अगणित अभिलाषा और आशा-भरा था॥
दलित कर इसे तू काल, क्या पा गया रे।
कण भर तुझ में क्या हा ! नहीं है दया रे॥

[४]

सहृदय जन के जो कण्ठ का हार होता।
मुदित मधुकरी का जीवनाधार होता॥
वह कुसुम रँगीला धूल में जा पड़ा है।
नियति ! नियम तेरा भी बड़ा ही कड़ा है॥

वन विहंगम।

[१]

बन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत-कपोती कहीं। दिन रात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले मिले दोनो वहीं॥ बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहीं। कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की नहीं सीमा नहीं॥

[२]

रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुराग के राग में मस्त हुआ । करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ ॥ जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ । इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ ॥

[३]

सुविशाल वनों में उड़े, फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्र-छटा । कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हे देख घटा का भी मान घटा ॥ कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं आड़ मे कोई पहाड़ सटा । कहीं कुञ्ज, लता के वितान तने, सब फूलों का सौरभ था सिमटा ॥

[४]

झरने झरने की कहीं झनकार, फुहार का हार विचित्र ही था । हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब ढंग पवित्र ही था ॥ ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था । बस, जानलो, सात्विक सुन्दरता, सुख संयत शान्ति का चित्र ही था ॥

[५]

कहीं झील-किनारे बड़े बड़े ग्राम, गृहस्थ-निवास बने हुये थे । खपरैलो में कद्दू, करैलों की बेल के खूब तनाव तने हुये थे ॥ जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पक्षी घरों में घने हुये थे । सब ओर स्वदेश-स्वजाति-समाज-भलाई के ठाम ठने हुये थे ॥

[६]

इस भाँति निहारते लोक की लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिरें घर को। उन्हें देखते दूर ही से, मुख खोल के, बच्चे चलें चट बाहर को। दुलराने, खिलाने-पिलाने से था अवकाश उन्हें न घड़ी भर को। कुछ ध्यान ही था न कबूतर को, कहीं काल चढ़ा रहा है शर को॥

[७]

दिन एक बड़ाही मनोहर था, छवि छाई वसन्त की कानन मे। सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़ चेतन के तन में मन मे॥ निकले थे कपोत-कपोती कहीं, पड़े झुंड में घूम रहे वन में। पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन मे॥

[८]

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जाल को कौशल से। वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े चले बच्चे अभिज्ञ जो थे छल से॥ नहीं जानते थे, कि यहीं पर है कहीं, दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से। बस, फाँस के बाँस के बन्धन में, कर देगा हलाल हमें बल सें॥

[९]

जब बच्चे फँसे उस जाल में जा, तब वे घबड़ा उठे बन्धन में। इतने मे कबूतरी आई वहाँ; दशा देख के व्याकुल हो मन में॥ कहने लगी, "हाय हुआ यह क्या! सुत मेरे हलाल हुये बन में। अब जाल में जाके मिलूँ इनसे सुखही क्या रहा इस जीवन में"॥

[१०]

उस जाल में जाके बहेलिये के, ममता से कबूतरी आप गिरी । इतने में कपोत भी आया वहाँ, उस घोसले मे थी विपत्ति निरी ॥ लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ, घटना की घटा वह घोर घिरी । नयनो से अचानक बूंद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ॥

[११]

तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा—"हा ! अति कष्ट हुआ । निबलो ही को दैव भी मारता है, ये प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ ॥ सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया, सब ही बिधि जीवन नष्ट हुआ । इस भाँति अभागा अतृप्त ही, मैं, सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ॥

[१२]

कल-कूजन-केलि-कलोल में लिप्त हो, बच्चे मुझे जो सुखी करते । जब देखते दूर से आना मुझे, किलकारियाँ मोद से जो भरते ॥ समुहाय के, धाय के आय के पास, उठाय के पंख नहीं टरते । वही हाय ! हुये असहाय, अहो ! इस नीच के हाथ से हैं मरते ॥

[१३]

गृह-लक्ष्मी नहीं, जो जगाये रहा करती थी सदा सुख-कल्पना को । शिशु भी तो नहीं, जो उन्हीं के लिये सहता इस दारुण वेदना को ॥ वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यम यातना को । अब मैं ही वृथा इस जीवन को, रख कैसे सहूँगा विडम्बना को ॥

[१४]

यहाँ सोचता था यों कपोत, वहाँ चिड़ीमार ने मार निशाना लिया। गिर लोट गया धरती पर पक्षी, बेहलिये ने मनमाना किया॥ पल में, कुल का कुल काल कराल ने, भूत,भविष्य में भेज दिया। क्षणभंगुर-जीवन की गति का यह एक-निदर्शन है बढ़िया॥

[१५]

हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्व में, तत्व महत्व को भूलता है। उसके शिर पै खुला खड्ग सदा, बँधा धागे में धार से झूलता है॥ वह जाने विना विधि की गति को, अपनी ही गढ़न्त में फूलता है। पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक अस्त्र अवश्य ही हूलता है॥

[१६]

पर जो मन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता। परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता॥ निज भाव न भूल के, भाषा न भूल के, विघ्न व्यथा को नहीं डरता। कृत कृत्य हुआ हँसते हँसते, वह सोच-संकोच विना मरता॥

[१७]

प्रिय पाठक! आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आप को क्या उपदेश करें। शिर पै शर तानें बेहलिया काल खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें॥ दशा अन्त को होनी कपोत की ऐसी, परन्तु न आप जरा भी डरें। निज धर्म के कर्म सदैव करें, कुछ चिह्न यहाँ पर छोड़ मरें॥

फुटकल ।

[१]

बुद्धि विवेक की जोति बुझी, ममता मद मोह घटा घनो घेरी।
है न सहारो, अनेकन हैं ठग, पाप के पन्नग की रहें फेरी॥
त्यों अभिमान को कूप इतै, उतै कामना रूप सिलान की ढेरी।
तू चलु मूढ़ सँभारि अरे मन, राह न जानी है रैन अँधेरी॥

[२]

प्रतिभा की प्रभा को प्रभाव परैं नव भाव की भावना चेरी रहै।
लटि पूरो प्रसाद, अलंकृत ह्वै, वर वानी विनोद घनेरी रहै॥
अनमोल कुबेर के कोषहु सों, तिन अर्थन की लगी ढेरी रहै।
पदपंकजदासी विकासमुखी जगदंब सदा मति मेरी रहै॥

[३]

गारन अंग अनंग गरूरन गंग तरंगन संग लसे रहौ।
भूति विभूति, विभूषण व्याल विशाल विलोचन प्रेम फँसे रहौ॥
त्यों कमलाकर चाकर पै सुकृपाकर आकर हेरि हँसे रहौ।
नासि दुखै सुखरासि प्रकासि पियारे हमारे हिये में बसे रहौ॥

[४]

आनन स्वकीया को निहास्यो सपने हू नहीं,
परि परकीया में कमायो है अजस क्यों ?
गनिका के भेद पै अपार खेद पायो सदा,
जानत सिंगार-रचना को सरवस क्यों ?
हावभाव भूलो नहीं तब तो अजान अब,
कठिन समस्या हेरि होत है अलस क्यों ?
देश की भलाई भला आई न जो तोहि मन,
नाहक बिताई कविताई में बयस क्यों ?

[५]

सकल बिगारे काज परिकै सिंगार माहिं,
बीर न बन्यो रे कबौं धर्म दया दान ते।
तन जो बिभत्स मलपूरित अशुद्ध ताहि,
अद्भुत रूप दरसायो तू बखान ते॥
रौद्र रूप काल की भयानक अवाई तई,
शांत ना भयो है, कहौ निज अनुमानते।
हास्य मोहिं आवै लखि तेरी गति एरे मन,
करुना न चाहै अजौं करुना निधान ते॥

[६]

उड़त दुकूल भुजमूल सो बिलोकि,
गोरे गात अवलोकि लोक लाज को रितै रहैं।
मुकुर मैं मेरो प्रतिबिंब कमलाकर जू,
भेंटि भेंटि मेटत मनोज, मौज कै रहैं॥
आली है निराली ये प्रनाली बनमाली की,
न जानैं कौन कारन यों बासर बितै रहैं।
चित दै चितै रहैं, अधीन ह्वै नितै रहैं,
त्यों हित ही हितै रहैं, गोपाल मोहितै रहैं॥

[७]

गारी दै अगारी आज न्यारी निज मंडल ते,
नारी सुरनारी सी बिहारी को छलै गई।
धूँधरि मैं धाय धँसि धरि लीन्हों फेरि फिरि,
अंगन मैं रंग की तरंगन भिजै गई॥
चीर बल बीर पै अबीर बीर पारि इत,
अंजन लै आँगुरीन अँखियान दै गई।

होरी मैं ठगोरि डारि गोरी चित चोरी करि,
भोरी लै गुलाल को सु लालै लाल कै गई ॥

[८]

कंचुकी कसीसी कसी उरज उतंगन पै,
चूनर सुरंग की बहार अंग गोरे मैं।
मेहँदी ललाई की ललित छवि छाई,
सब तनकी निकाई ना कहत बनै थोरे मैं ॥
सावन सुहावन मैं पाय मन भावन को,
हँसि हँसि हेरि हेरि नेह के निहोरे मैं।
मैनमदमाती मनमोहनी मुदितमन,
झुकि झुकि झूमि झूमि झूलत हिंडोरे मैं ॥

[९]

शारद विशारद विशारद को पारद,
विरंचि हरि नारद अधीन कहियत है।
पंडित भुजा मैं वर वीना है प्रवीनाजू के,
एक कर अभय वरादि गहियत है ॥
चहियत पद अवलंब अंब तेरे, पाय,
हरब-कदंब ना विलंब सहियत है।
हरन हजार दुख, सुख के करन,
चारु-चरन सरन मैं सदा ही रहियत है ॥

[१०]

सेंहुड़ बबूर को लगावैं जो जतन करि,
काटैं चमेली चंपा चंदन जुहिन को।
हिंसा करि हंस और कोकिला कलापिन की,
आदर समेत पालैं वायस मलिन को ॥

गधे गजराज को समान मान होत जहाँ,
एक से कपूर औ कपास लागैं जिनको।
हमैं कमलाकर न देश दिखरावै वह,
दूर सों हमारे हैं प्रणाम कोटि तिनको॥

[११]

पद।

जय प्रभु प्रेम-पारावार।
मिटत तीनिहु ताप सेवत, छुटत विषय-विकार॥
रहत तुम महँ मगन योगी, चहत श्रुति को सार।
लहत ब्रह्मानंद निरमल, बहत दृग जलधार॥
गर्व करि ज्ञानी गये थकि, नाहिं पायो पार।
होत जापै लहर सोइ तरि जात यह संसार॥

आश्वासन।

[१]

वे उठते भी हैं अवश्य हो जो गिरते हैं।
दुर्दिन के ही बाद सुदिन सब के फिरते हैं॥
देखे दारुण दुःख वही नर फिर सुख पावे।
अवनति के उपरान्त घड़ी उन्नति की आवे॥
रवि रात बीतने पर प्रकट होते प्रातः समय में।
बस यही सोचकर आप भी धीरज रखिए हृदय में॥

[२]

होता प्रथम वसन्त, ग्रीष्म ऋतु फिर आती है।
चले पसीना, अंग आग सी लग जाती है॥
पत्ते फल या फूल बिना जल जल जाते हैं।
पशु-पक्षी भी घोर घाम से घबराते हैं॥

फिर शीघ्र देखते देखते हरी भरी होती मही।
आजाती वर्षा ऋतु भली सुख देती तत्काल ही॥

[३]

कवियों का सर्वस्व, स्वर्ग की शोभा भारी।
शिव के भी सिर चढ़ा और आकाश बिहारी॥
अमृत सहोदर चंद्र, कला जब घटने लगती।
तब होता है क्षीण और श्री लटने लगती॥
वह किन्तु शीघ्र ही पूर्ण हो, होता है फिर अभ्युदय।
है ठीक नियम यह प्रकृति का, परिवर्तन हो हर समय॥

[४]

इतने बड़े अनंत तेज की राशि दिवाकर।
तपते तीनो लोक बीच, पूजित हो घर घर॥
किन्तु समय पर राहु उन्हें ग्रस लेता जाकर।
कुछ कर सकते नहीं हज़ारो यद्यपि हैं कर॥
वह पहले होते अस्त या ग्रस्त समस्त प्रभारहित।
फिर होते मुक्त प्रकाश से युक्त पूर्व में अभ्युदित॥

[५]

जीव मरण के वाद जन्म पाता है देखो।
कृष्ण पक्ष के वाद शुक्ल आता है देखो॥
चलती है हेमन्त हवा जब ज़ोर दिखाती।
तब होता पतझाड़, न पत्ती रहने पाती॥
फिर वही वृक्ष होते हरे नवपल्लव शोभित सभी।
बस इसी तरह होंगे सुखी उन्नति-युत हमभी कभी॥

सत्यनारायण

पंडित सत्यनारायण जी कविरत्न का जन्म संवत् १९४१ माघ शुक्ला ३, चन्द्रवार को हुआ था। इनके पिता अलीगढ़ के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। बचपन ही में माता पिता का वियोग हो जाने के कारण, इनकी मौसी ने इनका पालन पोषण किया था। इनकी मौसी रियासतों में अध्यापन कार्य्य किया करती थीं और इन्हें बड़े लाड़ चाव से रखती थीं। परन्तु बाल्यावस्था में ही यह छत्रछाया भी इन पर से उठ गई। तब से धाँधूपूर (तहसील आगरा) के रघुनाथ जी के मन्दिर के ब्रह्मचारी, बाबा रघुवरदास जी ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनका भरण पोषण किया और इन्हें पढ़ाया लिखाया। इनकी मौसी इसी गद्दी की चेली थीं। इसी कारण इन्हें ब्रह्मचारी जी को सौंप गईं। मिढ़ाकुर (ज़िला आगरा) के तहसीली स्कूल से हिन्दी-मिडिल की परीक्षा पास करके सत्यनारायण जी अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। १९०८ ई० में इन्होंने एफ० ए० परीक्षा, दूसरी श्रेणी मे पास की; सन् १९१० ई० में बी० ए० की भी परीक्षा दी; परन्तु उसमे उत्तीर्ण न हुये। इन दिनों यह सेण्ट-जान्स कालेज में पढ़ते थे। एक दिन प्रिन्सिपल (अब विशप) डरेण्ट साहब ने कहा कि केवल परीक्षा पास कर लेना ही जीवन का मुख्य

उद्देश्य नहीं है। इस बात को बहुतों ने सुना और एक कान से सुनकर दूसरे से बाहर निकाल दिया। पर सत्यनारायण जी पर इसका पूरा पूरा असर हुआ—यहां तक कि उसी वर्ष से इन्होंने कालेज जाना बन्द कर दिया।

कविता का शौक़ इन्हें पहले पहल मिढ़ाकुर की पाठशाला में लगा। अधिकतर गाँव में रहने के कारण पहिले यह राजपूती होली और सवैयों-दोहों आदि की रचना किया करते थे। कभी कभी ईश-प्रेम में विह्वल होकर जो कविता कर डाली, तो उसमें वही प्राचीन भाव, कुछ नवीनता के साथ, भर दिये। आगरे में प्रत्येक अवसर पर कविता रचकर सुनाना इनका कर्तव्य सा हो गया था। इनकी इच्छा न होती तो भी लोग इन्हें ज़बरदस्ती खींच ले जाते। ये विचारे इतने सीधे सादे और भोले थे कि जो कोई खींच ले जाता उसी के साथ हो लेते! कहीं वैद्य-सम्मेलन में खड़े हड़-बहेड़े और आँवले के गुण गा रहे हैं तो कहीं किसी अपरिचित अध्यापक की विदाई पर अपनी प्रतिभा के फूल बखेर रहे हैं! किसी का दिल दुखाना तो मानो इन्होंने सीखा ही न था। चौबे न होकर भी आप "चतुर्वेदी" का सम्पादन, विना कुछ वेतन लिये करते थे। इनकी देहाती सूरत देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि ये अंग्रेज़ी का एक अक्षर भी जानते होंगे। निरभिमानी इतने थे कि एक रात इस नोट के लेखक के मकान पर टेसू के गीत गाने वाले गँवारों के साथ बेधड़क बैठकर आप भी उनके सुर में सुर मिला कर और एक कान पर हाथ रख-कर ज़ोर ज़ोर से तान अलापने लगे। कविता सुनाने का ढङ्ग इनका इतना अच्छा था कि अन्य भाषा-भाषी भी मन्त्र-मुग्ध से हो जाते थे—हिन्दी वालों का तो कहना

ही क्या है। पाश्चात्य कवियों की कविता का भी पारायण यह बड़े प्रेम से करते थे।

यों तो छोटी मोटी कितनी ही पुस्तकें इनकी निकलीं; पर देशभक्त होरेशस, उत्तर रामचरित नाटक तथा मालती-माधव विशेष महत्व के रहे। रघुवंश के कुछ सर्गों का अनुवाद, भ्रमरदूत, हंसदूत आदि पुस्तकें इनकी अप्रकाशित पड़ी हैं। सुना है इनकी छोटी मोटी रचनाओं का संग्रह भी छपने वाला है।

सत्यनारायण (अब "जी" लिखने को जी नहीं चाहता) ब्रज भाषा के तो कवि थे ही, खड़ी बोली में भी कविता करते थे। इनकी राय थी कि खड़ी बोली मे भी कविता हो सकती है और होनी भी चाहिये; साथ ही ब्रज-भाषा का 'बायकाट' करना और उस 'मरती' को मारना; एक बड़ा भारी पाप है; तुम उस पाप के सेहरे को अपने सिर क्यों बाँधा चाहते हो? ऐसा भी उन्होंने कई बार इस लेखक से कहा था। इनके व्याख्यान से प्रेम और माधुर्य बरसता था। इनकी हर एक बात में जातीयता की झलक रहती थी।

"मेरी शारदा-सदन" के अधिष्ठाता पण्डित मुकुन्दराम जी की बड़ी कन्या से सत्यनारायण का विवाह, कोई दो वर्ष हुये, हुआ था। उस दुखिया के सिवा और कोई सत्य-नारायण का कुटुम्बी नहीं, हाँ मित्र कई हैं। करीब करीब सभी आधुनिक लेखकों से इनका परिचय था। महाराज छत्रपुर, राजा कृष्णप्रसाद (हैदराबाद) तथा भारत-धर्म-महा-मण्डल आदि के द्वारा यह सम्मानित हुये थे।

एक दिन हँसी हँसी में इस नोट के लेखक ने इनसे कहा—तुम सब के ऊपर कविता लिखते फिरते हो; मेरी

मृत्यु पर लिखोगे कि नहीं ; सच बताओ । इन्होंने प्रेम के साथ डपट कर कहा—बड़े वकवादी हो, पिटोगे अगर अब के कहा तो। खेद है १६ अप्रैल १६१८ को सत्यनारायण जी चल बसे और आज मुझे यह नोट लिखना पड़ रहा है। कुछ लोगों की राय है कि इनके उठ जाने से हिन्दी-संसार का एक रत्न खो गया । सच है, पर हमारा क्या खो गया, यह हमीं जानते हैं।

बदरीनाथ भट्ट।

सत्यनारायण जी से इन्दौर में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मेरा परिचय हुआ था । सत्यनारायण जी इतने सीधे सादे वेश में थे कि इस आडम्बर के ज़माने में इन्दौर के स्वयं-सेवकों ने उन्हे पंडाल के भीतर घुसने में बाधा पहुँचाई थी।

सत्यनारायण जी का गृहस्थ-जीवन सुख से नहीं बीता। वे श्रीकृष्ण के भक्त और स्त्री आर्यसमाज की अनुयायिनी, पूर्व और पश्चिम में मेल कहाँ! उनके पदों मे उनकी अंतर्पीड़ा साफ़ साफ़ झलक रही है।

कविरत्नजी को व्रजभाषा का अंतिम कवि कहना चाहिये। उनकी रचना सरस, मधुर और ओजपूर्ण होती थी । यहाँ उनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं :—

[१]

भयो क्यों यह अनचाहत को संग।
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतंग॥
लखि तव दीपति-देह-शिखा में निरत विरह-लौ लागी।
खिंचति आप सों आप उतहि, यह ऐसी प्रकृति अभागी॥

यदपि सनेह भरी तव बतियां, तउ अचरज की बात।
योग वियोग दोउन में इकसम नित्य जरावत गात॥
जब जब लखत, तबहिं तव चरनन, वारत तन मन प्रान।
जासों अधिक कहो, तुम निरदय, चाहत प्रेम-प्रमान॥
सतत घुरावत ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत।
निराकार ह्वै जात यहां लों, तउ जन कों तरसावत॥
यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै।
सत्य बतावहु, का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै॥

[२]

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सों आये, वुही दया दरसैये॥
मानि लेउ, हम क्रूर कुढंगी कपटी कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहो तुम जन के तारनहार॥
तुम्हरे अछत तीन तेरह यह देस दसा दरसावै।
पै तुमकों यहिं जनम धरे की तनकहु लाज न आवै॥
आरत तुमहि पुकारत हम सब सुनत न त्रिभुवन राई।
अँगुरी डारि कान में बैठे धरि ऐसी निठुराई!!
अजहुं प्रार्थना यही आप सों अपनों विरुद संवारौ।
सत्य दीन दुखियन की विपता आतुर आइ निवारौ॥

[३]

अब न सतावौ!

करुणाघन इन नयनन सों, द्वै बुंदिया तो टपकावौ॥
सारे जग सो अधिक, कियो का, ऐसो हमने पाप।
नित नव दई निर्दई बनि जो देत हमैं सन्ताप॥
सांची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज।
अपनी जांघ उघारे उघरति बस अपनी ही लाज॥

तुम आछे हम बुरे सही बस, हमरो हो अपराध।
करनो हो सो अजहूं कीजै, लीजै पुण्य अगाध॥
होरी सी, जातीय प्रेम की फूंकि, न धूरि उड़ावौ।
जुग कर जोरि यही सत मांगत अलग न और लगावौ॥

[४]

बस, अब नहिं जाति सही।

विपुल वेदना विविध भांति, जो तन मन व्यापि रही॥
कबलों सहैं, अवधि सहिबे की कछु तो निश्चित कीजे।
दीनबन्धु, यह दीन-दया लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजे॥
बारन दुख-टारन, तारन में प्रभु तुम बार न लाये।
फिर क्यों करुणा करत स्वजन पै, करुणानिधि अलसाये॥
यदि जो कर्म-यातना भोगत, तुम्हरे हू अनुगामी।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी॥
अथवा विरद-बानि अपनी कछु, कै तुम ने तजि दीनी।
या कारण, हम सब अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी॥
वेद वदत गावत पुरान सब, तुम त्रय ताप नसावत।
शरणागत की पीर तनकहु तुम्हें तीर सम लागत॥
हमसे शरणापन्न दुखी कों, जाने क्यों विसरायो।
शरणागत-वत्सल सत योंहीं कोरो नाम धरायो॥

[५]

वसन्त।

सौख्य सुधा सरसाइये, सुभग सुलभ रसवन्त।
वर विनोद वरसाइये, वसुधा विपिन वसन्त॥ १॥
दस दिसि दुति दरसाइये, सजि सुरभित सुठि साज।
जग प्रिय हिय हरसाइये, रहि रसाल ऋतुराज॥ २॥

अमित अनारन अम्बन, अमल असोक अपार।
वकुल कदम्ब कदम्बन, पुनि पलास परिवार ॥ ३ ॥
जहँ कोकिल कल बोलत, ठौर ठौर स्वच्छन्द।
गुंजत षटपद डोलत, पद पद पी मकरन्द ॥ ४ ॥
जयति मधुर मन मोहन, जयति प्रकृति शृङ्गार।
सुन्दर सब विधि सोहन, कीजिय विपुल विहार ॥ ५ ॥
नित नव निरमल निरखौ, रमि सुरम्यता कुंज।
पुनि पुनि प्रमुदित परखौ, पूरन प्रियता पुञ्ज ॥ ६ ॥

[६]

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी मोरपखा सिर पैं लहरैं।
अलबेलि नवेलिन बेलिनु मे नवजीवन जोति छटा छहरैं॥
पिक भृंग सुगुंज सोई मुरली सरसों सुभ पीतपटा फहरैं।
रसवन्त विनोद अनंत भरे ब्रजराज बसन्त हिये बिहरैं॥

[७]

ऋतुराज आज कैसा प्यारा बसन्त आया।
जिसका प्रभाव पावन सारे जहां मे छाया॥
कैसे रसाल बौरे मृदुमंजरी सजा के।
फैली सुगंध सौंधी भौरों का मन लुभाया॥
कलरव कलाप कोमल करती है कोकिलायें।
अलिपुंज ने मनोहर निज गुंज-गान गाया॥
देखो विचित्र शोभा सरसों दिखा रही है।
सुन्दर सुवर्ण रंजित क्या दृश्य जी को भाया॥
फूले हैं द्रुम रंगीले लतिकायें लहलहाती।
सबने ही अपने अपने उत्साह को दिखाया॥
ऐसा सुराज पाके हे हिन्द के सपूतो।
प्रफुलित हो काम कीजे प्रकृती ने ये बताया॥

कृष्ण-बिरह की बेलि नई ता उर हरियाई ।
सोचन अश्रु-विमोचन दोउ दलबल अधिकाई ॥
पाइ प्रेम रस बढ़ि गई, तन तरु लिपटी धाइ ।
फैलि फूटि चहुँघा छई, बिथा न बरनी जाइ ॥
अकथ ताकी कथा ॥१०॥

कहति विकल मन महरि कहाँ हरि ढूँढ़न जाऊँ ।
कब गहि लालन ललकत-मन गहि हृदय लगाऊँ ॥
सीरी कब छाती करौं, कब सुत दरसन पाउँ ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहि कर धाइ पठाउँ ॥
सँदेसो श्याम पै ॥११॥

पढ़ी न अक्षर एक, ज्ञान सपने ना पायो ।
दूध दही चारत में सबरो जनम गमायो ॥
मात पिता बैरी भये, शिक्षा दई न मोहि ।
सबरे दिन यों ही गये, कहा कहे तें होहि
मनहिं मन में रही ॥१२॥

सुनी गरग सों अनुसूया की पुण्य कहानी ।
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी ॥
विशद-ब्रह्मविद्या-पगी मैत्रेयी तिय-रत्न ।
शास्त्र-पारगी गारगी, मन्दालसा सयत्न ॥
पढ़ीं सब की सबै ॥१३॥

निज निज जनम धरन को फल उननेही पायो ।
अविचल अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायो ॥
उदाहरनि उज्ज्वल दयो, जगकी तियनि अनूप ।
पावन जस दस-दिसि छयो, उनको सुकृति-सरूप ॥
पाइ विद्या बलैं ॥१४॥

नारी-शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी ।
ते स्वदेस-अवनति प्रचंड पातक अधिकारी ॥
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ ।
विद्या-बल लहि मति परम अबला सबला होइ ॥
लखौ अजमाइ के ॥१५॥

कौनैं भेजौं दूत, पूत सों बिथा सुनावै ।
बातन में बहलाइ, जाइ ताकों यहँ लावै ॥
त्याग मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन को साथ ।
सात समुन्दर पै भयो, दूर द्वारिकानाथ ॥
जाइगो को उहाँ ॥१६॥

नास जाइ अक्रूर क्रूर तेरो बजमारे ।
बातन में दै सवनि लै गयो प्रान हमारे ॥
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम ।
कहँ मूरति रमनीय दोउ श्याम और बलराम ॥
रही अकुलाइ मैं ॥१७॥

अति उदास, बिन आस सबै तन-सुरति भुलानी ।
पूत प्रेम सों भरी परम दरसन ललचानी ॥
विलपति कलपति अति जबै, लखि जननी निज श्याम ।
भगत भगत आये तबै, भाये मन अभिराम ॥
भ्रमर के रूप में ॥१८॥

ठिठक्यो अटक्यो भ्रमर देखि जसुमति महरानी ।
निज दुखसो अति दुखी ताहि मन में अनुमानी ॥
तिहि दिसि चितवत चकित चित सजल जुगुल भरि नैन ।
हरि-वियोग-कातर अमित आरत गद्-गद बैन ॥
कहन तासों लगी ॥१९॥

तेरो तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतै सुनि।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि॥
पीत रेख तव कटि बसत, उत पीताम्बर चारु।
विपिन-बिहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगारु॥
जुगुल रस के चखा॥२०॥

याही कारन निज प्यारे ढिग तोहि पठाऊँ।
कहियो वासों बिथा सबै जो अबै सुनाऊँ॥
जैयो षटपद धाय कें करि निज कृपा बिसेस।
लैयो काज बनाय कें, दै सो यह सन्देस॥
सिदोसों लौटियो॥२१॥

जननी-जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सों प्यारी।
सो तजि सबरो मोह साँवरे तुमनि बिसारी॥
का तुम्हरी गति मति भई, जो ऐसो बरताव।
किधौं नीति बदली नई, ताको पस्यो प्रभाव॥
कुटिल विष को भस्यो॥२२॥

माखन कर पौंछन सों चिक्कन चारु सुहावत।
निधुवन श्याम तमाल रह्यो जो हिय हरसावत॥
लागत ताके लखन सों, मति चलि वाकी ओर।
बात लगावत सखन सों आवत नन्द किशोर॥
कितहु सों भाजिकें॥२३॥

वुही कलिन्दी कूल कदम्बन के बन छाये।
बरन बरन के लता-भवन मन हरन सुहाये॥
वुही कुन्द की कुंज पे, परम-प्रमोद समाज।
पै मुकुन्द बिन बिस भये, सारे सुखमा साज॥
चित्त वाँही धस्यो॥२४॥

लगत पलास उदास शोक में अशोक भारी ।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी ॥
तजि तजि निज प्रफुलित पनौ, विरह-विथित अकुलात ।
जड़हू ह्वै चेतन मनौ, दीन मलीन लखात ॥
एक माधौ बिना ॥२५॥

नित नूतन तृन डारि सघन वंसीबट छैयाँ ।
फेरि फेरि कर-कमल, चराई जो हरि गैयाँ ॥
ते तित सुधि अतिही करत, सब तन रही झुराय ।
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, व्याकुल उदर अघाय ॥
उठाये म्हौं फिरैं ॥२६॥

बचन-हीन ये दीन गऊ दुख सों दिन वितवत ।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत उत चितवत ॥
एक संग तिनको तजत, अलि कहियो, ए लाल ।
क्यो न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल ॥
मोह ऐसो तज्यो ॥२७॥

नील-कमल-दल-श्याम जासु तन सुन्दर सोहै ।
नीलाम्बर-वसनाभिराम विद्युत मन मोहै ॥
भ्रम में परि घनश्याम के, लखि घन श्याम अगार ।
नाचि नाचि ब्रजधाम के, कूकत मोर अपार ॥
भरे आनन्द में ॥२८॥

यहँ को नव नवनीत मिल्यो मिसरी अति उत्तम ।
भला सके मिलि कहाँ सहर में सद याके सम ॥
रहैं यही लालो अजहुँ, काढ़त यहि जब भोर ।
भूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखन चोर ॥
बँध्यो निज टेव को ॥२९॥

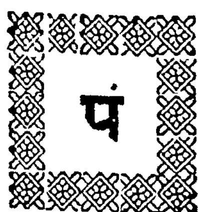
टिमटिमाति जातीय जोति जो दीप-शिखा सी ।
लगत वाहिरी ब्यारि बुझन चाहत अबला सी ॥
शेष न रह्यो सनेह को, काहू हिय में लेस ।
कासों कहिये गेह को देसहि में परदेस ॥
भयो अब जानिये ॥४०॥

[६]

गिरिजा सिन्धुजा सम्बाद ।

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई श्री गिरि सुता दुवारे ।
बिघ्न-बिदारण मातु कहाँ ? यह भाख्यो लागि किवारे ॥
कष्ट-निवारन मंगल-करनी जाके सब गुन गावैं ।
मेरे द्वार पास तिहि कारण बिघन रहन नहिं पावैं ॥
कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते करै जो तुव प्रतिपालो ?
होगो वहाँ जाय किन देखो वलि पै पर्यो कसालो ॥
गरल-अहारी कहाँ ? बताओ लेहु आप सों लेखो ।
बार बार का पूँछति मोको जाय पूतना देखो ॥
बहुरि पियारी मोहि बताओ भुजँग-नाह परवीनो ?
देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनो ॥
कहाँ पशुपती मोहि दिखाओ ? गोकुल डगर पधारो ।
शैलपती कहँ ? कर में धारैं गोवरधनहि निहारो ॥
सत्य नरायण हँसि के कमला भीतर चरण पधारै ।
अस आमोद प्रमोद दोऊ को हमरे शोक निवारै ॥

मन्नन द्विवेदी



पंडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०, एम० ए० एस० बी०, रापती नदी तटस्थ गजपुर गाँव, ज़िला गोरखपुर के प्रसिद्ध रईस, जमीन्दार और व्रजभाषा के अच्छे कवि पंडित मातादीन द्विवेदी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यपगोत्रीय मंगलायल के दुबे हैं। इनका जन्म सं० १९४२ में हुआ। सं० १९६५ में इन्होंने गवर्नमेंट कालेज बनारस से बी० ए० की परीक्षा पास की। जब ये अंग्रेज़ी के छठें दर्जे में पढ़ते थे तभी से पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने लग गये थे। कविता करने और लेख लिखने का शौक़ इनको बालकपन से ही है।

आजकल ये आज़मगढ़ ज़िले में तहसीलदार हैं। काम से बहुत कम अवकाश मिलने पर भी ये कुछ न कुछ साहित्य-सेवा किया करते हैं। अब तक इन्होंने ये पुस्तकें लिखी हैं:—

बन्धु विनय (पद्य), धनुषभंग (पद्य), रणजीतसिंह का जीवन-चरित, आर्य-ललना, गोरखपुर विभाग के कवि, भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुरुष, प्रेम।

पंडित मन्नन द्विवेदी बड़े मिलनसार, सरस हृदय, देश-भक्त और हिन्दी के अच्छे लेखक है। यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते है:—

[१]

जन्म दिया माता सा जिसने किया सदा लालन पालन ।
जिसके मिट्टी जल से ही है रचा गया हम सब का तन ॥
गिरिवर गण रक्षा करते हैं उच्च उठा के शृङ्ग महान ।
जिसके लता द्रुमादिक करते हमको अपनी छाया दान ॥
माता केवल बाल-काल में निज अंकम में धरती है ।
हम अशक्त जब तलक तभी तक पालन पोषण करती है ॥
मातृ-भूमि करती है मेरा लालन सदा मृत्यु पर्यंत ।
जिसके दया प्रवाहों का नहिं होता सपने में भी अन्त ॥
मर जाने पर कण देहों के इसमें ही मिल जाते हैं ।
हिन्दू जलते यवन इसाई दफ़न इसी में पाते हैं ॥
ऐसी मातृ-भूमि मेरी है स्वर्गलोक से भी प्यारी ।
जिसके पद कमलो पर मेरा तन मन धन सब बलिहारी ॥

[२]

चमेली ।

सुन्दरता की रूप राशि तुम दयालुता की खान चमेली ।
तुमसी कन्यायें भारत को कब देगा भगवान चमेली ॥१॥
चहक रहे खग वृन्द वनों में अब न रही है रात चमेली ।
अमल कमल कुसुमित होते हैं देखो हुआ प्रभात चमेली ॥२॥
प्रेम मग्न प्रेमीजन देखो करे प्रभाती गान चमेली ।
जिसने तुमसा वृक्ष लगाया कर माली का ध्यान चमेली ॥३॥
जग यात्रा में सहने होंगे कभी कभी दुख भार चमेली ।
काट छाँट से मत घबराना यह भी उसका प्यार चमेली ॥४॥
छिन्न भिन्न डालों का होना अपने ही हित जान चमेली ।
हरे हरे पत्ते निकलेंगे सुमनों के सामान चमेली ॥५॥

भ्रमर भीर गुञ्जार करेगी तुझसे हास बिलास चमेली ।
दिगदिगन्त सुरभित होवैगा पाकर सुखद सुवास चमेली ॥६॥
अटल नियम को भूल न जाना जग में सबका नाश चमेली ।
अस्त अंशुमाली भी होता घूम अखिल आकाश चमेली ॥७॥
नहीं रहैगा मूल न शाखा नेहीं मनोहर फूल चमेली ।
निराकार से मिलकर होना प्रियतम पद की धूल चमेली ॥८॥

[३]

चिन्ता ।

हरियाली निराली दिखाई पड़े,
शुभ शान्ति सभी थल छाई हुई ।
पति संजुत सुन्दरी जा रही है,
श्रम चिन्तित ताप सताई हुई ॥ १ ॥
सरिता उमड़ी तट जोड़ी खड़ी,
अति प्रेम से हाथ मिलाये हुए ।
सुकुमारी सनेह से सींचती है,
वह प्रीतम भार उठाये हुए ॥ २ ॥
दिन बीत गया निशि चन्द्र लसै,
नभ देख लो शोभती तारावली ।
इस मोद मई वर यामिनी में,
यह कामिनी कन्त ले भवन चली ॥ ३ ॥
मद माता निखाद, नहीं सुनता,
मझधार में नैया लगाये हुए ।
हे कन्हैया ! उतार दे पार हमे,
हम तीन घड़ी से हैं आये हुए ॥ ४ ॥

[४]

उद्‌बोधन।

हिमालय सर है उठाये ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है।
उधर शरद के हैं मेघ छाये, इधर फटिक जल छलक रहा है ॥१॥
इधर घना बन हरा भरा है, उपल पै तरुवर उगाया जिसने।
अचम्भा इसमें है कौन प्यारे, पड़ा था भारत जगाया उसने ॥२॥
कभी हिमालय के शृङ्ग चढ़ना, कभी उतरते है थक के श्रम से।
थकन मिटाना है मंजु झरना, बटोही छाये में बैठ थक के ॥३॥
कृशोदरी गन कहीं चली हैं, लिये हैं बोझा छुटी हैं बेनी।
निकल के बहती हैं चन्द मुख से, पसीना बनकर छटा को श्रेनी ॥४॥
गगन समीपी हिमाद्रि शिखरें, घरों मे जलती है दीप माला।
यही अमरपुर उधर है सुरगण, इधर रसीली हैं देव बाला ॥५॥
गिरीश भारत का द्वार पट है, सदा से है यह हमारा संगी।
नृपति भगीरथ की पुण्यधारा, बगल में बहती हमारी गंगी ॥६॥
बता दे गंगा कहाँ गया है, प्रताप पौरुष विभव हमारा?
कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ है अर्जुन, कहाँ है भारत का कृष्ण प्यारा ॥७॥
सिखा दे ऐसा उपाय मोहन, रहै न भाई पृथक हमारे।
सिखा दे गीता की कर्म शिक्षा, बजा के वंशी सुना दे प्यारे ॥८॥
अँधेरा फैला है घर में माधो, हमारा दीपक जला दे प्यारे।
दिवाला देखो हुआ हमारा, दिवाली फिर भी देखा दे प्यारे ॥९॥
हमारे भारत के नवनिहालो, प्रभुत्व वैभव विकाश धारे।
सुहृद हमारे हमारे प्रियवर, हमारी माता के चख के तारे ॥१०
न अब भी आलस में पड़ के बैठो, दशो दिशा मे प्रभा है छाई।
उठो अँधेरा मिटा है प्यारे! बहुत दिनों पर दिवाली आई ॥११॥

मैथिलीशरण गुप्त



बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सं० १६४३ में चिरगॉव, झाँसी मे हुआ। इनके पिता का नाम बाबू श्री रामचरण जी है। वे भी कविता से बड़ा प्रेम रखते हैं और स्वयं भी कवि हैं। गुप्त जी पॉच भाई हैं, सब के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—महारामदास, रामकिशोर, मैथिलीशरण, सियारामशरण और चारुशीलाशरण। इनमे बाबू सियारामशरण भी अच्छी रचना करते हैं। इनका लिखा हुआ मौर्यविजय काव्य बहुत सुन्दर है। गुप्त जी अभी तक संतान-रहित हैं।

वर्तमान हिन्दी कवियो में बाबू मैथिलीशरण जी का नाम हिन्दी-संसार में सब से अधिक प्रसिद्ध है। इनकी रचना व्याकरण सम्मत और विशुद्ध होती है। इनकी लिखी पुस्तकों में सब से बड़ी पुस्तक भारत-भारती है। इसका प्रचार भी बहुत है। इनकी लिखी हुई कुल पुस्तकों के नाम ये हैं:—

भारत-भारती, जयद्रथ-वध, रंग में भंग, किसान, पद्य-प्रबन्ध, शकुन्तला, विरहिणी ब्रजांगना, पत्रावली, वैतालिक, चन्द्रहास, तिलोत्तमा पलासी का युद्ध। साकेत नाम का एक महाकाव्य गुप्त जी आजकल लिख रहे है। इसका कुछ अंश 'सरस्वती' मे निकल भी चुकी है। उच्च श्रेणी के विद्यार्थियो

और नवयुवकों में इनकी कविता ने हिन्दी के लिये बड़ा अनुराग उत्पन्न कर दिया है। ये संस्कृत भी जानते हैं और बँगला भाषा में भी काफ़ी दख़ल रखते हैं।

गुप्तजी बड़े सरल हृदय, मिलनसार, शुद्धप्रकृति और मिथ्याभिमान-रहित पुरुष हैं। इनकी कविता के नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं:—

[१]

(मातृ-भूमि)

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
बन्दी जन खग वृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की;
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥१॥
मृतक-समान अशक्त, विवश आँखों को मीचे,
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे।
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अङ्क मे त्राण किया था।
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
तू क्यों न हमारी पूज्य हो? मातृभूमि, मातामही ॥२॥
जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुये हैं,
घुटनों के बल सरक सरक [illegible] हुये हैं।
परमहंस-स[illegible] में सब
जिस[illegible] भरे [illegible] ।

हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में ॥३॥
पालन-पोषण और जन्म का कारण तूही,
वक्षः स्थल पर हमें कर रही धारण तूही।
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुये हैं अहो! तुझी से तुझ पर सारे।
हे मातृभूमि! जब हम कभी शरण न तेरी पायँगे,
बस तभी प्रलय के पेट मे सभी लीन हो जायँगे ॥४॥
हमे जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।
हे मातृभूमि! उपजें न जो तुझसे कृषि-अंकुर कभी,
तो तड़प तड़प कर जल मरें जठरानलमें हम सभी ॥५॥
पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।
फिर अन्त-समय तूही इसे अचल देख अपनायगी,
हे मातृभूमि! यह अन्त में तुझमें ही मिल जायगी ॥६॥
जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता।
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता।
उन सब मे तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्व है,
हे मातृभूमि तेरे सदृश किसका महा महत्व है ॥७॥

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है।
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फ़र्श नहीं मख़मल से कम है।
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्र प्रकाश है,
हे मातृभूमि! दिन में तरणि करता तम का नाश है॥८॥
सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं।
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नोंवाली।
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृभूमि! वसुधा, धरा तेरे नाम यथार्थ हैं॥९॥
दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरु राजि कर रही पूजा तेरी।
मृदु मलय-वायु मानों तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही,
हे मातृभूमि! किसका न तू सात्विक भाव बढ़ा रही?१०
क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि! तू करती सब का त्राण है,
हे मातृभूमि सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है॥११॥
आते ही उपकार याद हे माता! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्तिभावों का प्रेरा।

तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें ।
वह शक्ति कहाँ, हा ! क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो ?
हम मातृभूमि ! केवल तुझे शीश झुका सकते अहो !१२॥
कारण-वश जब शोक-दाह से हम रहते हैं,
तब तुझ पर ही लोट लोट कर दुख सहते हैं ।
पाखण्डी भी धूल चढ़ा कर तनु में तेरी,
कहलाते हैं साधु, नहीं लगती है देरी ।
इस तेरी ही शुचि धूल में मातृभूमि ! वह शक्ति है,
जो क्रूरों के भी चित्त मे उपजा सकती भक्ति है ॥१३॥
कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है ।
तुझको सारे जीव एक से ही प्यारे है,
कर्म्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं ।
हे मातृभूमि ! तेरे निकट सब का सम सम्बन्ध है,
जो भेद मानता वह अहो ! लोचन युत भी अन्ध है ॥१४
जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान् ! कभी हम रहें न न्यारे ।
लोट लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमे मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे ।
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे,
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे ॥१५॥

[२]

स्वर्ग-सहोदर ।

जितने गुण सागर नागर हैं,
कहते यह बात उजागर हैं ।

अब यद्यपि दुर्बल, आरत है,
पर भारत के सम भारत है ॥ १ ॥
बसते वसुधा पर देश कई,
जिनकी सुषमा सविशेष नई।
पर है किसमें गुरुता इतनी,
भरपूर भरी इसमें जितनी ॥ २ ॥
गुण गुम्फित है इसमे इतने,
पृथिवी पर हैं न कहीं जितने।
किसको इतनी महिमा वर है ?
इस पै सब विश्व निछावर है ॥ ३ ॥
जन तीस करोड़ यहाँ गिन के,
कर साठ करोड़ हुये जिनके।
जगमें वह कार्य मिला किसको,
यह देश न साध सके जिसको ? ॥ ४ ॥
उपजें सब अन्न सदा जिसमें,
अचला अति विस्तृत है इसमें।
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहाँ,
समझो सब की भवभूमि यहाँ ॥ ५ ॥
प्रिय दृश्य अपार निहार नये,
छवि वर्णन मे कवि हार गये।
उपमा इसकी न कहीं पर है,
धरणी-धर ईश-धरोहर है ॥ ६ ॥
जल-वायु महा हितकारक है,
रुज-हारक, स्वास्थ्य-प्रसारक है।
द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है,
क्रम षड् ऋतु का अति उत्तम है ॥ ७ ॥

सुखकारक ऊपर श्याम घटा,
दुखहारक भूपर शस्य-छटा ।
दिन में रवि लोक-प्रकाशक है,
निशि मे शशि ताप विनाशक ॥ ८ ॥
छविमान कहीं पर खेत हरे,
बन-बाग़ कहीं फल-फूल भरे ।
गिरि तुङ्ग कहीं मन मोह रहे,
सब ठौर जलाशय सोह रहे ॥ ९ ॥
रतनाकर की रसना पहने,
बहु पुष्प-समूह बने गहने ।
परिधान किये तृण-चीर हरा,
अति सुन्दर है यह दिव्य धरा ॥ १० ॥
बहु चम्पक, कुन्द, कदम्ब बड़े,
बकुलादि अनन्त अशोक खड़े ।
कितने न इसे वर वृक्ष मिले,
अति चित्र-विचित्र प्रसून खिले ॥ ११ ॥
मृदु, बेर, सुखप्रिय, जम्बु फले,
कदली, शहतूत, अनार भले ।
फलराज रसाल समान कहीं,
फल और मनोहर एक नहीं ॥ १२ ॥
कृषि केसर की भरपूर यहाँ
मृग-गन्ध, कुसुम्भ, कपूर यहाँ ।
समझो मधु का बस कोश इसे,
रस है इतने उपलब्ध किसे ? ॥ १३ ॥
अमृतोपम अद्भुत शक्तिमयी,
जिनकी सुगुण-श्रुति नित्य नई ।

इसमें बहु औषधियाँ खिलतीं,
जल में, थल में, तल में मिलतीं ॥ १४ ॥
कृषि में इसने जग जीत लिया,
किसने इस सा व्यवसाय किया ?
सन, रेशम, ऊन, कपास अहो,
उपजा इतना किस ठौर कहो ॥ १५ ॥
अवनी-उर में बहु रत्न भरे,
कनकादिक धातु-समूह धरे।
वह कौन पदार्थ मनोरम है,
जिसका न यहाँ पर उद्गम है ? ॥ १६ ॥
कवि, पण्डित, वीर, उदार महा,
प्रकटे मुनि धीर अपार यहाँ।
लख के जिनकी गति के मग को,
गुरुज्ञान सदा मिलता जग को ॥ १७ ॥
बहु भाँति बसे पुर-ग्राम घने,
अब भी नभ-चुम्बक धाम बने।
सब यद्यपि जीर्ण-विशीर्ण पड़े,
पर पूर्व दशास्मृति-चिह्न खड़े ॥ १८ ॥
अब भी वन में मिल के चरते,
बहु गो-गण हैं मन को हरते।
इन सा उपकारक जीव नहीं,
पय-तुल्य न पेय पदार्थ कहीं ॥ १९ ॥
मद-मत्त कहीं गज झूम रहे,
मुद मान कहीं मृग घूम रहे।
शुक, चातक, कोकिल बोल रहे,
कर नृत्य शिखी-गण डोल रहे ॥ २० ॥

शतपत्र कहीं पर फूल रहे,
मधु-मुग्ध मधुव्रत भूल रहे ।
कल हंस कहीं रव हैं करते,
जल-जीव प्रमोद भरे तरते ॥ २१ ॥
शुचि शीतल-मन्द सुगन्ध सनी,
फिरती पवन प्रिय नारि बनी ।
हरती सब का श्रम सेवन में,
भरती सुख है तन में, मन में ॥ २२ ॥
जगतीतल में वह देश कहाँ,
निकले गिरि-गन्ध विशेष जहाँ ?
इसमें मलयाचल शोभन है,
जिसमें घन चन्दन का वन है ॥ २३ ॥
सिर है गिरिराज अहो ! इसका,
इस भाँति महत्व कहो किसका ?
तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा,
विभवालय है वह किन्तु बड़ा ॥ २४ ॥
बर विष्णुपदी बहती इसमें,
रवि की तनया रहती इसमें ।
अघ-नाशक तीर्थ अनेक यहाँ,
मिलती मन को चिर-शान्ति जहाँ ॥ २५ ॥
क्षिति-मण्डल था जब अज्ञ सभी,
यह था अति उन्नत, सभ्य तभी ।
बहु देश समुन्नत जो अब हैं,
शिशु-शिष्य इसी गुरु के सब हैं ॥ २६ ॥
शुचि शौर्य-कथा इतनी किसकी,
जग विश्रुत है जितनी इसकी ?

अमरों तक का यह मित्र रहा,
अति दिव्य चरित्र पवित्र रहा ॥ २७ ॥
ध्रुव धर्म्ममयी इसकी क्षमता,
रखती न कहीं अपनी समता।
गरिमा इसकी न कहाँ पर है,
किससे न लिया इसने कर है? ॥ २८ ॥
श्रुति, शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियाँ,
बहु अन्य सुधी-गण की कृतियाँ।
नय-नीति-नियन्त्रित तन्त्र बने,
सब ही विषयों पर ग्रन्थ घने ॥ २९ ॥
कविता, कल नाट्य, सुशिलपकला,
इस भाँति बढ़ी किस ठौर भला?
किसपै न रहा इसका कर है,
किस सद्गुण का न यहाँ घर है? ॥ ३० ॥
सुख मूल सनातन धर्म रहा,
अनुकूल अलौकिक कर्म्म रहा।
वर वृत्त बढ़े इतने किसके?
नर क्या; सुर भी वश थे इसके ॥ ३१ ॥
सुख का सब साधन है इसमें,
भरपूर भरा धन है इसमें।
पर हा! अब योग्य रहे न हमीं,
इससे दुख की जड़ आन जमीं ॥ ३२ ॥
सुन के इसकी सब पूर्व कथा,
उठती उर में अब घोर व्यथा।
इसमें इतना घृत क्षीर बहा,
जितना न कहीं पर नीर रहा ॥ ३३ ॥

अब दीनदयालु दया करिये,
सब भाँति दरिद्र दशा हरिये।
भरिये फिर वैभव नित्य नया,
चिरकाल हुआ सुख छूट गया॥ ३४॥
अवलम्ब न और कहीं इसको,
तजिये हरि, हाय! नहीं इसको।
खलता दुख-दैन्य महोदर है,
यह भारत स्वर्ग सहोदर है॥ ३५॥

[३]

ग्राम्य जीवन।

अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे।
थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है?॥
यहाँ शहर की बात नहीं है, अपनी अपनी घात नहीं है।
आडम्बर का नाम नहीं है, अनाचार का काम नहीं है॥
वे रईस सरदार नहीं हैं, वे मछुए बाज़ार नहीं हैं।
कुटिल कटाक्ष-वाण के द्वारा, जाता नहीं पथिक जन मारा॥
भोगों में वह भक्ति नहीं है, अधिक इन्द्रियाशक्ति नहीं है।
आलस में अनुरक्ति नहीं है, रुपयों में ही शक्ति नहीं है॥
वह अदालती रोग नहीं है, अभियोगों का योग नहीं है।
मरे फ़ौजदारी की नानी दीवाना करती दीवानी॥
यहाँ गँठकटे चोर नहीं हैं, तरह तरह के शोर नहीं हैं।
गुण्डों की न यहाँ बन आती, इज्ज़त नहीं किसी की जाती॥
सीधे सादे भोले भाले, है ग्रामीण मनुष्य निराले।
एक दूसरे की ममता है, सब मे प्रेममयी समता है॥
यद्यपि वे काले हैं तन से, पर अति ही उज्वल हैं मन से।
अपना या ईश्वर का बल है, अन्तःकरण अतीव सरल है॥

आयः सब की सब विभूति है, पारस्परिक सहानुभूति है।
कुछ भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं है, कहीं कपट का लेश नहीं है॥
सब कामों में हिस्से लेकर, पति को अति सहायता देकर।
प्राणों सेभी अधिक प्यारियाँ, हैं अर्द्धाङ्गी ठीक नारियाँ॥
गुदने गुदे हुये हैं तन में, भरी सरलता है चितवने में।
थोड़े से गहने पहने हैं, क्या सब आपस में बहनें हैं॥
बात बात में अड़ने वाली, गहनो के हित लड़ने वाली।
दिखलाने वाली दुर्गतियाँ, हैं न यहाँ ऐसी श्रीमतियाँ॥
छोटे से, मिट्टी के घर हैं, लिपे-पुते हैं, स्वच्छ सुघर हैं।
गोपद-चिह्नित आँगन तट हैं, रक्खे एक ओर जल-घट हैं॥
खपरैलों पर बेलें छाई, फूली, फली, हरी, मन भाई।
काशीफल-कूष्माण्ड कहीं हैं, कहीं लौकियाँ लटक रहीं हैं॥
है जैसा गुण यहाँ हवा में, प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में।
सन्ध्या-समय गाँव के बाहर, होता नन्दन-विपिन निछावर॥
श्रमसहिष्णु सब जन होते हैं, आलस में न पड़े सोते हैं।
दिन दिन भर खेतों पर रहकर, करते रहते काम निरंतर॥
अतिथि कहीं जब आ जाता है, वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे, कोई सम्बन्धी हो जैसे॥
हुआ कभी कोई फ़रयादी, तो न उसे आती बरबादी।
देती याद उन्हें चौपालें, फिर क्यों वे घूँसें घर घालें?॥
जगती कहीं ज्ञान की ज्योती, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते॥

[४]

जयद्रथ-वध।

उस काल पश्चिम ओर रवि की रह गई बस लालिमा,
होने लगी कुछ कुछ प्रगट सी यामिनी की कालिमा।

सब कोक-गण शोकित हुये विरहाग्नि से डरते हुये,
आने लगे निज निज गृहों को विहग रव करते हुये ॥१॥
यों अस्त होना देख रवि का पार्थ मानों हत हुये,
मुँदते कमल के साथ वे भी विमुद, गौरव-गत हुये ।
लेकर उन्होंने श्वास ऊँचा बदन नीचा कर लिया,
संग्राम करना छोड़ कर गाण्डीव रथ में रख दिया ॥२॥
'पूरी हुई होगी प्रतिज्ञा पार्थ की' इससे सुखी,
पर चिह्न पाकर कुछ न उसके व्यग्र चिन्तायुत दुखी ।
राजा युधिष्ठिर उस समय दोनों तरफ़ क्षोभित हुये,
प्रमुदित न विमुदित उस समय के कुमुद-सम शोभित हुये ॥३॥
इस ओर आना जान निशि का थे मुदित निशिचर बड़े,
उस ओर प्रमुदित शत्रुओं के हाथ मूँछों पर पड़े ।
दुर्योधनादिक कौरवों के हर्ष का क्या पार था ।
मानों उन्होंने पा लिया त्रैलोक्य का अधिकार था ॥४॥
बोला जयद्रथ से वचन कुरुराज तब सानन्द यों—
"हे वीर ! रण मे अब नहीं तुम घूमते स्वच्छन्द क्यों ?
अब सूर्य के सम पार्थ को भी अस्त होते देख लो,
चल कर समस्त विपक्षियों को व्यसन होते देख लो ॥५॥
कह कर वचन कुरुराज ने यों हाथ उसका धर लिया,
कर्णादि के आगे तथा उसको खड़ा फिर कर दिया ।
उस काल निर्मल मुकुर-सम उसका वदन दर्शित हुआ,
पाकर यथा अमरत्व वह निज हृदय में हर्षित हुआ ॥६॥
खल शत्रु भी विश्वास जिनके सत्य का यों कर रहे,
निश्चिन्त, निर्भय, सामने ही मोद-नद में तर रहे ।
है धन्य अर्जुन के चरित को, धन्य उनका धर्म है,
क्या और हो सकता अहो ! इससे अधिक सत्कर्म है ॥७॥

याचक ! विलोको तो ज़रा, है दृश्य क्या मार्मिक अहो !
देखा कहीं अन्यत्र भी क्या शील यों धार्मिक कहो ?
कुछ देख कर ही मत रहो, सोचो विचारो चित्त में,
बस तत्व है अमरत्व का वर-वृत्तरूपी वित्त में ॥८॥
यह देख लो, निज धर्म का सन्मान ऐसा चाहिये;
सोचो हृदय में सत्यता का ध्यान जैसा चाहिये।
सहृदय जिसे सुनकर द्रवित हों चरित वैसा चाहिये ?
अति भव्य भावों का नमूना और कैसा चाहिये ! ॥९॥
क्या पाप की ही जीत होती, हारता है पुण्य ही ?
इस दृश्य को अवलोककर तो जान पड़ता है यही।
धर्मार्थ दुःख सहे जिन्होंने पार्थ मरणासन्न हैं,
दुष्कर्म ही प्रिय हैं जिन्हें वे धार्तराष्ट्र प्रसन्न हैं ! ॥१०॥
परिणाम सोच न भीम सात्यकि रह सके क्षणभर खड़े,
हा कृष्ण ! कह हरि के निकट बेहोश होकर गिर पड़े।
यों देखकर उनकी दशा दृग बन्द कर अरविन्द-से—
कहने लगे अर्जुन वचन इस भाँति फिर गोविन्द से ॥११॥
"रहते हुये तुम सा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं !
इससे मुझे है जान पड़ता भाग्य-बल ही सब कहीं।
जलकर अनल में दूसरा प्रण पालता हूँ मैं अभी,
अच्युत ! युधिष्ठिर आदि का अब भार है तुम पर सभी ॥१२॥
"सन्देश कह दीजो यही सब से विशेष विनय भरा—
खुद ही तुम्हारा जन धनञ्जय धर्म के हित है मरा।
तुम भी कभी निज प्राण रहते धर्म को मत छोड़ियो,
वैरी न जब तक नष्ट हों मत युद्ध से मुँह मोड़ियो ॥१३॥
"थे पाण्डु के सुत चार ही यह सोच धीरज धारियो,
हों जो तुम्हारे प्रण-नियम उनको कभी न बिसारियो।

है इष्ट मुझको भी यही यदि पुण्य मैंने हों किये,
तो जन्म पाऊँ दूसरा मैं बैर-शोधन के लिये ॥१४॥
"कुछ कामना मुझको नहीं है इस दशा में स्वर्ग की,
इच्छा नहीं रखता अभी मैं अल्प भी अपवर्ग की।
हा! हा! कहाँ पूरी हुई मेरी अभी आराधना?
अभिमन्यु विषयक बैर की है शेष अब भी साधना ॥१५॥
"कहना किसी से और मुझको अब न कुछ सन्देश है,
पर शेष दो जन हैं अभी जिनका बड़ा ही क्लेश है।
कृष्णा सुभद्रा से कहूँ क्या? यह न होता ज्ञात है,
मैं सोचता हूँ किन्तु हा! मिलती न कोई बात है ॥१६॥
"जैसे बने समझा बुझाकर, धैर्य सब को दीजियो;
कह दीजियो, मेरे लिये मत शोक कोई कीजियो।
अपराध जो मुझसे हुये हों वे क्षमा करके सभी,
कृपया मुझे तुम याद करियो स्वजन जान कभी कभी ॥१७॥
"हा धर्मधीर अजात शत्रो! आर्य्य भीम! हरे! हरे!
हा! प्रिय नकुल! सहदेव भ्रातः! उत्तरे! हा उत्तरे!
हा देवि कृष्णे! हा सुभद्रे! अब अधम अर्जुन चला;
धिक है-क्षमा करना मुझे-मुझसे हुआ रिपु का भला ॥१८॥
"जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है,
माधव! विदा दो बस मुझे, अब बार बार प्रणाम है।
इस भाँति मरने के लिये यद्यपि नहीं तय्यार हूँ,
पर धर्म-बन्धन-बद्ध हूँ, मैं क्या करूँ लाचार हूँ" ॥१९॥
इस भाँति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण थे जब सुन रहे,
हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष-वचन उनसे कहे—
"गोविन्द! अब क्या देर है? प्रण का समय जाता टला!
शुभ कार्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतनाही भला" ॥२०॥

सुन कर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आगई,
गम्भीर-श्यामल-मेघ में विद्युच्छटा सी छागई।
कहते हुये यों—वह न उनका भूल सकता वेश है—
"हे पार्थ! प्रण-पालन करो, देखो, अभी दिन शेष है" ॥१२॥

[५]

उद्बोधन।

हत भाग्य हिन्दू-जाति! तेरा पूर्वदर्शन है कहाँ?
वह शील, शुद्धाचार, वैभव देख, अब क्या है यहाँ?
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की सी है नहीं?
हम हो वही, पर पूर्व-दर्शन दृष्टि आते हैं कहीं? ॥१॥
बीती अनेक शताब्दियाँ पर हाय! तू जागी नहीं;
यह कुम्भकर्णी नींद तू ने तनिक भी त्यागी नहीं!
देखें कहीं पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर हमें—
आँसू बहावें शोक से, इस वेप में पाकर हमें!! ॥२॥
अब भी समय है जागने का देख आँखें खोल के,
सब जग जगाता है तुझे, जगकर स्वयं जय बोल के।
निःशक्त यद्यपि हो चुकी है किन्तु तू न मरी अभी,
अब भी पुनर्जीवन-प्रदायक साज हैं सम्मुख सभी ॥३॥
हम कौन थे, क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु है न उनमें शिष्य की भी योग्यता!
जो थे सभी से अग्रगामी आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं? ॥४॥
दुर्दैव-पीड़ित जो पुराने चिह्न कुछ कुछ रह गये,
देखो, न जाने भाव कितने व्यक्त करते हैं नये।
हा! क्या कहें आरम्भ ही में रुँध रहा है जब गला,
भगवान! क्या से क्या हुये हम, कुछ ठिकाना है भला! ॥५॥

कुछ काल में ये जीर्ण पहले चिह्न भी मिट जायँगे,
फिर खोजने से भी न हम सब मार्ग अपना पायँगे।
जातीय जीवन-दीप अब भी स्नेह पावेगा नहीं,
तो फिर अँधेरे में हमें कुछ हाथ आवेगा नहीं ॥६॥
अब भी सुधारेंगे न हम दुर्दैव-वश अपनी दशा,
तो नाम शेष हमें करेगा काल ले कर्कश कशा।
बस टिमटिमाता दीख पड़ता आज जीवन-दीप है,
हा दैव! क्या रक्षा न होगी; सर्वनाश समीप है? ॥७॥
निज पूर्वजों का वह अलौकिक सत्य, शील निहार लो,
फिर ध्यान से अपनी दशा भी एक बार विचार लो,
जो आज अपने आप को यों भूल हम जाते नहीं,
तो यों कभी सन्ताप-मूलक शूल हम पाते नहीं ॥८॥
निज पूर्वजों के सद्गुणों को यत्न से मन में धरो,
सब आत्म-परिभव-भाव तज निज रूप का चिन्तन करो।
निज पूर्वजों के सद्गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं ॥६॥
किस भाँति जीना चाहिये किस भाँति मरना चाहिये,
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिये।
पद-चिह्न उनके यत्न-पूर्वक खोज लेना चाहिये,
निज पूर्व गौरव-दीप को बुझने न देना चाहिये ॥१०॥
हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं?
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं?
भव-सिंधु में निज पूर्वजों की रीति से ही हम तरें,
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें ॥११॥
क्या कार्य दुष्कर है भला यदि इष्ट हो हमको कहीं?
उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हम मे नहीं?

यदि हम किसी भी कार्य को करते हुये असमर्थ हैं ।
तो उस अखिल-कर्ता पिता के पुत्र ही हम व्यर्थ हैं ॥१२॥
अपनी प्रयोजन-पूर्ति क्या हम आप कर सकते नहीं ?
क्या तीस कोटि मनुष्य अपना ताप हर सकते नहीं ?
क्या हम सभी मानव नहीं किंवा हमारे कर नहीं ?
रो भी उठें हम तो बने क्या अन्य रत्नाकर नहीं ? ॥१३॥
हे भाइयो ! सोये बहुत, अब तो उठो, जागो अहो !
देखो ज़रा अपनी दशा, आलस्य को त्यागो अहो !
कुछ पार है, क्या क्या समय के उलट फेर न हो चुके !
अब भी सजग होगे न क्या ? सर्वस्व तो हो खो चुके ॥१४॥
विष-पूर्ण ईर्ष्या-द्वेष पहले शीघ्रता से छोड़ दो,
घर फूँकने वाली फुटैली फूट का सिर फोड़ दो ।
मालिन्य से मुँह मोड़ कर मद-मोह के पद तोड़ दो,
टूटे हुये वे प्रेम-बन्धन फिर परस्पर जोड़ दो ॥१५॥
भागो अलग अविचार से, त्यागो कुसङ्ग कुरीति का;
आगे बढ़ो निर्भीकता से, काम है क्या भीति का ।
चिन्ता न विघ्नों की करो, पाणिग्रहण कर नीति का—
सुर-तुल्य अजरामर बनो पीयूष पीकर प्रीति का ॥१६॥
संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो,
चलते हुये निज इष्ट पथ में सङ्कटों से मत डरो ।
जीते हुये भी मृतक-सम रहकर न केवल दिन भरो,
वर वीर बन कर आप अपनी विघ्न-बाधायें हरो ॥१७॥
है ज्ञात क्या तुमको नहीं तुम लोग तीस करोड़ हो,
यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो ?
उत्साह-जल से सींच कर हित का अखाड़ा गोड़ दो
गर्दन अखिल अधःपतन की ताल ठोक मरोड़ दो ॥१८॥

बैठे हुये हो व्यर्थ क्यों ? आगे बढ़ो, ऊँचे चढ़ो;
है भाग्य की क्या भावना ? अब पाठ पौरुष का पढ़ो ।
है सामने का ग्रास भी मुख में स्वयं जाता नहीं !
हा ! ध्यान उद्यम का तुम्हें तो भी कभी आता नहीं ! ॥१९॥
जो लोग पीछे थे तुम्हारे, बढ़ गये, हैं बढ़ रहे,
पीछे पड़े तुम दैव के सिर दोष अपना मढ़ रहे !
पर कर्म्म-तैल विना कभी विधि-दीप जल सकता नहीं,
है दैव क्या ? साँचे विना कुछ आप ढल सकता नहीं ॥२०॥
आओ, मिलें सब देश-बान्धव हार बन कर देश के,
साधक बनें सब प्रेम से सुख-शान्तिमय उद्देश के ।
क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो !
बनती नहीं क्या एक माला विविध सुमनो की कहो ? ॥२१॥
रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़ कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता ।
तन मात्र के ही मेल से है मन भला मिलता कहीं,
है वाह्य बातों से कभी अन्तःकरण खिलता नहीं ॥२२॥
सब बैर और विरोध का बल-बोध से वारण करो,
है भिन्नता में खिन्नता ही एकता धारण करो ।
है एकता ही मुक्ति ईश्वर-जीव के सम्बन्ध में,
वर्णैकता ही अर्थ देती इस निकृष्ट निबन्ध में ॥२३॥
है कार्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता ?
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता ?
दो एक एकादश हुये, किसने नहीं देखे सुने ?
हाँ, शून्य के भी योग से हैं अङ्क होते दशगुने ॥२४॥
प्रत्येक जन प्रत्येक जन को बन्धु अपना जान लो;
सुख-दुःख अपने बन्धुओं का आप अपना मान लो ।

सब दुःख यों बँट कर घटेगा सौख्य पावेंगे सभी,
हाँ, शोक में भी सान्त्वना के गीत गावेंगे सभी ॥२५॥
साहाय्य दे सकते मनुज को मनुज ही खग-मृग नहीं,
वे भी न दें तो सब मनुजता व्यर्थ है उनकी वहीं ।
निज बन्धुओं की ही न हम यदि पा सके प्रियता यहाँ—
तो उस परम प्रभु की कृपा-प्रियता हमें रक्खी कहाँ ॥ २६ ॥
अपने सहायक आप हो होगा सहायक प्रभु तभी ।
बस चाहने से ही किसी को सुख नहीं मिलता कभी ॥
कर, पद, हृदय, दृग, कर्ण तुम को ईश ने सब कुछ दिया,
है कौन ऐसा काम जो तुमसे न जा सकता किया ? ॥२७॥
आने न दो अपने निकट औदास्य मय उत्ताप को,
आत्मावलम्बी हो, न समझो तुच्छ अपने आपको ।
है भिन्न परमात्मा तुम्हारे अमर आत्मा से नहीं,
एकत्व वारि-तरङ्ग का भी भङ्ग हो सकता कहीं ? ॥ २८ ॥
अति धीरता के साथ अपने कार्य्य में तत्पर रहो,
आपत्तियों के वार सारे वीर बर बन कर सहो ।
सब विघ्न-भय मिट जायँगे, होगी सफलता अन्त में,
फिर कीर्ति फैलेगी हमारी एक वार दिगन्त में ॥ २९ ॥
बढ़ कर लता, द्रुम, गुल्म भी हैं फूलते फलते यहाँ,
तो भी समुन्नति-मार्ग में हम लोग चलते हैं कहाँ ?
घन घूम कर ही गरजते हैं, बरसते हैं सब कहीं,
हम किन्तु निष्क्रिय हैं तभी तो तरसते हैं सब कहीं ॥ ३० ॥
जब दीप तो देकर हमें आलोक जलता आप है,
पर एक हम में दूसरे को दे रहा सन्ताप है !
क्या हम जड़ों से भी जगत में हैं गये बीते नहीं ?
हे भाइयो ! इस भाँति तो तुम थे कभी जीते नहीं ॥ ३१ ॥

सोचो कि जीने से हमारे लाभ होता है किसे ?
है कौन मरने से हमारे हानि पहुँचेगी जिसे ?
होकर न होने के बराबर हो रहे हम हैं यहाँ,
दुर्लभ मनुज-जीवन वृथा ही खो रहे है हम यहाँ ! ॥ ३२ ॥
हो आप और सभी जनों को नित्य उत्साहित करो;
उत्पन्न तुम जिसमें हुये, निज देश का कुछ हित करो ॥
नर जन्म पाकर लोक में कुछ काम करना चाहिये,
अपना नहीं तो पूर्वजों का नाम करना चाहिये ॥ ३३ ॥
अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों ।
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों ।
आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में,
देखें हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में ? ॥ ३४ ॥
हमको समय को देख कर ही नित्य चलना चाहिये,
बदले हवा जब जिस तरह हमको बदलना चाहिये ।
विपरीत विश्व-प्रवाह के निज नाव जा सकती नहीं,
अब पूर्व की बातें सभी प्रस्ताव पा सकती नहीं ॥ ३५ ॥
व्यवसाय अपने व्यर्थ है अब नव्य यन्त्रों के बिना,
परतन्त्र हैं हम सब कहीं अब भव्य यन्त्रों के बिना ।
कल के हलों के सामने अब पूर्व का हल व्यर्थ है,
उस वाष्प विद्युद्वेग-सम्मुख देह का बल व्यर्थ है ॥ ३६ ॥
है बदलता रहता समय उसकी सभी घातें नई,
कल काम में आती नहीं है आज की बातें कई ।
है सिद्धि-मूल यही कि जब जैसा प्रकृति का रङ्ग हो—
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्य-कृति का ढङ्ग हो ॥ ३७ ॥
प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी,
बन कर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी ।

प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है ॥ ३८ ॥
सर्वत्र एक अपूर्व युग का हो रहा सञ्चार है,
देखो, दिनोंदिन बढ़ रहा विज्ञान का विस्तार है ।
अब तो उठो, क्या पड़ रहे हो व्यर्थ सोच विचार में ?
सुख दूर, जीना भी कठिन है श्रम बिना संसार में ॥ ३९ ॥
पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल सब लग रहे हैं काम में,
फिर क्यों तुम्हीं खोते समय हो व्यर्थ के विश्राम में ?
बीते हज़ारों वर्ष तुमको नींद मे सोते हुये,
बैठे रहोगे और कब तक भाग्य को रोते हुये ? ॥ ४० ॥
इस नींद में क्या क्या हुआ यह भी तुम्हें कुछ ज्ञात है ?
कितनी यहाँ लूटें हुई कितना हुआ अपघात है !
हो कर न टस से मस रहे तुम एक ही करवट लिये,
निज दुर्दशा के दृश्य सारे स्वप्न सम देखा किये ॥ ४१ ॥
इस नींद में ही तो यवन आकर यहाँ आदृत हुये,
जागे न हा ! स्वातन्त्र्य खोकर अन्त में तुम धृत हुये ।
इस नींद में हीं सब तुम्हारे पूर्व-गौरव हृत हुये,
अब और कब तक इस तरह सोते रहोगे मृत हुये ? ॥ ४२ ॥
उत्तप्त ऊष्मा के अनन्तर दीख पड़ती वृष्टि है,
बदली न किन्तु दशा तुम्हारी नित्य शनि की दृष्टि है !
है घूमता फिरता समय तुम किन्तु ज्यों के त्यों पड़े,
फिर भी अभी तक जी रहे हो, वीर हो निश्चय बड़े ॥ ४३ ॥
पशु और पक्षी आदि भी अपना हिताहित जानते,
पर हाय ! क्या तुम अब उसे भी हो नहीं पहचानते ।
निश्चेष्टता मानों हमारी नष्टता की दृष्टि है,
होती प्रलय के पूर्व जैसे स्तब्ध सारी सृष्टि है ॥ ४४ ॥

सोचो विचारो तुम कहां हो, समय की गति है कहां,
वे दिन तुम्हारे आप ही क्या लौट आवेंगे यहाँ ।
ज्यों ज्यों करेंगे देर हम वे और बढ़ते जायँगे,
यदि बढ़ गये वे और तो फिर हम न उनको पायँगे ॥ ४५ ॥
कर के उपेक्षा निज समय को छोड़ बैठे हो तुम्हीं,
दुष्कर्म कर के भाग्य को भी फोड़ बैठे हो तुम्हीं ।
बैठे रहोगे हाय ! कब तक और यों ही तुम कहो ?
अपनी नहीं तो पूर्वजों की लाज तो रक्खो अहो ! ॥ ४६ ॥
लो भाग अपना शीघ्र ही कर्तव्य के मैदान में,
हो बद्धपरिकर दो सहारा देश के उत्थान में ।
डूबे न देखो नाव अपनी है पड़ी मझधार में,
होगा सहायक कर्म का पतवार ही उद्धार में ॥ ४७ ॥
भूलो न ऋषि सन्तान हो अब भी तुम्हें यदि ध्यान हो—
तो विश्व को फिर भी तुम्हारी शक्ति का कुछ ज्ञान हो ।
बन कर अहो ! फिर कर्मयोगी वीर बड़भागी बनो,
परमार्थ के पीछे जगत में स्वार्थ के त्यागी बनो ॥ ४८ ॥
होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो;
सब देश हितकर कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो ।
धर्मार्थ के भोगी रहो बस कर्म के योगी रहो,
रोगी रहो तो प्रेम रूपी रोग के रोगी रहो ॥ ४९ ॥
पुरुषत्व दिखलाओ पुरुष हो, बुद्धि-बल से काम लो,
तब तक न थक कर तुम कभी अवकाश या विश्राम लो—
जब तक कि भारत पूर्व के पद पर न पुनरासीन हो;
फिर ज्ञान मे, विज्ञान में जब तक न वह स्वाधीन हो ॥ ५० ॥
निज धर्म का पालन करो, चारो फलों की प्राप्ति हो,
दुख-दाह, आधि-व्याधि सब की एक साथ समाप्ति हो ।

ऊपर कि नीचे एक भी सुर है नहीं ऐसा कहीं—
सत्कर्म में रत देख तुमको जो साहायक हो नहीं ॥ ५१ ॥

(भारत भारती से)

[६]

शकुन्तला की बिदा।

[१]

त्यागी थे मुनि कण्व उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।
होम शिखा की परिक्रमा उससे करवाई,
और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई—

[२]

"तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे—
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे॥

[३]

"गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से॥

[४]

"परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चलकर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय।

छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले में चित्रोत्पला गङ्गा महानदी के किनारे बालपुर नाम का एक पल्ली-ग्राम है। पाण्डेय जी का जन्म इसी ग्राम में एक प्रतिष्ठित और प्राचीन सरयू-पारीण ब्राह्मण-वंश में सं० १९४३ विक्रमाब्द के पौष शुक्ल १०, मंगलवार को हुआ। इनके पिता पं० चिन्तामणि पाण्डेय एक सच्चरित्र विद्याप्रेमी, आदर्श गृहस्थ थे। उन्होंने अपने यहां हिन्दी का एक पुस्तकालय स्थापित किया था, जिसमें हिन्दी के उत्तमोत्तम काव्य-ग्रन्थों का संग्रह था। अपने ग्राम में हिन्दी की एक पाठशाला के स्थापन और उसके सञ्चालन द्वारा उन्होंने अज्ञानान्धकार में पड़े हुए ग्रामीणों में पहले पहल शिक्षा का आलोक फैलाया। पाण्डेय जी की माता का नाम है देवहुती देवी। यह अपने शील और सद्गुण के लिये अपने समाज में आदर्श समझी जाती है। तथा पितामह का नाम पं० शालिग्राम पाण्डेय और पितामही का नाम कुसुमदेवी है। पं० शालिग्राम परम सत्यनिष्ठ, धार्मिक एवं कर्त्तव्यपरायण हैं और अपने अञ्चल में एक प्रसिद्ध "साधु ब्राह्मण-अतिथि-सेवक" गिने जाते हैं।

पाण्डेय जी ने अपने पिता जी के द्वारा स्थापित स्थानीय पाठशाला में अक्षरारम्भ किया। वहाँ हिन्दी की शिक्षा

समाप्त कर ये अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये सम्बलपुर के गवर्नमेंट हाई स्कूल में भरती हुए। यहाँ से इन्होंने सन् १६०५ में कलकत्ता युनिवर्सिटी की प्रवेशिका परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की।

इसके बाद ये उच्च-शिक्षा-प्राप्ति के लिए सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस में भरती हुये। पर कई कारणों से अल्प समय में ही इनको घर लौट आना पड़ा। घर पर इन्होंने उड़िया और बँगला भाषाएं सीखीं, तथा कुछ संस्कृत का भी अभ्यास किया।

इन्होने अपने मामा पूज्य पं० अनन्तराम (अनन्त कवि) तथा अपने अग्रज पं० पुरुषोत्तमप्रसाद जी की सहायता एवं अनुरोध से सन् १६०४ से हिन्दी लिखना शुरू किया और तब से आज तक गद्य और पद्य की छोटी बड़ी कोई ३०।३५ पुस्तकें लिखीं। जिनमें "दो मित्र" "बाल-विनोद"-"नीति कविता"-"बालिका-विनोद"-"माधवमञ्जरी" "मेवाड़ गाथा" "चरितमाला" "रघुवंश सार" "पद्य पुष्पाञ्जलि" "आनन्द की टोकनी" "कविता-कुसुम-माला" आदि मुख्य है।

उड़िया में कविता करने की इनमें विलक्षण योग्यता है। उस भाषा में इन्होंने 'कविता-कुसुम' 'महानदी' 'रोगी-रोदन' आदि कई कविता पुस्तकें भी लिखी है। ये उत्कल-साहित्य संसार मे सुपरिचित हैं। बामण्डा राज्य (ओड़ीसा) के साहित्य-मर्मज्ञ राजा साहब राजकवि राजा सच्चिदानन्द ने इनको 'काव्य-विनोद' की उपाधि से भूषित किया था। इनकी उड़िया "कविता कुसुम" की समालोचना में एक सुप्रसिद्ध उत्कल साहित्य-विशारद पं० नीलमणि शर्मा "विद्यारत्न" ने लिखा था कि यदि कवि की जातीय उपाधि "पाण्डेय" के

स्थान पर "शर्म्मा" रख दी जाय तो कोई भी पाठक यह नहीं जान सकेगा कि ये कविताएँ उत्कल-भिन्न अन्य भाषाभाषी की रचना है। इनके इस उड़िया "कविता कुसुम" तथा "कविता कुसुम माला" की प्रशंसा सर ग्रियर्सन साहब जैसे विश्व विख्यात विद्वान् तक ने की है।

अंग्रेज़ी में भी इन्होंने Well Known men, Letters to my Brothers, The way to be Happy and Gay, Folk-Tale of Chattis-garh, तथा Radha Nath the National Poet of Orrissa आदि कई पुस्तकें लिखी हैं।

सन् १९१४ के नवम्बर में इनके ज्येष्ठ पुत्र माधवप्रसाद का शरीरान्त हो गया। इस घटना से पाण्डेय जी का दिल टूट गया। बालक बड़ा होनहार था। उसके वियोग पर "हा वत्स माधवप्रसाद" नामक एक शोक कविता लिखी गई थी, जो अभी छपी नहीं।

पाण्डेय जी की पुस्तकों का अच्छा प्रचार है। कइयों के तो दो दो तीन तीन संस्करण हो चुके। मध्यप्रदेश, युक्तप्रान्त तथा पंजाब की टेक्स्ट बुक कमेटियों ने इनकी कई पुस्तकों को Prize and Library Books नियत किया है। इनकी कविताएँ गुरुकुल काँगड़ी की तथा मध्यप्रदेश और पंजाब प्रान्त की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों में संग्रहीत की गई हैं।

पाण्डेय जी ने अपने जन्म-प्रान्त छत्तीसगढ़ के प्राचीन साहित्य और प्राचीन गौरव-गाथा की खोज करने में बड़ा परिश्रम किया है। इसके पहले यह बहुत कम लोगों को मालूम था कि छत्तीसगढ़ में भी हिन्दी के अनेक बड़े २ कवि हो गये हैं।

इनके यत्न और उत्साह दान से अनेक नवयुवक हिन्दी के परम प्रेमी और सुलेखक बन गए हैं ।

ये अपने ग्राम बालपुर में ही निवास करते हैं । चार पाँच गाँवों की ज़मींदारी है । ये ६ भाई हैं । बड़े भाई पं० पुरुषोत्तमप्रसाद पाण्डेय विलासपुर के डिस्ट्रिक् कौंसिल के मेम्बर हैं । आप दरवारी भी हैं । तथा छोटे भाई मुकुटधर हिन्दी के एक उदीयमान कवि और लेखक हैं। इनके अन्यान्य अनुज भी साहित्यानुरागी हैं ।

अनेक संस्थाओं ने पांडेय जी को उनकी निःस्वार्थ हिन्दी सेवा तथा प्रबन्ध-रचना-पटुता के लिए रौप्य तथा स्वर्ण-पदक प्रदान किये हैं ।

मध्यप्रदेश की सरकार ने सर ग्रियर्सन साहब द्वारा अनुवादित "छत्तीसगढ़ी व्याकरण" के संशोधन और परिवर्द्धन का काम पांडेय जी को सौंपा था । अब यह ग्रन्थ छपने लगा है । मध्यप्रदेश की सरकार इसे प्रकाशित कर रही है ।

पांडेय जी की रचना उत्साहवर्द्धिनी, सरल और सरस होती है । हम यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं:—

[१]

मृगी-दुःख-मोचन ।

वन एक बड़ा ही मनोहर था,
रमणीयता का शुचि आकर सा ।
सुख शान्ति के साज से पूरा सजा,
वह सोहता था कुसुमाकर सा ॥

शुभ सात्विक भाव की लीलास्थली,
कुछ प्राप्त उसे था अहो ! वर सा ।
रहती थी वहाँ मृग-दम्पती एक,
विचार के कानन को घर सा ॥१॥
वन था वह पास तपोबनों के,
करते तपसी गण वास जहाँ ।
जिनके सहवास से होता समत्व के,
साथ ममत्व विकाश जहाँ ।
जहाँ क्रोध विरोध का नाम न था,
रहा बोध का वृत्ति विलास जहाँ ।
रहा क्षेम का शान्ति-समास जहाँ,
रहा प्रेम का पूर्ण प्रकाश जहाँ ॥२॥
अति पूत परस्पर प्रेम रहा,
वन के सब जन्तुओं के मन में ।
वहाँ हिंसक हिंस्र का भाव न था,
न अभाव था धर्म का जीवन में ॥
विपिनौषधि मिष्ट बनस्पति की,
रुचि थी सब को शुचि भोजन में ।
समझो न स्वभाव विरुद्ध इसे,
क्या प्रभाव न है तप-साधन में ॥३॥
वन में शुक मोर कपोत कहीं,
तरुओं पर प्रेम से डोलते थे ।
निज लाड़लियों को रिझाते हुये,
कभी नाचते थे कभी बोलते थे ।
पिक चातक मैना मनोहर बोल से,
शर्करा कर्ण में घोलते थे ।

फिरते हुये साथ में बच्चे अहा !
उनके बहुभाँति कलोलते थे ॥४॥
करि, केहरि मुग्ध हुये मन में,
वन में कहीं प्रेम से घूमते थे ।
फल फूल फले खिले थे सब ओर,
झुके तरु भूमि को चूमते थे ॥
झरने झरते करते रव थे,
कहीं खेत पके हुये झूमते थे ।
वन शोभा मृगी मृग वे लखते,
चखते तृण यों सुख लूटते थे ॥५॥
कहीं गोचर भूमि में साँड़ सुडौल,
भरे अभिमान सुहा रहे थे ।
कहीं ढोरों को साथ में ले के अहीर,
मनोहर वेणु बजा रहे थे ।
कहीं वेणु के नाद से मुग्ध हुये,
'अहि' बाहर खोहों से आरहे थे ।
ऋषियों के कुमार कहीं फिरते हुये,
'साम' के गायन गा रहे थे ॥६॥
चढ़ जाते पहाड़ों में जाके कभी,
कभी झाड़ों के नीचे फिरैं विचरैं ।
कभी कोमल पत्तियाँ खाया करैं,
कभी मिष्ट हरी हरी घास चरैं ॥
सरिता जल में प्रतिबिम्ब लखैं,
निज शुद्ध कहीं जलपान करैं ।
कहीं मुग्ध हो निर्झर झर्झर से,
तरु कुंज में जा तप ताप हरैं ॥७॥

रहती जहाँ शाल रसाल तमाल के,
पादपों की अति छाया घनी ।
चर के तृण आते थके वहाँ,
बैठते थे मृग औ उसकी घरणी ॥
पगुराते हुये दृग मूंदे हुये,
वे मिटाते थकावट थे अपनी ।
खुर से कभी कान खुजाते कहीं,
सिर सींग पै धारते थे टहनी ॥८॥
इस भाँति वे काल बिताते रहे,
सुख पाते रहे, न उन्हें भय था ।
कभी जाते चले मुनि-आश्रमों मे,
मिलता उन्हें प्रेम से आश्रय था ॥
ऋषि कन्या गणो के सुकोमल पाणि के,
स्पर्श का हर्ष सुखालय था ।
उनका शुभ सात्विक जीवन मित्र !
पवित्र था और सुधामय था ॥६॥
कुछ काल अनन्तर ईश कृपा-
वश प्राप्त हुई उन्हें सन्तति दो ।
गही दम्पति प्रेम प्रशस्त की धार ने,
एक को छोड़ नई गति दो ॥
अब दो विधि के अनुराग जगे,
पगे वे सुख मे सुकृती अति हो ।
इस जीवन का फल मानो मिला,
खिला प्रेम प्रसून सुसङ्गति हो ॥१०॥
दिन एक लिये युग शावकों को
चरने को अकेले मृगी गई थी ।

वह चारु बसन्त का काल रहा,
बन शोभा निराली विभामई थी ॥
शुचि शैशव चंचलतावशतः
मृगछौनों की लीला नई नई थी।
भरते बहु भाँति की चौकड़ियाँ,
उनकी द्रुत दौड़ हुई कई थी ॥११॥
वह तीनो जने निज नित्य के स्थान से,
दूर अनेक चले गये थे।
बन था वह नूतन ही उनको,
सब दृश्य वहाँ के नये नये थे॥
तटनी तटकी छवि न्यारी ही थी,
लता कुंज के ठाट भले ठये थे।
बहती थी सुगन्धित वायु अहा!
तृण कोमल खूब वहाँ छये थे ॥१२॥
चरने लगे वे सुख साथ वहाँ,
भय की न उन्हें कुछ भावना थी।
यहाँ होगा बहेलिया पास कहीं,
इसकी न उन्हें कभी कल्पना थी॥
पर दैव विधान विचित्र बड़ा,
उसकी कुछ और ही योजना थी।
पहुँचा वहाँ व्याध कराल महा,
जिसको कि अहेर की चिन्तना थी ॥१३॥
लख बच्चों के साथ मृगी को वहाँ,
झट घेर उन्हें चहुँ ओर लिया।
उनके बिन जाने बिछा दिये जाल यों,
पार्श्व का मारग रोक दिया॥

लगा आग दी पीछे, हुआ फिर आगे,
लिये धनुवाण, कठोर हिया ।
उस व्याध ने छोड़ दिये फिर श्वान,
धरो धरो का रव घोर किया ॥१४॥
सहसा इस घोर विपत्ति से हो,
कर्तव्य विमूढ़ मृगी अकुलानी ।
नव मास के गर्भ के भार से थी,
वह योंही स्वभाव ही से अलसानी ॥
फिर साथ में थे मृदु शावक दो,
सुकुमारता की जिनकी न थी सानी ।
चहुँ ओर को देखती बोली वहाँ,
वह कातर हो यह आरत वाणी ॥१५॥
दिशा उत्तर दक्षिण मे लगे जाल
फँसे उस ओर भगें जो कभी ।
यह दावा कराल है पूर्व की ओर,
गये उस ओर हो भस्म अभी ।
करता हुआ शोर शिकारी खड़ा,
पथ पश्चिम ओर से रोक सभी ।
हम बन्दी हुये चहुँ ओर से हा !
मिटता क्या कपाल का लेखन भी ॥१६॥
तृण कोमल पत्तियाँ शाक,
बनस्पतियाँ वन मे फिरते चरते ।
पर-पीड़न हिंसा तथा अपकार,
कदापि किसी को नहीं करते ॥
हम भीरु स्वभाव ही से हैं हरे !
न कठोरता, भीषणता धरते ।

छल छिद्र विहीन हैं भोले निरे,
फिर भी हैं यहाँ हम यों मरते ॥१७॥
रहती मैं अकेली तो क्या भय था,
मुझे सोच न था तनु का अपने।
पर साथ में लाड़ले जीवन मूर,
ये छौने दुलारे हैं दोनों जने॥
फिर गर्भ में बालक है सुकुमार,
इसीसे मुझे दुख होते घने।
हम चारों का अन्त यों होगा हरे!
यह जाना न था मन में हमने ॥१८॥
अब क्या करूँ दीन के बन्धु हरे!
किसका मुझे बाकी भरोसा रहा।
पथ है चहुँ ओर से मेरा घिरा,
गिरा चाहता काल का वज्र महा॥
यह पावक वेग से उग्र हुआ,
इसी ओर बढ़ा चला आता हहा।
जिसकी खर ज्वाल से नन्हें अहो,
इन छौनों का है तनु जाना दहा ॥१९॥
अरि स्वान ये तीर से आते चले,
इसी ओर को हैं अब खैर नहीं।
बढ़ता हुआ व्याध भी आ रहा है,
बस अन्त है तीर जो छोड़ा कहीं॥
करते हम यों न विलाप प्रभो,
मृग प्यारा हमारा जो होता यहीं।
कहते हुये यों रुक कण्ठ गया,
चुप हो मृगी हो गई स्तब्ध वहीं ॥२०॥

करुणावरुणालय श्री हरि की,
इतने में हुई कुछ ऐसी दया ।
घन घोष के साथ गिरी बिजली,
जिससे कि शिकारी अचेत भया ॥
सब स्वान भगे बन के गजों से,
वह जाल समूह भी तोड़ा गया ।
बरसा जल मूसलधार, बुझी,
बन दावा, मिला उन्हें जन्म नया ॥२१॥
जिनपै हरि तुष्ट हैं तो अरि दुष्ट,
करैं क्या ? भ्रमैं गिरि में नग में ।
रिपु की असि-शूल कराल, मृणाल सी
कोमल हो उनके पग में ।
बिछते मृदु फूल अहो ! पल में,
दुख कण्टक छाये हुये मग में ।
जब रक्षक राम खड़े अपने,
तब भक्षक कौन यहाँ जग में ॥ २२ ॥
यहाँ तीनों हुये अति विस्मित से,
लखि श्री हरि की यह लीला अहा !
अति मूक हुये से कृतज्ञता से,
घर जा रहे थे गहे मोद महा ॥
वहां देख बिलम्ब को व्यग्र हुआ,
मृग ढूँढ़ने को इन्हें आता रहा ।
सुख सीमा नहीं थी मिले जब चारों,
मृगी के सुनेत्र से आंसू बहा ॥ २३ ॥
निज आंसू भरे नयनों से बता कर,
वृत्त अहो निज यन्त्रणा का ।

मृगी ने मृग से सब हाल कहा,
उस व्याध की गुप्त कुमन्त्रणा का ।
फिर वृत्त कहा जगदीश दयानिधि,
के पदों में निज प्रार्थना का ।
उनकी दया का, उनकी कृपा का,
उनकी दुख भंजन-साधना का ॥ २४ ॥
मधुसूदन माधव की दया से,
हम रोग की ज्वाला मिटाते रहें ।
भवबन्धन में हम बद्ध न हों,
करि कर्म से धर्म कराते रहें ।
दुख स्वान से आकुल प्राण न हों,
हम स्वास्थ्य सुधा नित पाते रहें ।
कलिकाल शिकारी के लक्ष्य न हों,
यश श्रीहरि का नित गाते रहें ॥ २५ ॥

[२]

चिड़िया और बालिका ।

आजा आजा छोटी चिड़िया आजा री तू मेरे पास ।
एक स्वच्छ पिंजड़ा है मेरा, उसमे सुख से करना वास ॥
अच्छे अच्छे फूल तोड़ कर लादूँगी मैं तुझे अहा ।
खाने को दूँगी मैं तुझको नित ताजे फल मधुर महा ॥ १ ॥
ए प्रिय छोटी चतुर बालिका ! धन्यवाद है तुझे अनेक ।
दयावती है तू तेरे मन में है सचमुच बड़ा विवेक ॥
सुन तू बहिन ! मुझे पर अतिशय प्यारी है शुचि शीतल वायु ।
ईश्वर करे वनों मे स्वेच्छा से फिरती मैं काटूँ आयु ॥
उस पीपल पर है वह मेरा गर्म घोसला जो छोटा ।
उसके आगे सोने का पिंजड़ा भी है मुझको खोटा ॥ २ ॥

छोटी चिड़िया ! कह तो तब क्या दुःख न तू पावेगी घोर।
जब सब खेत बर्फ से बिल्कुल-ढक्क जावेंगे चारों ओर॥
बर्फ ढाँक लेगी उस जीर्ण पुरातन पीपल को दे त्रास।
छोटी चिड़िया, कहाँ जायगी तू तब ? आजा मेरे पास॥३॥
नहीं नहीं मैं कुछ न सुनूँगी तेरी बातें, ए प्यारी !
निज इच्छा से नभ में विचरण करने में है सुख भारी॥
जाड़े के दिन में मैं उड़ जाऊँगी उष्ण देश को एक।
जहाँ स्वच्छ आकाश रहेगा, नाज मिलेंगे पके अनेक॥
फिर जब ऋतु वसंत आवेगी डोलेगी मृदु मलय समीर।
तब तुम मेरे गान सुनोगी हो कर के आनन्द अधीर॥ ४॥
छोटी चिड़िया कह तू तुझको राह दिखावेगा तब कौन।
जब समुद्र पर और पहाड़ों पर तू जावे होकर मौन ?
अरी मूर्ख ! तू मत कर वैसा; आजा आजा मेरे पास॥
निश्चय है तू राह भूल कर पछतावेगी पाती त्रास॥ ५॥
नहीं नहीं ए बहिन ! दिखाता जगदीश्वर ही मुझको राह।
क्या पर्वत पर क्या समुद्र पर नहीं किसी की कुछ परवाह॥
उस करुणाकर परम पिता ने मुझे स्वतन्त्र बनाया है।
वह है सभी जगह, फिर भय क्यो, उसकी ही यह काया है॥
प्रातः वायु समान ईश ने मुझे स्वतन्त्र बनाया है।
देश देश में फिरूँ प्रेम से इसी लिये यह काया है॥ ६॥

[३]

आत्मत्याग।

वीर भूमि मेवाड़ आर्य-गौरव-लीलास्थल,
अतुल जहाँ के शौर्य, जाति-अभिमान, वीर्य, बल !
है सतीत्व सद्धर्म का, जो पवित्र आगार,
गाता जिसका सुयश है, नित सारा संसार,
अमित आनन्द से॥ १॥

शुचि स्वदेश-वात्सल्य, सत्य-प्रियता, सहिष्णुता,
आत्मत्याग, श्रम शक्ति, समर-दृढ़ता, रण-पटुता,
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता अखण्ड,
करती है जिस भूमि की, उज्वल भारत खण्ड,
अखिल भूलोक में ॥ २ ॥

है आदर्श अनूप जहाँ की सुयश कहानी;
पाती जिससे सहज अमरता कवि की वाणी,
शुभ्र कीर्ति मेवाड़ की, कर सगर्व कुछ गान
आज लेखनी ! अमरता, कर ले तू भी पान,
जन्म सार्थक बना ॥ ३ ॥

एक समय सानन्द राज्य का शासन करते,
निर्भय रख गो-विप्र प्रजागण के मन हरते,
वीर भूमि मेवाड़ में सज्जन सत्य-प्रतिज्ञ,
राजसिंह राणा प्रवर थे भूपति वर विज्ञ,
शान्ति सुख से महा ॥ ४ ॥

भीमसिंह जयसिंह नाम के बली धुरन्धर,
राजसिंह के पुत्र गुणी थे दो अति सुन्दर ।
यमज भ्रात थे वे उभय; पितृभक्त सुखसार,
भीमसिंह पर ज्येष्ठ थे, जन्म-काल-अनुसार,
अतः कुलपूज्य थे ॥ ५ ॥

धर्मनीति अनुसार राज्य-पद के अधिकारी,
भीमसिंह थे स्वयं पिता के आज्ञाकारी ।
ज्येष्ठ पुत्र ही को सदा, निज पैतृक व्यवहार,
राज काज इन सकल में, मिलता है अधिकार,
न्याय की दृष्टि से ॥ ६ ॥

भीमसिंह से किन्तु, किसी कारण वश नृपवर,
रहते थे अति खिन्न चित्त में खीय निरन्तर।
पाप मूल कुविचार मय, दुष्ट द्वेष की दृष्टि,
करती कब किस ठौर में, है न भिन्नता वृष्टि,
कहो हे पाठको! ॥ ७ ॥

इसी भाव से भूप-हृदय थी इच्छा भारी,
लघु-सुत को दे राज्य, बनाना उसे सुखारी।
न्यायी भी अवसर पड़े, न्यायान्याय विसार,
फँस जाते अन्याय में, पक्षपात उर धार,
अन्ध बन मोह से ॥ ८ ॥

नृप ने अपने हृदय बीच यह नहीं बिचारा,
एक दिवस यह घोर कलह का होगा द्वारा,
भाई भाई से कहीं, हितू न अन्य, प्रधान,
प्रीति गई तब भ्रात सम, शत्रु न कोई आन,
सदा की रीति यह ॥ ९ ॥

रानी कमलकुमारी ने यह बात सुनी जब,
ऊँच नीच बहु भाँति सुझाया राणा को तब।
देख महा अन्याय भी, कहे न कुछ जो लोग,
क्या न दुष्ट प्रत्यक्ष वे, देते उसमें योग,
धर्म के न्याय से ॥ १० ॥

अस्तु, नृपति ने पक्षपात की बात विसारी,
करने लगे तथैव सोच निज कृति पर भारी।
सहसा करते कार्य जो, बनकर के अज्ञान,
है केवल उनका सदा; पश्चात्ताप निदान।
सत्य यह मानिये ॥ ११ ॥

अन्य दिवस भय, लाज, दुःख से अमित सताया,
भीमसिंह को सम्मुख राणा ने बुलवाया।
चला भृत्य प्रमुदित हिये, नृप आज्ञा अनुसार,
उलझा विविधि विचार में, लाने राजकुमार।
तीर के वेग से ॥ १२ ॥

भीमसिंह अवलोक दूत को स्मित-आनन में,
करने लगे विचार अनेकों अपने मन में :—
"हरे २ कैसी हुई, नई बात यह आज,
पड़ा भूप का कौन सा, ऐसा मुझसे काज।
बुलाया जो मुझे ॥ १३ ॥

दे जयसिंह को राज्य-भार सब क्या राणा ने,
मुझे बुलाया आज अनुज का दास बनाने।
नहीं नहीं मुझको कभी, है न सह्य अपमान,
इष्ट नहीं है दासता, भले जाय यह प्राण।
सहित शुचि मान के ॥ १४ ॥

पराधीन हैं, उन्हें जन्म भर दुख है नाना,
प्राप्त कहाँ स्वातन्त्र्य-सौख्य उनको मनमाना।
जब तक है मम हृदय में, स्वतन्त्रता की भक्ति,
जब तक है युग हस्त में, खड्ग-ग्रहण की शक्ति।
न हूँगा दास मैं ॥ १५ ॥

मर जाऊँ या विजय-पताका अचल उड़ाऊँ,
है धिक् जो रण बीच शत्रु को पीठ दिखाऊँ।
एक बार यमराज से भी यथार्थ वर वीर,
लड़ने से रण में कभी, होते नहीं अधीर।
बात फिर कौन यह ॥ १६ ॥

इसी भाँति बहुकाल पड़े अति शङ्कालय में,
भभक उठी क्रोधाग्नि विषम युवराज हृदय में ।
नयन युगुल विकराल, मुख बाल-भानु सम लाल,
विकट रूप धारे प्रकट, यथा निकलती ज्वाल ।
अङ्ग प्रत्यङ्ग से ॥ १७ ॥

कहा भृत्य से वचन उन्होंने फिर भय खो के,
हृदय-क्षेत्र में विमल बीज वीरोचित बो के :—
जाऊँगा न कदापि मैं, अब राणा के पास,
व्यर्थ कराने के लिये, अपना ही उपहास ।
खबर यह जा सुना" ॥ १८ ॥

हुई शान्त क्रोधाग्नि अन्त में जब कुछ क्षण में,
भीमसिंह ने तनिक विचारा अपने मन में ।
जाने में है हानि क्या, ग्लानि तथा भय लाज,
चल देखूं तो क्या मुझे, कहते हैं नृप-राज ।
भला वह भी सुनूँ ॥ १९ ॥

यही सोच कर भीमसिंह मन में रिस लाये,
राजसिंह नृपराज निकट तत्क्षण ही आये ।
किन्तु हुए विस्मित महा, देख दशा कुछ अन्य,
बैठे हैं राणा प्रवर, चिन्तित चित्त अनन्य ।
शीश नीचा किये ॥ २० ॥

दशा देख यह भीमसिंह ने अचरज माना,
तथा गूढ़ वृत्तान्त भूप के मन का जाना ।
अस्तु, हो गया अन्त में, बोध उन्हें भरपूर,
शान्ति हुई सब भ्रान्ति की क्रोध-ज्वाल हो दूर ।
हृदय आगार से ॥ २१ ॥

जब राणा ने भीमसिंह को देखा सम्मुख,
कहा "वत्स प्रिय भीमसिंह" ? कर नीचे को मुख ।
सुन कर यह करुणा भरी, भूपति वर की बात,
भीमसिंह अति चकित हो, बोले कम्पित गात ।
"पिता जी ! हाँ, कहो" ॥ २२ ॥

मधुर बात कर श्रवण पुत्र की अचरज सानी,
कही नृपति ने पुनः सँभल कर के वर बाणी ।
"प्यारे सुत ! धिक् है मुझे, मैंने तुमसे हाय,
मोह-जड़ित चित भ्रमित हो, किया बड़ा अन्याय ।
स्वीय अविचार से ॥ २३ ॥

सुनते ही निज पिता वचन सब संशयमोचन,
हुये अश्रुमय भीमसिंह के दोनों लोचन ।
किया उन्होंने चित्त में, अपने यह अनुमान,
अब राणा के हृदय का, मिटा पूर्व-अज्ञान ।
दया से ईश की ॥ २४ ॥

राणा ने फिर कहा पुत्र ! अब रहो अचिन्तित,
करो न पश्चात्ताप हुई होनी उसके हित ।
भीमसिंह ! सच मान लो, राज्यासन अधिकार,
देऊँगा कल मैं तुम्हे, न्याय नीति अनुसार ।
छोड़ सब भिन्नता ॥ २५ ॥

"एक बात पर, बड़ी कठिन आ पड़ी यहाँ है,
प्रकट भयङ्कर खड़ी कलह की जड़ी यहाँ है ।
जयसिँह का जिस वस्तु पर, है न लेश अधिकार,
समझ रहा है वह उसे, स्वीय गले का हार ।
हाय ! मम भूल से ॥ २६ ॥

यदि निराश हो जाय आज वह एकाएकी,
खड़ा करेगा विघ्न विषम बनकर अविवेकी ।
दोनों दल के समर से, अगणित बिना प्रमाण,
तुरत व्यर्थ ही जाँयगे, कितनों ही के प्राण ।
इसी अज्ञान से ॥ २७ ॥

"शूलप्राय यह बात हृदय में मम गड़ती है,
नहीं एक भी युक्ति सूझ मुझको पड़ती है ।
एक जने के हित निहत हों यदि लाखों, हाय,
कहो कहो यह है न क्या वत्स ! घोर अन्याय ?
धर्म की रीति से ॥ २८ ॥

सुनी बात यह भीमसिंह ने नृप मति जानी,
तथा चित्त में नृपति न्यायनिष्ठा अनुमानी ।
चरण निकट रख खड्ग निज आँखों में भर नीर,
पितृ प्रेम लख मुग्ध हो बोला यों वह बीर ।
अमृत साना हुआ ॥ २९ ॥

"चिरजीव जयसिंह अनुज मेरा अति प्यारा,
सुख दुख में आधार सदा सर्वत्र सहारा ।
दे सकता उसके लिये, मैं हूं अपने प्राण,
तुच्छराज पद दान फिर, है क्या बात महान ।
उचित सम्मान से ॥ ३० ॥

"यद्यपि कुमति-प्रलिप्त लोभ-वश होकर अन्धा,
उसने मेरे लिये रचा है गोरख धन्धा ।
एक प्राण, दो देह से, थे हम दोनों भ्रात,
आज भिन्नता का हुआ भीषण वज्राघात ।
कपट के व्योम से ॥ ३१ ॥

दुनिया में हे तात ! जिन्दगी है दो दिन की;
हुई भलाई कहाँ लड़ाई से किन किन की ?
करता है जयसिंह क्यों, व्यर्थ कलह का काम ?
भ्रातृ-प्रेम से रिक्त है, क्या उसका हृद्धाम ?
धर्म जो तज रहा ॥ ३२ ॥

"भक्ति-युक्त जयसिंह मांग ले कपट बिसारे,
देता हूँ मैं शीश, प्रेम से, उसे उतारे।
पर जो वह अन्याय से, त्यागेगा कुल-रीति,
ग्रहण करूँगा मैं अहो ! पाण्डव-गण की नीति
न्याय की भीति से ॥ ३३ ॥

दिया आपने राज्य, हर्ष पूर्वक लेता हूँ।
जयसिंह को फिर वही मुदित हो मैं देता हूँ।
कथन आप यह लीजिये सत्य, सत्य ही मान;
होगा कभी न अन्यथा, मम प्रण विकट महान।
अचल है सर्वथा ॥ ३४ ॥

त्याग राज्य चिर-ब्रह्मचर्य्य-व्रत में रत हो के,
हरी भीष्म ने व्यथा पिता की शङ्का खो के।
तज कर निज तारुण्य को, पुरु ने धन्य समर्थ !
लिया जरा को मोद से, पूज्य पिता के अर्थ।
जान कर्तव्य निज ॥ ३५ ॥

"रामचन्द्र ने स्वयं पिता की आज्ञा मानी,
लिया गहन बनवास तुच्छ सुख-सम्पति जानी।
जो न पिता-आज्ञा करूँ पालन किसी प्रकार,
तो मुझको धिक्कार है, बार बार शतबार।
जन्म मम व्यर्थ है ॥ ३६ ॥

यदि रहने से यहाँ कदाचित् मेरे मन में,
राज्य लोभ हो जाय कहीं सहसा कुक्षण में।
इस कारण यह लीजिये, तज कर मैं घर द्वार,
छोड़े देता हूँ अभी, मातृभूमि मेवार।
जन्म भर के लिये" ॥ ३७ ॥

इतना कह कर भीमसिंह निज प्रण-पालन-हित,
शान्त-भाव से भक्ति-युक्त हो अति प्रमुदित चित।
कर प्रणाम नृपराज को धारे हिये उमङ्ग,
छोड़ राज्य वह चल पड़े, कुछ अनुचर के सङ्ग।
कहीं बाहर अहा ! ॥ ३८ ॥

बाहर जाते हुए फेर मुँह भीमसिंह ने,
मातृभूमि को निरख नयन भरलाये अपने।
कही बात जो उन्होंने, उस अवसर पर मित्र !
श्रवण योग्य वह सर्वथा, है स्मरणीय पवित्र।
सुधा सींची हुई ! ॥ ३९ ॥

"धर्मबद्ध हो जननि ! आज तुझको तजता हूँ,
"निश्चिन्तित हो दिव्य-दीनता मैं भजता हूँ।
"किन्तु मृत्यु-पर्य्यन्त भी, मा ! मेरे ये प्राण,
रक्खेंगे गौरव सहित मातृभूमि का ध्यान।
अमित अभिमान से ॥ ४० ॥

"स्वाधीनता अखण्ड; विमल बल विक्रम तेरे,
"जावेंगे अन्यत्र हृदय से कभी न मेरे।
"अस्तु, विनय अन्तिम यही, तुझसे अम्ब ! सभक्ति,
"दे निज प्रति सन्तान को आत्मत्याग की शक्ति।
धैर्य दृढ़ता-सनी !! ॥ ४१ ॥

बीता जब कुछ काल, भीमसिंह के सब साथी,
आये अपने देश लौट, ले घोड़े हाथी ।
भीमसिंह पर लौट कर, आये नहिं हा हन्त !
आया तो आया मरण-समाचार ही अन्त,
लौट उस वीर का ॥ ४२ ॥

धन्य धन्य हे भीमसिंह ! प्रण के अनुरागी,
सज्जन, सत्य-प्रतिज्ञ, विज्ञ, त्यागी बड़भागी !
धन्य आपका प्रण तथा, आत्म-त्याग, आदर्श,
धन्य धर्म-दृढ़ता तथा भ्रातृ-प्रेम-उत्कर्ष ।
धन्य तव वीरता ॥ ४३ ॥

भीमसिंह से बन्धु चार छै हों यदि, प्रियवर !
छा जावै सुख-शान्ति देश में तब तो घर घर ।
देख, नव्य भारत ! जरा भ्रातृ-प्रेम का चित्र,
ले कुछ शिक्षा ग्रहण कर, यह सद्गीत पवित्र ।
गान कर मोद से ॥ ४४ ॥

भीमसिंह है धन्य ! आपके शुचि स्वदेश को !
धन्य आपके विमल हृदय के बल अशेष को !
धन्य आपके भवन को, धन्य आपकी अम्ब !
जुग जुग जग में रहेगा, यह तव कीर्ति कदम्ब ।
अमर तव नाम है ! ॥ ४५ ॥

जग में लाखों मनुज जन्म लेते मरते हैं;
तनु-पोषण के लिये विविध लीला करते हैं ।
पशु सम जन्म मनुष्य का हो जाता है व्यर्थ,
जो रहते हैं अन्ध बन, निज सुख साधन-अर्थ ।
अर्थ के दास हो ॥ ४६ ॥

धर्म-धार में धैर्य सहित नर जो बहते हैं।
चिरजीवी हो वही जगत में नित रहते हैं।
होते हैं जो रत सतत, बन्धु-कुशलता-हेतु,
अमर वही हैं नर-प्रवर सौख्य-सेतु कुलकेतु।
मर्त्य इस लोक में॥ ॥ ४७ ॥

स्थिर हो जग में कौन सदा रहता है भाई,
फिरती कहाँ न कहो मृत्यु की दुखद दुहाई?
क्षण क्षण भङ्गुरता विषम, दिखा रही है सृष्टि,
देख, करो हे भाइयो! खोल हृदय की दृष्टि।
ग्रहण उपदेश कुछ॥ ॥ ४८ ॥

दुर्लभ है नर-देह इसे मत वृथा गँवाओ,
पा साधन का धाम, विषय में मत लिपटाओ।
जब कर सकते किसी का, तुम न लेश उपकार;
करते हो क्यों मूढ़ बन, तो पर का अपकार।
स्वार्थ से लिप्त हो॥ ॥ ४९ ॥

भङ्गुर है यह देह, चार दिन का है जीवन,
करो न कलह-कलङ्क-पङ्क से अङ्क विलेपन।
त्यागो विष सम भाइयो! फूट द्वेष, छल, क्रोध,
रहो प्रेम से सुखसहित तज कर बन्धु विरोध।
सदा फूलो फलो!! ॥ ५० ॥

[४]

रावण ने कर बन्धु विरोध लखो निज सम्पति जान गँवाई।
बालि ने व्यर्थ सुकण्ठ को कष्ट दे खोई स्वजीवन, राज बड़ाई॥
भूल से भी न कभी करिये निज भाइयों से इस हेतु लड़ाई।
काम हैं आते विपत्ति के काल में गांठका कञ्चन पीठ का भाई॥

[५]

कौन ले गया लूट हाय ! मम बाल-काल का सुख-भाण्डार ?
कहाँ प्रबल उत्साह, कहाँ अब, गई हृदय की शान्ति समूल ?
कहाँ सखा सङ्गिनी आदि का, वह नैसर्गिक प्रेम अपार !
आँख-मिचौनी, सुखद धूल-गृह-खेल कहाँ शैशव सुख-मूल !!
चला गया वह समय हाय ! इस जीवन को करके निःसार ।
वही नयन, तनु वही, किन्तु है दृश्य आज जग के प्रतिकूल ॥
मुझे बाल-सङ्गिनी सखागण भी करते हैं हाहाकार ।
इस जीवन के भीषण रण मे पड़, निज निज सुखकर निर्मूल ॥
शान्ति-पूर्ण उस बाल-काल के पावन सुख की होते याद ।
शोक अग्नि से तनु जलता है व्याकुल होते हैं मन प्राण ॥
स्थायी मुझे ज्ञात होता था पावन शैशव का आह्लाद ।
था नहिं मेरे बाल-हृदय को कुटिल काल की गति का ज्ञान ॥
चिर बन्दी रोता है ज्यों नित सोच सोच निज-गृह-सुख स्वाद ।
त्यो मैं अब व्याकुल होता हूँ उस सुख का कर मन में ध्यान ॥

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी का जन्म चैत्र शुक्ला १०; सं० १६४४ में कानपुर ज़िले के मैथा (मायस्थ) नामक ग्राम मे हुआ। काशी के प्रसिद्ध स्वामी भास्करानन्दजी की जन्म-भूमि भी यही मैथा ग्राम है। वाजपेयी जी की अवस्था जब चार ही पाँच वर्ष की थी, इनके पिता और पितामह ने इनको संस्कृत के नीति और धर्म के श्लोक कंठाग्र कराना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार साहित्य और कविता प्रेम का अंकुर बचपन से ही इनके हृदय मे अंकुरित हो उठा। पाठशाला की शिक्षा इन्होने सिर्फ चौदह पन्द्रह वर्ष की ही अवस्था तक प्राप्त की। इसी बीच में इनकी माता और पितामह का देहान्त हो जाने से, तथा पिता के विक्षिप्त हो जाने से, गृहदशा ख़राब हो गई। अतएव आगे ये स्कूली शिक्षा प्राप्त न कर सके। इनका विवाह बारह वर्ष की ही अवस्था मे पिता, माता और दादा जी ने कर दिया था। छोटे भाई बहन तथा अन्य कुछ कुटुम्बी भी थे। उन सब के पालन पोषण के लिए इनको १५ वर्ष की छोटी अवस्था में ही अध्यापक का कार्य स्वीकार करना पड़ा। साहित्य और कविता का प्रेम, जो बचपन से ही अंकुरित हो उठा था, बराबर बढ़ता ही गया। बहुत से अर्वाचीन और प्राचीन कवियो की कविता तथा पुस्तकें और

समाचारपत्र पढ़ते पढ़ते इनके मन में भी कविता करने और लेख लिखने की धुन समाई। सन् १६०५ ई० में, १७ वर्ष की अवस्था में, पत्र-व्यवहार द्वारा हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और देशभक्त पं० माधवराव सप्रे जी से सौभाग्यवश इनका परिचय होगया। सप्रे जी ने उस समय नागपुर से "हिन्दी ग्रन्थमाला" नामक एक मासिक पत्र निकाला था। उसी की सहायता के लिए उन्होंने इनको बुला लिया। सप्रे जी के समान अनुभवी और विद्वान् पुरुष के साथ वाजपेयी जी को साहित्यसेवा का बड़ा अच्छा अवसर मिला। तभी से इनकी कविताएं और लेख भारतमित्र, वेंकटेश्वर समाचार, कान्यकुब्ज, सरस्वती, कमला इत्यादि पत्र पत्रिकाओं में निकलने लगे। सरस्वती सम्पादक पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने भी इनकी साहित्य-सेवा और कविताप्रेम को उत्तेजित किया। सन् १६०७ मे सप्रे जी ने हिन्दी केसरी पत्र निकाला। वाजपेयी जी भी उसके सहायक सम्पादकों में थे। केसरी में भी समय समय पर उनकी राष्ट्रीय कविताएँ निकलती रहीं। लगभग दो वर्ष चल कर सन् १६०६ में ही हिन्दीकेसरी बन्द होगया और वाजपेयी जी सप्रे जी के साथ मध्यप्रदेश के रायपुर नगर में चले आये। वहां दो तीन वर्ष रह कर इन्होंने सप्रे जी के साथ "दासबोध" "रामदास चरित्र" "शालोपयोगी भारतवर्ष" इत्यादि ग्रन्थ तैयार किये। साथ ही मेघदूत का समश्लोकी और समवृत्त हिन्दी अनुवाद भी किया। सन् १६११ में सप्रे जी तथा इनकी उत्तेजना से चित्रशाला प्रेस के मालिकों ने हिन्दी में "चित्रमयजगत्" नामक मासिक पत्र निकाला। ये उसके सम्पादक होकर पूना चले गये और लगभग तीन वर्ष तक बड़ी योग्यता से

उस पत्र का सम्पादन किया। इसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के बुलाने से ये आगरा चले आये, और इन्होंने "आर्यमित्र" पत्र का तीन वर्ष सम्पादन किया। सन् १६१६ में सभा के अधिकारियों से मतभेद हो जाने के कारण ये फिर पूना लौट गये, और दो वर्ष फिर इन्होने "चित्रमय-जगत्" का सम्पादन किया। इसके बाद ये प्रयाग में आकर स्वतंत्र रूप से साहित्यसेवा करते हुये अपनी "तरुण-भारत ग्रन्थावली" का संचालन कर रहे हैं। इस ग्रन्थावली के द्वारा ये हिन्दी में इतिहास, जीवनचरित्र और सदाचार के ग्रन्थो के प्रकाशित करने का शुभ कार्य कर रहे है।

वाजपेयी जी के कुछ ग्रन्थों का ऊपर उल्लेख हो चुका है। उनके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थ इन्होंने और भी लिखे है। जिनमें कुछ प्रकाशित हो चुके हैं, और कुछ अप्रकाशित है। भारतीय युद्ध, स्वामी विवेकानन्द का पत्र व्यवहार, हिन्दू जाति का ह्रास, मेज़िनी, ग्यारीबाल्डी, स्वा० विवेकानन्द के व्याख्यान, छत्रपति शिवा जी, कात्यायनी और मैत्रेयी, एब्राहम लिंकन, स्वामी नित्यानन्द, सुख और शान्ति, युवक-सुधार, सदाचार और नीति, स्वदेशाभिमान, विवेकानन्द नाटक, बज्राघात, चन्द्रगुप्त, इत्यादि।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं:—

[१]

शरद।

नील नीरद नाहिं दीसत इन्द्र-धनु नहिं भाय।
मन्द गति सरितान की भइ सुठि सोई दरसाय॥ १॥

व्योम शोभा बढ़ति निशि में नखत-अवली पाय ।
मनु सितारन-जड़ित माया-नील-पट्ट सरसाय ॥ २ ॥
विमल सरवर लसत कहुँ कहुँ जल अगाध लखाय ।
ललित पीत सुशालि की मृदु महँक सौंधि सुहाय ॥ ३ ॥
विविध रँग के खिले सरसिज कुमुदिनी लहराय ।
भ्रमरगण गुंजरहिं मानहु प्रकृति-यश को गाय ॥ ४ ॥
मोर मद सों मत्त ह्वै अब शोर नाहिं मचाय ।
नृत्य-रत कहुँ नाहिं दीसत उपबननि में जाय ॥ ५ ॥
हंस कलरव करत अब वर विमल सरितन-तीर ।
सारसन की सुभग जोड़ी कहुँ किलोलत नीर ॥ ६ ॥
शुक चक्रवाक लखाहिँ कहुँ कहुँ खंजननि की भीर ।
स्वेत पंछी उड़त नभ-पथ मनहु उजरो चीर ॥ ७ ॥
कंज-रज सों सौरभित शुचि बहत मन्द समीर !
हरत हिय सन्ताप कों अरु करि निरोग शरीर ॥ ८ ॥
पाय सुखमय समय यह हे देशसेवा-वीर !
करहु भारत कों सुखी सब हरहु वाकी पीर ॥ ९ ॥

[२]

ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब ।

ग्रीष्म काल के अन्त समय की,
यह कलिका है अति प्यारी ।
विकसी हुई अकेली शोभा,
पाती इसकी छवि न्यारी ।
कलियाँ और खिली थीं जो सब,
थीं इसकी सखियाँ सारी ।
सो सब कुम्हला गईं देखिये,
सूनी है उनकी क्यारी ।

"सुख दुख दोनों एक साथ हो,
आते हैं बारी बारी ।
इन कलिकाओं से सूचित है,
विधि-विपाक यह संसारी ।

[२]

वियोगी चन्द्र ।

(उष.काल के समय चन्द्र की ओर देख कर)

सखे चन्द्र ! तुम अधोबदन बैठे क्यों ऐसे ?
उदासीन यह हुआ फूल सा मुखड़ा कैसे ?
कहो मित्र ! किसके वियोग से शोकाकुल हो ?
जिससे इतने तेजोहत हो औ व्याकुल हो ।
सुता तारका पति के गृह को विदा हुई हैं;
दुखी हुए तुम; क्योंकि अभी वे जुदा हुई हैं !
कन्याजन तो सदा मित्र ! दूजे का धन है;
उदासीन क्यों किया व्यर्थ ही इतना मन है ?
जुदा हुई अथवा तुमसे कौमुदी तुम्हारी;
जिससे यह है हुई तुम्हारी हालत सारी ?
नहीं नहीं प्रेमातिरेक से हुए भ्रान्त हो !
दशा विचारो अपनी कुछ तो अभी शान्त हो ।
देखो तो ये सूर्य सामने आये मिलने;
लज्जा से ही मित्र ! चांदनी लगी छिपकने ।
होती लज्जाशील देवियां हैं स्वभाव से,
शोभा इनकी यही, नहीं कुछ हाव-भाव से ।
दुःख दूर कर, करो 'मित्र' का स्वागत सुख से ।
करके कुछ सत्कार मधुर बोलो श्रीमुख से ॥

दुःख तुम्हारा देख कुमुदिनी सकुची देखो,
अपनी ही सी दशा मित्र! तुम सबकी लेखो।
सुख सँयोग से, दुख वियोग से स्वाभाविक है।
अनुभव करता इसे सदा प्रेमी भाविक है॥

[४]

सज्जनों का स्वभाव।

दिनकर कमलों को स्वच्छ देता सुहास।
शशि कुमुदगणों को रम्य देता विकास।
जलद बरसते हैं भूमि में अम्बु-धारा।
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा॥१॥
विकल अति क्षुधा से देख के पुत्र प्यारा;
जननि-हृदय से है छूटती दुग्धधारा।
लख कर कुदशा त्यों दीन दुःखी जनो की;
सहज प्रकट होती है दया सज्जनों की॥२॥
लहर-रहित होता है पयोधि प्रशान्त।
सहृदय रहते त्यों धीर गम्भीर शान्त॥
सुख दुख भय चिन्ता आदि से हो अलिप्त—
स्थिरमति रहते है साधु ही आत्म-तृप्त॥३॥
सब नदनदियों का नीर धारा-प्रवाही—
बह कर मिलता है सिन्धु में सर्वदा ही;
तदपि न तजता है आत्म-मर्याद सिन्धु।
सुविपुल सुख मे भी गर्व लाते न साधु॥४॥
यदि सब सरिताएँ ग्रीष्म मे शुष्क हो भी,
वह उदधि रहेगा पूर्ण ही मित्र, तो भी।
धन सुख प्रभुता का सर्वथा हो अभाव,
पर सम रहता है सज्जनो का स्वभाव॥५॥

[५]

षोडशोपचार पूजा।

व्यापक है जो विश्व में जगदाधार पवित्र।
उसका आवाहन कहां किया जाय हे मित्र? ॥ १ ॥
जड़जङ्गम सब जगत को जिसका ही आधार।
आसन उसको दूँ कहां? सूझे नहीं विचार ॥ २ ॥
स्वच्छ निरञ्जन निराश्रय है जो सभी प्रकार।
कहो उसे क्यों चाहिए अर्घ्यपाद्य की धार? ॥ ३ ॥
जो स्वाभाविक शुद्ध है, जो निर्मल भगवान।
स्नान और आचमन का क्यों चाहिए विधान? ॥ ४ ॥
भरा हुआ है उदर में जिसके यह ब्रह्माण्ड।
फिर क्यों आवश्यक उसे तुच्छ वस्त्र का खण्ड? ॥ ५ ॥
जाना जा सकता नहीं जिसका कुछ आकार।
पहनावें कैसे उसे यज्ञसूत्र का हार? ॥ ६ ॥
सुन्दरता का हेतु जो, जो जीवन आधार।
कहो उसे क्यों चाहिए अलङ्कार उपहार? ॥ ७ ॥
जिसे नहीं है वासना जो सब विधि निर्लेप।
पुष्पवास क्यों चाहिए, क्यों चन्दन का लेप? ॥ ८ ॥
जो विश्वम्भर तृप्त है परिपूरण सब काल।
हैं उसके किस काम के नैवेद्यों के थाल? ॥ ९ ॥
जो स्वामी त्रैलोक्य की सम्पति का है एक।
उसे दक्षिणा की भला कहो कौन है टेक? ॥ १० ॥
नहीं जान पड़ता कहीं जिसका पारावार।
कैसे करें प्रदक्षिणा उस अनन्त की यार? ॥ ११ ॥
अद्वय जो सर्वेश है नहीं स्वरूप न नाम।

नहीं समझ पड़ता करें कैसे उसे प्रणाम ? ॥ १२ ॥
जिसका गुण गाते हुए वेद हुए हैं मौन ।
उसका कीर्तन जगत में कर सकता है कौन ? ॥ १३ ॥
पाते हैं रवि, शशि, अनल जिससे प्रखर प्रकाश ।
कहो उसी को कहां से लावें दीप-उजास ? ॥ १४ ॥
भीतर बाहर पूर्ण है जिसका रूप अनूप ।
करें विसर्जन हम कहां उसका वही स्वरूप ? ॥ १५ ॥
पूजा के ये देखिये हैं षोड़श उपचार ।
प्यारे पाठक ! कीजिए इनका खूब विचार ॥ १६ ॥

[६]

अलका-वर्णन ।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं स चित्राः ।
सङ्गीताय प्रहतमुरजाःस्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः ।
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥

तेरे साथी सुरधनु तड़ित्, हैं वहां चित्र, नारी ।
उन्में गान ध्वनि मुरज की, गर्ज तेरी सुप्यारी ।
वे ऊंचे स्वत्सम, मणिमयी भूमि, तू नीर-धारी,
तेरे ही से सदन अलका के सबें काम-चारी !

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं ।
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं ।
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥

हाथों में श्री-कमल, अलकों में काली कुन्द की हैं;

पाण्डु-श्री है वदन पर जो लोध्र-रेणू लगी है।

वेणी में हैं कुरवक गुँथे, कर्ण में हैं शिरीष;

जो भाजे हैं तहँ तव दिये नीप से मांग-केश।

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पाः

हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्याः।

केकोत्कंठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः

नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः।

फूले वृक्षों पर अलि जहां नित्य गुँजारते हैं;

हंसश्रेणीयुत सर सदा कंज भी फूलते हैं।

नाचें नित्योत्सुक भवन के चारु प्यारे कलापी

सायंकाल प्रतिदिन जहा चन्द्रिका है सुहाती।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नन्यैर्निमित्तै-

र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-

र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति॥

आनन्दाश्रू तजकर जहां अन्य अश्रू नहीं है;

नाहीं काम-ज्वर तज व्यथा साध्य जो भोग से है।

कोई मान-प्रिय तज नहीं है वियोग-प्रयोग;

यक्षों को है तरुण वय को छोड़ ना और योग।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-

र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
सङ्क्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्रकन्याः ॥

लेती हैं जो सुरसरि-मरुत् ओर औ नीरधारी,
लेती हैं जो सुरतरु तले छांह सन्तापहारी।
ऐसी कन्या लख कर जिन्हें देव होते अधीर,
खेलें खोजें कनक-रज में मुष्टि से गुप्त हीर ॥

"हिन्दी-मेघदूत" से।

शिवाधार पांडेय

पंडित शिवाधार पांडेय जी का जन्म शिवराति सं० १९४४, तदनुसार, ६ फ़रवरी १८८ को श्रीमान पं० शिवदत्त जी पांडेय के यहां, बुलन्द शहर, में हुआ। इनका निवास स्थान पुराना फीलखाना बाज़ार कानपूर है।

ये कान्यकुब्ज, पटियारी के पांडेय हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अलीगढ़ के ज़िला स्कूल में हुई। सन् १९०१ में इन्होंने फर्रुख़ाबाद के ज़िला स्कूल से एन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। इसके पश्चात ये कानपूर के मिशन कालेज में भर्ती हुये। वहीं से १९०५ में इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। १९०७ में इन्होंने म्योर कालेज, प्रयाग से एम० ए० पास किया। १९०८ में ये एलएल० बी० भी हो गये।

एम० ए० एलएल० बी० हो जाने पर पांडेय जी ने दो वर्ष से कुछ अधिक कानपूर में और एक वर्ष तक प्रयाग की हाईकोर्ट में वकालत की । १९११ में, कुछ महीने प्रयाग के समाचार-पत्रों (लीडर, अभ्युदय आदि) से भी इनका सम्बन्ध रहा । १९१२ में म्योर कालेज में इनको अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर का पद मिल गया, और तब से ये वहीं पर हैं ।

पांडेय जी का जीवन बड़ा सादा और स्वभाव अत्यन्त मृदु तथा सरल है । दिखलाव के इन दिनों में, अँगरेज़ी साहित्य के इतने बड़े विद्वान होते हुए, आपकी नम्रता तथा विनयशीलता बहुत ही सराहनीय है ।

पांडेय जी का अँग्रेज़ी साहित्य पर तो अच्छा अधिकार है ही, हिन्दी साहित्य के भी ये अच्छे मर्मज्ञ हैं। अभी तक इनकी लिखी हुई केवल दो पुस्तिकाएं "समर्पण" और "पदार्पण" प्रकाशित हुई हैं। धर्मराव नाटक लिखा जा रहा है ।

अपनी कविता में बहुत ही सीधे सादे शब्दों का प्रयोग करके ये उसे बड़ी ही हृदयहारिणी बना देते हैं। यहाँ इनकी रचना का कुछ चमत्कार हम पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं:—

[१]

बेला चमेली ।

बेला चमेली, दोनों सहेली,
बगिया में लागी विलास करन ।
दोनों गोरी गोरी, वयस की दोनो थोरी,
हिलमिल लागीं हुलास करन ॥
नीबू नरंगी, सेव जंगी जंगी,
आये अलौकिक अनार ।

आलूबुखारे, आम प्यारे प्यारे,
लग गये क़तारों दरबार ॥
चकई औ चकवा, चटक चतकवा,
चहकैं चहूँ दिसि अपार ।
कुहू कुहू बोलैं, कोकिला कलोलैं,
मोर करैं शोर वेशुमार ॥
आई अनन्दिनि, छत्र धरे चन्दिनि,
छाई चहूँ दिसि अपार ।
काले काले भँवर, झलैं चारु चँवर,
तितलियाँ डुलावैं बयार ॥
मोटी मोटी मूलीं, हिंडोलों में झूलीं,
भाँटे झुलावैं बार बार ।
आली मतवाली, कलेजे की काली,
गाजरैं गवावैं मलार ॥
जामुन दुरंगी, साजैं सरंगी,
लीचियाँ बजावैं बैठी ताल ।
घुय्याँ तरोई, ककड़ियाँ कोई कोई,
घूमैं घनी ले ले थाल ॥
चंद की चपाती, चुवैं चुहचुहाती,
कहीं पका पिरथी का पोस ।
बादलों की बूँदैं, कोई खोलैं मूँदैं,
कोई उड़ावैं ही ओस ॥
बेला चमेली, गावैं सहेली,
तान चली फैल आसमान ।
फूल सारे छुट गये लट्टू हुये लुट गये;
छूट गया कोयलों का मान ॥

आये गुलाबी, आये महताबी;
आये गुललाला गुलाब ।
गेंदा दमक उठी, चम्पा चमक उठीं;
फूल उठा फूल आफ़ताब ॥
केतकी चटक चली, मालती मटक चली,
सूख गई सेवती की शान ।
बचपन से खेली, संगिनी सहेली,
भूल गई आपन विरान ॥
घेला गुलाब भई, सोहै सुरख़ाब भई,
खिल उठा अखिल अकास ।
चंचल चमेली, बकुल गलमेली,
हूल उठा सारा हुलास ॥
बदरी करौंदे, सारे सीधे औंधे,
खड़े हुये बाँधे कतार ।
फूले फूले फालसा, खिन्नियाँ मदालसा,
थेई थेई थिरकैं अपार ॥
केला नासपाती, बन ठन बराती,
नाचैं शराबियों की तौर ।
आलू रतालू, ले ले के ब्यालू,
खावैं अलग चुप चोर ॥
गाजरों की टोली, भाँटों से ठठोली,
कर कर के नाचैं सनाथ ।
मूलियाँ सहम गईं, भूलने में थम गईं,
जम गईं सलगमों के साथ ॥
इतने में पहली, सुन्दर सुनहली,
छुपके किरन आई पास ।

कोई पिछड़ गये कोई पेड़ों चढ़ गये,
भाग गईं भाजियाँ उदास ॥
कलियाँ चटक गईं, चिड़ियाँ सटक गईं,
फैल गया पिरथी प्रकाश ॥
नैन मेरे खुल गये, स्वप्न सारे घुल गये,
भूला न हिरदय हुलास ॥
अजौं जाकी आस ।

माची लुकालुकी या जग जंगम आवैं विहंगम जावैं हजारौं ।
कोऊ दुराव करैं परि पापन कोऊ दुरैं चढ़ि पुण्य पहारौं ॥
कैसे कोऊ बरनै बपुरो विधनाहू दुराय रह्यौ मुख चारौं ।
मोकों निहारै लुको तू, तो लोकन या तन मैं दुरि तोकों निहारौं ॥

[३]

हृदय दुलारी ।

हृदय दुलारी ! किसकी हो प्यारी
जिसका हो हृदय अपार
सकल जगत को जो नित भूलै—प्रणय-तपस्या कर कर फूलै ।
ताही के हिरदय का हार
हृदय दुलारी ! किसकी कुमारी
जिसका हो हृदय उदार
अखिल चराचर को जो चाहै—तृण तृण को सुख दुख अवगाहै ।
ताही के लेहौ अवतार

[४]

जमुन जल ।

जल तेरो जमुने ! आजौ सोई जल !

साँवरे बरन भरो बाँसुरी सुरन भरो।
रास महारास के हुलास हिये हहरो॥
अमर कलोल करै मन मेरे कल कल।
तप के प्रसाद तू ही ब्रज बिहरनहारी।
विष्णुहू के वाहन से तू ही करै रखवारी॥
तैंनेहीं उबारे कलिकाली से अखिल खल।
सूर्य की सुता तूही यम की स्वसा तूही।
कलि में कालिन्दी श्रीकृष्ण की प्रिया ही तूही॥
सरग सिधारैं सीधे सबरे तोरेई बल।
अवनिन पुनि आवैं भुवन भुवन धावैं।
दया सों तिहारी दोऊ हाथ दोऊ लोक पावैं॥
सेवा करैं तोरी सदा तजि कै कपट छल।
सुख के सदन जाऊँ प्रभु के पदन पाऊँ।
सदा मैं तिहारे तीर तेरोई सुयश गाऊँ॥
परम प्रसाद पाऊँ यही मैं तो पल पल।

[५]

किसीको औरत किसीको दौलत;
किसीको मौज़ें किसीको महफ़िल।
किसी को इज़्ज़त किसीको लज़्ज़त;
किसीको पत्थर किसीको रैफ़िल॥
कोई न देखा खुदा का बन्दा;
जो बुत न पूजै कोई न कोई।
हो पीर मुरशिद मुनी महात्मा;
मुलक रही है मुराद तहदिल॥
धरम धरम में धरा है जो कुछ;
वो यार मिलता न आँखों आगे।

फँसे हैं ज़ुल्फ़ों मे जो फिसलकर;
　　रिहाई मिलती न उनको माँगे॥
उड़ै ये दुनिया उड़ै ये दौलत;
　　उड़ै ये शोहरत हो हो के मिट्टी।
मेरे तो दिल में मेरे वतन की;
　　मिली है मिट्टी कहाँ वो भागै?॥
तुही है तेवर तुही है ज़ेवर;
　　तुझी से इज्जत तुझी से दौलत।
तुही तो रिश्ता तुही फरिश्ता;
　　तुही मुहब्बत न जिसमे मोहलत॥
तेरा शिकारी तेरा भिखारी;
　　फिरूँ मैं बन बन फिरूँ मैं घर घर।
गलूँ तो तुझ में जलूँ तो तुझ में;
　　फलूँ तो तुझ में तेरे बदौलत॥
हरेक रग रग हरेक नस नस में;
　　बिजली वस्ले वतन की छोड़ो।
हँसो हँसाओ हिन्दू मुसल्माँ;
　　लो टेको घुटने लो हाथ जोड़ो॥
न जैसा दुनिया मे देखा भाला;
　　दिया खुदा ने है यार आला।
क़दम क़दम पर अगर हो कुरबाँ;
　　तो फिर कलेजो को क्यो सिकोड़ो?॥

[६]

[illegible] मिलन।

वीर हो बली हो सुविदित विजयी हो तुम
अस्त्रन में पं[illegible]त अ[illegible] पि[illegible]त अमोघ शर।

भूरि महाभाग भागिनेय भगवान के हो
अगजग में जाहिर पिता के पुनि जैसे सुत ।
भारतकुल-भूषण विभूषण वसुधा के सुठि
जननी जिय जीवन सजीवन हो मेरे प्रिय !
वीर दुहिता हूं वीरवंश की सुता हूं प्रभु
वीर की वधू हूं बसुधा व्यापी जिनको यश ।
संगर को तुमको सिधारत सन्नाह धरे
कैसे कहे उत्तरा न जाओ नाथ ! रण पथ ?
चलन लगैंगी पल भर में तलवारै चल
भिड़न लगैंगे भरि भरि कै भुज भारी भट ।
दोऊ दल उमहत महान मुठभेड़ ह्वै है
सागर सों सागर अभेरें ज्यो मत्तजल ।
भाँति भाँति फिरिहैं अवर्त्त महा बार बार
ज्यों ज्यों क्रुद्ध करिहै महान युद्ध महारथ ।
कारी अँधियारी कई कोसन कलेसवारी
भारी रणमण्डल उमरिडहैं मतंग घट
मानो घोर सोर भरे हलका हिलोरन के
इक पै इक धाइ हैं दिगन्त लौं रोपमय ।
वा छन वा वीरन के कठिन कसौटी छन
कैसे मैं बरनौं तिहारो वीर ! वाहुबल ?
कुलिशप्रहारन सी तुम्हरी शरधारन सों
गिरन लगैंगे अरिगन के अनगिनती नर ।
दारुण रण उठिहै अपार महा हाहाकार
मानो कहूं कालिका कलोले रण छन भर ।
ऐसो कोलाहल कठोर उठिहै कौरवदल
इत उत जब धाइहैं उतंग कर्णिकार ध्वज ।

लखि लखि तब सत्वर सशंक सैन्यनाश निज
कसि कसि कै कंचन कठोर करत्राण कर
हँसि हँसि कै हिय मे अवश्य हेरि कछु कछु
बधिबे को तव दल सुदीरघ संधानि शर
वायुवेग चपल चलावत चल शोण हय
रथपथ रोकैंगे आय आपै प्रभु आचारज ।
गोल गोल सुन्दर अमोल सुण्डा दण्डन सी
कैसे मैं सुमिरौ तिहारी नाथ ! बाहुन वल ?
निश्चय रणचण्डी अखण्डित रण तृप्त ह्वै हैं
अस्त्र शस्त्र अर्चित सुचर्चित समर रस ।
निश्चय आचारज प्रसन्न ह्वै असीस दैहैं
"जुग जुग जग जीवो सुभटवर सुशिष्यसुत ।"
भभक उठैंगी सप्त रसना पराक्रम की
लखि लखि रणद्वारन को लोथन सों लथपथ ।
चूर चूर ह्वै है विचित्र सबै शत्रुव्यूह
रोषमत्त रोदन करैगो कुरुनाथ शठ ।
मूर्छि मूर्छि गिरिहैं अनेक महावीर मार्ग
घूर्मि घूर्मि पाइहैं न कोऊ तव अश्वन पथ ।
दै दै दुर्वादन प्रचारैगो कौरवेश
चीरि चीरि गल्लन चिघारैगो वस्त्रहर ।
हेरि हेरि मारिहौ अपार अरि घेरि घेरि
चारों दिशि नाचिहै अपूर्व कर्णिकार ध्वज ।
गर्व भरो गर्जिहै शरासन रौहिणेयदत्त
धीर वीर धारा बाँधि धाइहैं इधर उधर ।
ऐसो युद्ध माचिहै महान चक्रव्यूह मध्य
आर्यपुत्र अवसि पसारिहो अमर यश ।

कौन कौन कीरति तिहारी छिति छाइ जैहै
हौंहू पिय ! सुनिहौ अघाइहौ न जीवन भर ।
रोम रोम जननी तुम्है हू नवजन्म दैहै
गर्जि गर्जि हँसिहै टँकोरैं गाण्डीवधारी
साधु साधु श्रीमुख उचारैंगे चक्रधर ।
पाण्डव-कुल-मुकुट महामणि हौ महाराज !
एक छत भारत अधीश्वर पुनि ह्वैहौ प्रभु ।
तासों यदि संगर तिहारो अद्वितीय रहै
यामें नाथ ! मोकों न नेकौ आज अचरज ।
धर्म कर्म अवसि सहाय यही काल ह्वैहै
सत्यपक्ष पाइहै असत्य पै अवश्य जय ।
जीति जीति आइहौ सुकीरति पिय लूटि लूटि
भुजबल जग पाइहौ सु दलि मलि सब रिपुदल ।
हौं हू तव चरणन पलोटन प्रिय आस भरी
पेखि पेखि आरती उतारिहौ अनन्त सुख ।
रोके यह रुकत नहीं अब बहु नैनन जल
नाथजू ! न मानियो कछू हू तुम औरो मन ।
जानौ सुखसरिता हिलोर तट लाँघ चली
कोमल अबला को पिय ! बोलो कितनो सो जिय ?
बार बार बिनऊँ विनायक ! कर जोर जोर
दाहिने बिराजो मम पति के तुम भ्राता युत ।
ऐसी सिंहवाहिनी सहाय करै सिगरी विधि
भ्रातन को मेरे तिहारे बल तृप्ति होय
कोसन लौं कौरव तिहारे नाथ ! कोसै शर ।
धन्य रही कैकयी कि मोहि लियो कोशलेश
धन्य अजौं रुक्मिणी जनार्दन जिन कीन्हे वश ।

आयसु यदि पाती दिखलाती देव ! सङ्गर मुख
संगिनी तिहारो सब भांतिन हूं जल थल ।
जाओ प्रिय मेरे ! महान घमासान करो
पांडवगण रहिहैं सहाय सबै सन्निकट ।
रणमुख सों आइहौ किये जब जयलक्ष्मी वश
देस देस छाइहै दुहाई देव ! दिसि दिसि
लोक लोक माचिहै कलोल महा कोलाहल ।
एक बेर झटिति कृपा को अब दीजै रस
देर ना करूँगी पिय ! रावरे समरमख ।
अबहीं पति देवता ! अनन्दन की आयु हैगी
जाओ रणदेवता समस्त कल्याण करैं
शंखचक्रधारी त्रिपुरारी की रहो शरण ।
जाओ पिय पद पद निहारिहौ गवाच्छन सों
तुम्हरो रणअंगण उतंग कर्णिकार ध्वज ।
छन छन इन श्रवनन तब छाइहै टंकोरैं पिय
सहसन में सुनिहौं अवश्य तब आवत रथ ।
दौरि दौरि आरती उतारिहौ अनन्दमई
सेइहौं तिहारे पिय ! पूजिहौं पियारे पद ।
जाओ देव ! तुमको न रोकिहौं दयामय अब
लौटत पिय ! लूटिहौं तुम्हीं सों या जय को फल
पत्नी हूं आपकी महीपति महाव्रत !

[७]

महाहास ।

आछे नीके नयना काहे पते फारि ।
अखिल गगन अलि रहिउ निहारि ?

झरइ जगत पत झांझर आस ।
टुकुर टुकुर लखि मुकुर अकास ॥
भुनइ भुवन उर बरइ बयारि ।
बन बन बिचरइ हहरि दवारि ॥
बिसम बिरह विस ससि उर भार ।
निसि दिन अग जग अगम अंगार ॥
दिन दिन दरसइ दुसह दुकाल ।
बड़ो बड़ो मुखड़ा बावे वैठो काल ॥
आछे नीके नयना काहे एते फारि ।
अखिल अकास अलि रहिउ निहारि ?
तकउ न अब अलि ! दिसि दिसि कोन ।
अमित अकास महाहास भरो मौन ॥
तपि तपि तन मन जेतो देइ दान ।
बरसइ रस बस तेतोइ तो आन ॥
उठु अलि ! उठु अलि ! लगाउँ गुहारि ।
हेरु हरि हेरु हिय छाया अनुहारि ॥
अनल अनिल जल अवनि अकास ।
दुख सुख भास सारी उरई प्रकाश ॥
क्यों न निसि दिन चित चिता जराय ।
सलिल सच्चिदानन्द अन्हाय ?

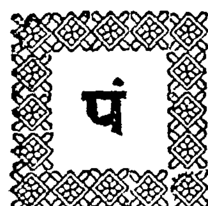
[८]

कविता गायत्री ।

(क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति)
कविता ताको कहै हृदय पृथिवी जब हालै ।
गहन गहन बन गुहा गगन ज्यों गेंद उछालै ॥

कविता ताको कहैं हृदय रमनी जब रूठै।
मधुर मधुर जग कोऊ नवल मुरली धुनि तूठै॥
कविता सो सत्कलपना दे सपनध्या प्रात।
कविता जिय को जागरन भुवन भुवन की रात॥
मिहिरमिल्लित ससि सिला सिखर हिमवत सी विहरैं।
प्रलय समुद की वृहद हिलोरैं दुर्मद लहरैं॥
मुख मुकुन्द के लसै ललित रेखा गोरोचन।
किधौं राम को हृदय किधौं सीता के लोचन॥
बलि बलि कला अखण्ड की कियो अमर उजियार।
जगै दिवानिसि कलपना जगत जगावनहार॥

बदरीनाथ भट्ट



पंडित बदरीनाथ भट्ट बी० ए० गोकुलपुरा आगरा निवासी पंडित रामेश्वर भट्ट के पुत्र हैं। पंडित रामेश्वर भट्ट संस्कृत के विद्वान और हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ पंडित हैं। उनके प्रायः सभी पुत्र सुशिक्षित और साहित्यिक हैं।

पंडित बदरीनाथ भट्ट की अवस्था इस समय पैंतीस वर्ष के लगभग है। ये बड़े सरस हृदय, सच्चरित्र और सुकवि हैं। इन्होंने हिन्दी गद्य पद्य मे कई पुस्तकें लिखी हैं। यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

[१]

यह स्वार्थ-तम का परदा अब तो उठा दे मोहन!
अब आत्मत्याग-रवि की आभा दिखा दे मोहन!

पूरब में फैल जावे शुभ देश-भक्ति-लाली,
सुसमीर एकता की अब तो चला दे मोहन !
मृदु प्रेम की सुरभि को पहुँचा दे हर तरफ़ तू,
मन-पल्लवों में आशा-बूँदें बिछा दे मोहन !
सद्भाव पङ्कजों को अब तो ज़रा हँसा दे,
जातीयता-नलिनि का मुखड़ा खिला दे मोहन !
द्विज वृन्द वन्दना कर तेरा सुयश सुनावें,
वैरी उलूक-गण को अब तो छका दे मोहन !
यह द्वेष का निशाचर हमको सता रहा है,
सत्कर्म-शर से इसकी गर्दन उड़ा दे मोहन !
आलस्य-चोर भी है पीछे पड़ा हमारे,
कर्तव्य-दण्ड से तू उसको डरा दे मोहन !
अज्ञान-स्वप्न में है दुख-दैत्य ने सताया,
सुख की लगा के चुटकी हमको जगा दे मोहन,
चेतें, मिलें, खड़े हों, स्वत्वों को अपने चीन्हें,
मुरली की तान मीठी ऐसी सुना दे मोहन !

[२]

सूरदास ।

सूर को अन्धा कौन कहे ?
करे लोक को जो आलोकित अन्धा वही रहे ॥१॥
क्या प्रभु ने प्रत्यक्ष दिखाया दीप तले तम-रूप ? ।
नहीं, घोर तम में दिखलाया दीपक दिव्य अनूप ॥२॥
दिये विहारी चकाचौंध से सबके नेत्र बिगाड़,
अन्तर्दृष्टि किन्तु दी तुमको सभी हटाई आड़ ॥३॥

नेत्र-रहित हो उस अथाह की पाई तुमने थाह,
नेत्र-सहित हम थके भटकते नहीं सूझती राह ॥४॥
गही कृष्ण ने बाँह तुम्हारी हुई न अड़चन नेक,
तुम्हें कृष्ण ही थी सब दुनिया थे तुम दोनों एक ॥५॥
जिस अदृश्य ने अन्धकूप से खींच किया दुख दूर,
कैद उसी को किया हृदय में, हो तुम सचमुच सूर ॥६॥
कहीं न देखा सुना गया था सूर-श्याम का साथ,
लेकिन तुमने कर दिखलाया वह भी हाथों हाथ ॥७॥
अलङ्कार-ध्वनि-रसमय निकली हृदय वेणु से तान,
वही हमारे लिये बन गई मधुर अलौकिक गान ॥८॥
जिस सद्भक्ति-तत्त्व को उसने फैलाया सब ठौर,
उसे भूल कर हन्त! हुये हम आज और के और ॥९॥

[३]

परिवर्तन और भय।

यह निकला कैसा उजियाला!
हिम-कर-शर-समूह ने तम का जर्जर कर शरीर डाला;
अथवा निशि साबुन से निज कृष्ण रूप को धो डाला।
जिसे देख हँस पड़ी वनश्री, खिली कुमुदिनी की माला;
बिगड़ गई तारों की छवि, मुँह हुआ उलूकों का काला,
उठे न कमल—घोर ईर्ष्या का पड़ा कमिलिनी से पाला;
खाकर सिंह-नाद-भाला करि-वृन्द हो गया मतवाला;
छिपते फिरते हैं मृग—भय का पड़ा बुद्धियों में ताला;
इनकी देख दुर्दशा डर से 'हर! हर!' कहता है नाला;
भय से छिप तम ने सोचा 'क्या जली काल की है ज्वाला';
पड़ा धर्म-संकट हा! हा! अब कौन हमारा रखवाला;
हँस कर बोली विमल चन्द्रिका, 'कहाँ छिपोगे अब लाला!

[४]

प्रार्थना ।

अशरण-शरण ! शरण हम तेरी;

भूले हैं मग विपिन सघन है, छाई गहन अँधेरी ॥ १ ॥
स्वार्थ-समीर चली ऐसी, सब सुमन-सुमन बिखराये;
हा सद्भाव-सुगन्धि चुराई, प्रेम-प्रदीप बुझाये ॥ २ ॥
कलह-कण्टकों से छिदवाया, सुख-रस सभी सुखाया;
भ्रातृ-भाव के बन्धन तोड़े, अपना किया पराया ॥ ३ ॥
लख दुर्दशा हमारी नभ ने, ओस-बूँद ढलकाई;
वह भी हम पर गिर कर फूटी इधर उधर कतराई ॥ ४ ॥
करुणा-सिन्धु ! सहारा तेरा, तूही है रखवाला;
दीन अनाथ हुये हम हा हा तू दुख हरनेवाला ॥ ५ ॥
ऐसा कृपा-प्रकाश दिखा दे, अपनी दशा सुधारें;
आत्म-त्याग का मार्ग पकड़ लें, देश-प्रेम उर धारें ॥ ६ ॥
विस्तारें जातीय एकता भेद विरोध विसारें ।
भारत माता की जय बोलें, जल थल नभ गुञ्जारें ॥ ७ ॥
अशरण-शरण ! शरण हम तेरी ।

[५]

सद्गुरु-प्रार्थना ।

जीवन-नौका बहती है,

तव कृपा-सुरसरी-धार में, जीवन-नौका बहती है ।
नहीं डाँड़ पतवार यहाँ है, बेसुध खेवन हार यहाँ है ।
तुझ पर दार-मदार यहाँ है, यों हँसती रहती है ।
जीवन-नौका बहती है ॥ १ ॥

रुष्ट प्रकृति का हास यहाँ है, यम-यातना विलास यहाँ है
तथा मृत्यु-उपहास यहाँ है, पर सब कुछ सहती है।
जीवन-नौका बहती है ॥ २ ॥

पार लगी तो भर पावेगी, डूब गई तो तर जावेगी।
निश्चय अपने घर जावेगी, आशा यों कहती है।
जीवन-नौका बहती है ॥ ३ ॥

[६]

स्वामीजी।

इसे ही कहते हैं वैराग्य ?
तो विरागता के, सचमुच ही फूटे समझें भाग्य !
निर्मल वसन बिगाड़ा—उस पर धरा सुनहरी रंग,
लज्जित हुआ जाल माया का देख जटा का ढङ्ग।
क्रोध-कमण्डलु, मोह-माल, कर लिया द्रोह का दंड,
लोभ लँगोट बाँध फैलाते हो प्रचंड पाखंड।
तन में भस्म रमाई, कर के भस्म सभी घर-बार,
अब चिमटा ले निकल पड़े हो करने जग उद्धार।
घर घर टुकड़े माँग रहे हो—तप के बल हो धन्य !
दर दर नित धक्के खाते हो—अहो कष्ट तप-जन्य !
चोरी, जुवा, लफंगेपन में हो तुम गुरुघंटाल,
गाँजा, भाँग, अफ़ीम, चरस, रस मदिरा के हो काल।
संसृति में खुद फँसे हुए हो हमें दिखाते मुक्ति !
धन्य धन्य अध्यात्म शक्ति को, धन्य मुक्ति की युक्ति !
बहुत हो चुकी गुरुडम-लीला अब इससे मुँह मोड़,
बाबा जी, अब बन मनुष्य तू—बनमानुसपन छोड़।

[७]

जीवन-मुक्त-पञ्चक ।

पूछते हो क्या मेरा नाम,
जड़ चेतन सब दिखा रहे हैं मेरा रूप ललाम ।

[१]

जल, थल, अनल, अनिल, गगन सब में हूँ मैं व्याप्त;
विश्व बीज ओङ्कार तक मुझ में हुआ समाप्त । पूछते हो०

[२]

आत्म-ज्ञान की नाव में, बैठा हूँ सानन्द;
भव-सागर में घूमता फिरता हूँ स्वच्छन्द । पूछते हो०

[३]

भव-जल में मैं कमल हूँ, भव-घन में आदित्य;
भव-घट-मठ में व्योम हूँ, अद्भुत, अक्षर, नित्य । पूछते हो०

[४]

नर-तनु है धारण किया, करने को खिलवाड़;
कोई देख सका नहीं तिल की ओट पहाड़ । पूछते हो०

[५]

अहङ्कार का हार, डाल कल्पना के गले;
माया-मय संसार, बन बैठा मैं आपही । पूछते हो०

[८]

नया फूल ।

खिला है नया फूल उपवन में,
सुखी हो रहे हैं सब तरुवर, बेलें हँसती मन में ॥ १ ॥

प्रात समीर लगी, सुख पाया, पहली दशा भुलाई,
जिधर निहारा उधर प्रेम की, थाली परसी पाई ॥ २ ॥
रूप अनूठा लेकर आया, मृदु सुगन्धि फैलाई,
सब के हृदय-देश में अपनी प्रभुता-ध्वजा उड़ाई ॥ ३ ॥
जीत लिया है तूने सबको, ऐसी लहर चलाई,
रो कर, हँस कर,—सभी तरह से अपनी बात बनाई ॥ ४ ॥

[६]

नौकरी ।

१—प्रश्नः

सुन्दर हार कहाँ से पाया,
इसकी उजली चमक दमक ने सब का हृदय लुभाया ।
बड़े मनोहर रत्न जड़े हैं—धन के दुर्ग खड़े हैं,
जिनके प्रभा पूर्ण विशिखों ने रिपु दारिद्र्य मिटाया ॥
सुन्दर हार कहाँ से पाया ।

२—उत्तरः

झूठा हार गले लटकाया,
इसकी कोरी तड़क भड़क ने दुनिया को बहकाया ।
सभी काम इसका है नक़ली इसने हमें फँसाया,
भीतर कुछ बाहिर कुछ—कुछ का कुछ है हमें बनाया ॥
झूठा हार गले लटकाया ।

माखनलाल चतुर्वेदी

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी की अवस्था इस समय पैंतीस वर्ष के लगभग है। आजकल ये जबलपुर से निकलनेवाले "कर्मवीर" साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं। वर्तमान हिन्दी कवियों में इनकी कविता बड़ी ओजस्विनी होती है। ये बड़े सुशील, सच्चरित्र, हिन्दी भाषा और स्वदेश के भक्त और सुकवि हैं। इनका जीवन साहित्यिक है। इनका लिखा हुआ कृष्णार्जुन युद्ध नाटक मेरे देखने मे आया है। उसकी लेखनशैली चित्ताकर्षक है।

यहाँ इनकी कविता का कुछ नमूना उद्धृत किया जाता है:—

[१]

मेरा उपास्य।

"लो आया"—उस दिन जब मैंने सन्ध्या वन्दन बंद किया,
क्षीण किया, सर्वस्व, कार्य्य के उज्ज्वल क्रम को मन्द किया।
द्वार बन्द होने ही को थे,—वायु वेग-बलशाली था,
पापी हृदय कहाँ? रसना में रटने को वनमाली था।
अर्द्ध रात्रि, विद्युत-प्रकाश घन गर्जन करता घिर आया,
लो जो बीते सहूँ—कहूँ क्या,—कौन कहैगा—"लो आया"॥१॥
"लो आया"—छप्पर टूटा है वातायन दीवारें हैं,
पल पल में विह्वल होता हूँ, कैसी निर्दय मारें हैं।

वह जाने दो—कर्म धर्म की सामग्री वह जाने दो
थोड़े चावल के कण हैं.................. ....जाने दो
मैं गिर गया, कहा—क्या तू भी भूल गया ममता माया;
सुनता था दुखिया पाता है—तू कहता है—"लो आया" ॥२॥
"लो आया"—हा! वज्र-वृष्टि है; निर्बल! सहले किसी प्रकार,
मेरी दीन पुकार, धन्य है उचित तुम्हारी निर्दय! मार;
आराधना, प्रार्थना, पूजा, प्रेमाञ्जली, विलाप कलाप;
"तेरा हूँ, तेरे चरणों मे हूँ"—पर कहाँ पसीजे आप!
सहता गया—जिगर के टुकड़ों का बल,—पाया, हाँ, पाया;
आशा थी—वह अब कहता है—अब कहता है—"लो आया"॥३॥
"लो आया"—हा हन्त! त्याग कर दुखिया ने हुंकार किया,
सब सहने जीवित रहने, के लिये हृदय तय्यार किया।
साथ दिया प्यारे अंगों ने, लो कुछ शीश उठा पाया,
जलते ही पर शीतल बूँदें! बिजली ने पथ चमकाया!
पर यह क्या? झोंकों पर झोंके—उहँ बस बढ़ कुछ झुंझलाया,
थर्राया, अकुलाया—हाँ सब कुछ दिखला लो, "लो, आया" ४
हाथ पाँव हिल पड़े हुआ, हाँ सन्ध्या वन्दन बन्द हुआ,
ईंटें पत्थर रचता हूँ—स्वाधीन हुआ! स्वच्छन्द हुआ,
टूटी, फूटी, कुटी,—पधारो!—नहीं,—यहाँ मेरे आवें,
मेरी, मेरी, मेरी, कह प्यारे चरणों से चमकावें।
दीन, दुखी, दुर्बल, सबलों का विजयीदल कुछ कर पाया;
नभ फट पड़ा—उजेला छाया,—गूंज उठा—लो, "लो आया"५

[२]

भारतीय विद्यार्थी।

समय जगाता है, हम सब को, झट पट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त, कार्य्य में, निर्भय लग जाना ही होगा।

दृढ़ कर मस्तिष्क, मनस्वी, बन कर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण पर, जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन, बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी ॥१॥

समय एक पल भी न हमें, अब भाई व्यर्थ बिताना होगा,
शक्ति बढ़ा गौरव-गिरीश पर, चढ़ कर शौर्य्य दिखाना होगा।
सम्पति का उपयोग हमें, अनुकूल बुद्धि से करना होगा,
बढ़ते हुये मार्ग में हमको नहीं कभी भी डरना होगा।
इस कर्तव्य-भूमि पर, तृण सम, प्रण पर प्राण गमाने होगे,
वीरों ही के पद-चिन्हों पर, अपने पैर जमाने होंगे ॥ २ ॥

कठिनाइयाँ कठोर करोड़ों, हमें गिराने को आवेंगी।
उन्हें हटा कर बढ़े चलेंगे, तो वह दिन झटपट आवेगा,
भारतवर्ष हमारा प्यारा, विश्व मुकुट-मणि कहलावेगा।
पूज्य पूर्वजों की आत्मायें आशा धर कर देख रही हैं,
देखे क्यों न? हमे वे अपने अंश अनोखे लेख रही हैं ॥ ३ ॥

देख देख भारत को, उनके है बहती आँसू की धारा,
मानो यह बन गया उन्हीं से सुप्र-मेखला-सागर खारा।
पर अब अपनी ओर देख मन उनका धीरज धर पाया है,
यह संसार सदा नवयुवकों ही का दम भरता आया है।
'हम पर है सब भार'—बन्धु! यह बात ध्यान से टले न देखो,
विश्वासी वे आर्य्य-स्वर्ग मे कर कमलों को मलें न देखो ॥४॥

ब्रह्मचर्य्य-व्रत भीष्मपितामह को आगे रख धार रहे हों,
वीर तेज में अर्जुन बन कर, दुर्जन दल को मार रहे हों।
सादेपन में हो सुतीक्ष्ण, पागल से प्रण को पाल रहे हों,
न्याय-नीति में विदुर सरीखे तीखे वाक्य निकाल रहे हों।

'कर्म-क्षेत्र हमको मिल जावें, हो बस इसी बात के प्रार्थी,
ऋषियो की सन्तान वही हैं, अद्भुत भारतीय विद्यार्थी ॥ ५ ॥

सीख रहे हों पश्चिम से जो, धर्मस्थल में मरने के गुण,
नैतिक छान बीन दृढ़ता मर्मस्थल में धरने के गुण।
हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिला कर, कर्मस्थल जय करने के गुण,
अपनी कार्य्य शक्ति से दुनियाँ भर के मन वश करने के गुण।
वे ही है माता के रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वेही हैं लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥ ६ ॥

भारतीय शालाओं के गुण, विश्व विदित करनेवाले हों,
भारतीय शिक्षा का सूरज, शीघ्र उदित करने वाले हो।
भारतीय सागर को बढ़ कर, नित्य मुदित करनेवाले हों।
भारतीय-निन्दक-समूह अविलम्ब क्षुभित करनेवाले हों।
परिवर्तन कर देने वाले, देवि भारती के आज्ञार्थी,
निस्सन्देह कहा सकते हैं, ऐसे, भारतीय विद्यार्थी ॥ ७ ॥

आज जगत की राज-पुस्तिका में भारत का नाम नहीं है!
वर्तमान आविष्कारों में, हाय! हमारा काम नहीं है!
रोता है, सब देश, देश मे दानों को भी दाम नहीं है!
कहते है सब लोग, यहाँ के लोगों में कुछ राम नहीं है!!!
'नाम नहीं है! काम नहीं है! दाम नहीं है! राम नहीं है!
तो बस इन्हे प्राप्त करने तक, हमको भी आराम नही है ॥८॥

घर २ में जगदीशचन्द्र वसु होना काम हमारा ही है,
बन कर कृषक, गर्व से कृषि को बोना काम हमारा ही है।
शिल्प बढ़ा कर ताज महल फिर रच कर के दिखलाने होंगे,
व्यापारी बन, देश देश में अपने पोत घुमाने होंगे।

रेल तार आकाश-यान, ये हम क्या कभी बना न सकेंगे ?
शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहिना न सकेंगे ॥९॥

'मिल' की बातों को सुन कर कुछ निश्चित मार्ग बनावेंगे हम,
'स्पेंसर' के सिद्धान्त सीख शिक्षा के क्षेत्र बढ़ावेंगे हम ।
साधु 'मेज़नी' से सीखेंगे, 'निज कर्तव्य निभाना कैसे' ?
'कार्लाइल' से यह पूँछेंगे—'वीर किन्हे कहते है ? कहदे,
'डबल्यू टी स्टेड' किधर हैं ? जागृति-शान्ति-मरण बल वहदे १०

पहिले बाल भरत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा,
पुनः भरत हो, बन्धु-प्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा ।
तभी भरत हो, देह-भान तज, विश्व रूप बन जाना होगा,
फिर भारत के पुत्र भरत कहला कर गौरव पाना होगा ।
जब तक नहीं भरत-कुल-दूषण, भूषण हो, होंगे प्रेमार्थी,
तब तक कैसे कहा सकेंगे—'विजयी भारतीय विद्यार्थी' ॥११॥

भारत माता ! अपने इन पुत्रों को पहिले का सा बल दे,
हे भारती ! दया कर क्षण मे सब की दुर्बलता तू दल दे ।
भारत की सच्ची आत्मायें आगे बढ़े, उन्हे क्यों भय हो ?
भारतवासी मिल कर गावें–'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो ।'
यह सुन कर जगती तल कह दे, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो',
प्रतिध्वनि में जगदीश्वर कह दे, 'भारतवर्ष तुम्हारीजय हो' १२

जीवन-रण मे वीर ! पधारो, मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना, गिर कर बढ़ना, तुम से सब विघ्नो को भयहो ।
नेम निभाओ, प्रेम बढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवों से भी कहला लो यह—'विजयी भारतवर्ष पधारो !'
भारत के सौभाग्य विधाता, भारत माता के आज्ञार्थी,
भारत-विजय-क्षेत्र में जाओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥१३॥

[३]

भारत के भावी विद्वान ।

आज कई वीरों के रहते, हुआ न उन्नत हिन्दुस्तान,
बना सका कोई गुण, विद्या-बल में उसे न गौरव-वान ॥
तो भी धीरज धरो, डरो मत, मेरे आशाकारी प्राण!
देखो, कुछ कर दिखलावेंगे, भारत के भावी विद्वान ॥१॥
जिनको बाल समझ कर, माता, दूध पिलाती सुधा समान ।
जिनको पाल हुई है जगती तल में, वह आनन्द-निधान ॥
जिनको लाल लाल कह उसने, भुला दिया सुख-दुख का ध्यान ।
जानो उन्हें राष्ट्र की सम्पत् भारत के भावी विद्वान ॥२॥
हैं किस दुख से दुखी ? विचारो, उनका हरो शीघ्र सन्ताप ।
क्यों दुर्बल हैं ? क्यो रोते हैं ? क्यों भूले हैं मधुरालाप ?
माताओ ! समझाओ उनको, देकर तन मन जीवन दान,
देखो ! दुखी न होने पावें, भारत के भावी विद्वान ॥३॥
आर्य्य-कीर्ति के स्तम्भ, सौख्य के सेतु, महत्ता के अवतार,
कठिन समय में, आशा के, बस एक मात्र सच्चे आधार ॥
यही तुम्हारा कष्ट हरेंगे, यही बनेंगे शक्ति-निधान ।
पिता ! प्राण दे पालो ये हैं भारत के भावी विद्वान ॥४॥
आओ इनकी शिक्षा के हित, उथल पुथल कर दें संसार,
इन्हें बनावें कला-कुशल, नय-निपुण, वीर धीमान उदार ।
डरें न प्रण पर मरें करें कर्तव्य बनावें दृढ़ सन्तान,
भारतीय हैं वही, बनावें, भारत के भावी विद्वान ॥५॥
अब तो पिता निकम्मे होकर, शिक्षा का कर सकें न यत्न ।
राज्य, देश, कोई न परखना, भरत-वसुमती के ये रत्न ॥
क्योंकर वह उन्नत होवेगा, खोवेगा अपना अज्ञान ।
कई करोड़ मूर्ख हैं, हा ! जिस भारत के भावी विद्वान ॥६॥

"अन्न नहीं है, फ़ीस नहीं है, पुस्तक है सहायक हाय!
जी में आता है, पढ़ लिख लें, पर इस का है नहीं उपाय।
"कोई हमें, पढ़ाओ, भाई! हुए हमारे व्याकुल प्राण" ॥
हा! हा! यों रोते फिरते हैं भारत के भावी विद्वान ॥७॥
"बूट चाहिये, सूट चाहिये कालर हैट और नेकटाय,
केन चाहिये, चेन चाहिये, घड़ी सहित फिर डेली चाय।
देखो इस पर लिखा न होवे. कहीं "मेड इन हिन्दुस्तान,"
क्योंकि हमीं तो हैं, इस बूढ़े भारत के भावी विद्वान" ॥८॥
"शुभ्र वस्त्र हैं, बुद्धि शस्त्र हैं; पढ़ते हैं वन मे निश्शंक,
बढ़ा रही है बल वैभव को, प्यारी मातृभूमि की अङ्क ॥
ब्रह्मचर्य्य रह, सरस्वती पर, दान करेंगे तन, मन, प्राण"।
ये है, निस्सन्देह हमारे, भारत के भावी विद्वान ॥१०॥
किनको होगा जन्मभूमि के कष्टों का पूरा अनुमान?
भाषा, भाव, भेष, भोजन मे, भारतीयता का अभिमान।
कौन हमारा दुःख हरेंगे, हमें करेंगे गौरववान?
यह सुन, सच्चे हृदय कहेंगे, भारत के भावी विद्वान ॥१०॥
शिल्प गया, वाणिज्य गया शुभ शिक्षा का है, मान नहीं,
कृषि भी डूबी हुये दरिद्री, पर इसका कुछ ज्ञान नहीं!
हाय! आज हम भोग रहे हैं, भिड़की, घृणा और अपमान,
कैसे ये दुख दूर करेंगे, भारत के भावी विद्वान ॥११॥
प्रलय-कारिणी युवक-शक्ति की क्या सुन पाये बात नहीं?
भीष्म प्रतिज्ञा. लव, कुश कौशल, पार्थ-पुत्र-बल ज्ञात नहीं?
भूलो मत, लिख लो निस्संशय, इसे हृदय में पक्की मान।
"भारत का सब दुःख हरेंगे, भारत के भावी विद्वान" ॥१२॥
सूरज! सावधान हो जाओ, मातृभूमि! तुम धरलो धीर।
पश्चिम! तू भी शीघ्र सम्हल ले, नीति बदल बन जा गम्भीर ॥

कर्मक्षेत्र में आते हैं अब, करने को जननी का त्राण,
कई करोड़ दुखो से व्याकुल, भारत के भावी विद्वान ॥१३॥

[४]

देश में ऐसे बालक हों।

विश्व में सब बहनों के लाल, रहे स्वातन्त्र्य-हिंडोले झूल।
स्वर्ग से, वे देखो, सानन्द चढ़ाये जाते उन पर फूल॥
अभागिनि हूं मैं ही भगवान! उड़ाई जाती मुझ पर धूल।
चढ़ाये जाते मुझ पर वज्र गड़ाये जाते मुझको शूल॥
दोष-दुख-दुर्जन-घालक और विश्व-रथ के संचालक हों।
दुखी हूं, दो हे दीनानाथ! देश में ऐसे बालक हों॥१॥
कसक क्यों रहे कर्म में कभी, क्रूरतर होना हो तो होंय।
ठसक क्यों रहे धर्म में नित्य साधना सेवा जग में बोयँ॥
देवताओं में हो निष्काम, मानवों के मन के हों श्याम।
दानवो का दल देखे अड़ा, वहाँ हो रण कर्कश श्रीराम॥
भीरुता भागे झट भय खाय, कार्य्य से काँपे सब संसार।
मोद से कहें, सुनो जी विश्व! राष्ट्र की वीणा की झङ्कार॥२॥
शक्ति हो, हो न कभी हे देव! दुर्बलों के दलने की चाह।
ध्यान हो, कर देगी संहार सृष्टि का यह दुखियों की आह॥
नीचतम नीति न हो स्वीकार, कपट की रहे न मारामार।
रहे यों बोदे, कायर, नहीं, सहें जो ठोकर, अत्याचार॥
हृदय-मण्डल पर लेता रहे, सदा स्वातन्त्र्य-समुद्र तरङ्ग॥
प्राण तक दे देने की नित्य, चित्त में उठती रहे उमङ्ग ॥३॥
करें कुछ बिजली का सञ्चार, नसों में, भूतकाल के चित्र।
न बिगड़े वर्तमान का हाथ! कर्ममय सुन्दर दृश्य चित्रित॥
बने क्यों कोई बूढ़ा सिंह, भविष्यत का, यों ठीकेदार।
बनावें गजब आप अविलम्ब सँभालें भारत का सब भार॥

समय के सन्देशे के वेद, सुनाई पड़ें, बढ़ावें रोष—
सजावें कोष, हटावें दोष, सिटावे तोष, जगावे जोश ॥४॥
महात्मापन का होवे नाश, दमकता हो समानता तत्व ।
देश के अङ्ग न मारे जायँ, प्राप्त हो पूरा पूरा स्वत्व ॥
करैगा क्या सूखा स्वाध्याय, तपस्या के हों सूखे भाव ।
न हो कुछ दाव, न हो दुर्भाव, रहे "सब कुछ" देने का चाव ॥
शीश पर वह देखो.दुर्दैव साध कर खड़ा तीक्ष्णतर वाण ।
"अरे चल ! साधेंगे कर्तव्य, तुम्हें लेना हो ले ले प्राण" ॥५॥
सुनावें तो बिजली के वाक्य शीश भूपालों के झुक जाँय ।
सृष्टि कट मरने से बच जाय, शस्त्र चाण्डालों के रुक जायँ ॥
पाप के पण्डे पावें दण्ड, दम्भ से दुनियाँ भर डर जाय ।
भगीरथ मन की विनती मान, स्फूर्ति की गंगा कुछ कर जाय ॥
प्रेम के पालक हों या न हो, प्रणों के पूरे पालक हो ।
भारती ने यों रोकर कहा—"देश में ऐसे बालक हो" ॥ ६ ॥

[५]

आराधना !

विश्व देव ! यह देख तुम्हारी दुर्गम चालें,
किससे क्या क्या कहें ? कहाँ तक आँसू ढालें ?
जी होता है,—तुम्हें सम्हाले देखें भालें;—
'सुनो सुनो'—क्या सुनें ? भुजायें स्वयं उठा ले ।
'लो, सुनो,'—"सफलता आ रही, है किन्तु मृत्यु के साथ है;
बस, उठो, कर्म करने लगो, जीत तुम्हारे हाथ है ॥

[६]

"परम पुण्य का पुञ्ज टूटने वाला ही है,
स्वत्व सुधा का भाण्ड फूटने वाला ही है;

कौन है? है देश का जीवन यही
  और है वह, जो कहाता है हृदय ॥ ४ ॥
सृष्टि पर अति कष्ट जब होते रहे
  विश्व में फैली भयानक भ्रान्तियाँ।
दंड अत्याचार बढ़ते ही गये
  कट गये लाखों; मिटीं विश्रान्तियाँ ॥
गद्दियाँ टूटीं असुर मारे गये—
  किस तरह? होकर करोड़ों क्रान्तियाँ ॥
तब कहीं हैं पा सकीं मातामही
  मृदुल जीवन में मनोहर शान्तियाँ ॥
बज उठीं संसार भर की तालियाँ
  गालियाँ पलटीं—हुई ध्वनि जयति जय ॥
पर हुआ यह कब? जहाँ दीखा अहो!
  विश्व का प्यारा कहीं कोई 'हृदय' ॥ ५ ॥

गोपाल-शरणसिंह

बारहवीं शताब्दी के प्रथम मध्यभारतान्तर्गत जहाँ इस समय बाघेलों का सुविशाल शक्तिशाली रीवाँ राज्य स्थापित है सेंगर वंश राजपूतों का स्वतन्त्र राज्य स्थापित था। यह वंश सदा समय समय पर अपनी अपूर्व वीरता और साहस के कारण छोटे बड़े अनेक युद्धों में योग देता रहा है जो इतिहास-मर्मज्ञों पर भली भाँति विदित है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह

इसी वंश के भूषण हैं। इनके पिता का नाम ठाकुर जगत् बहादुर सिंह था। आप पुराने चाल ढाल के बड़े ही लड़ाकू क्षत्रिय थे। आपकी रणक्रीड़ा की अनेक किम्वदन्तियाँ सुनी जाती हैं जिनसे पता चलता है कि आप वास्तव में शूर पुरुष थे।

पौष शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९४८, को ठाकुर गोपाल शरण सिंह जी का जन्म हुआ। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस कहावत के अनुसार बाल्यकाल ही से इनमें नैसर्गिक प्रतिभा थी। शैशवावस्था के पश्चात् पिता जी के निरीक्षण में इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। हिन्दी की साधारण योग्यता होजाने पर इनको संस्कृत का अभ्यास कराया गया। अल्पकाल ही में इन्होंने संस्कृत भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त करली और १३ वर्ष की अवस्था में अँग्रेजी भाषा के अध्ययनार्थ ये दरबार हाई स्कूल रीवाँ में प्रविष्ट हुये।

सन् १९१० में ये मेट्रिक्युलेशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। छात्रावस्था में इन पर अध्यापकों की विशेष कृपा रहती थी और ये अपनी कक्षा में उत्तम विद्यार्थी गिने जाते थे।

इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर चुकने पर ये विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षाओं के लिये तैयार हुए और प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में इन्होंने प्रवेश किया। परन्तु कई कारण ऐसे पड़े कि इनको दुःख के साथ कालेज छोड़ना पड़ा। पर ज्ञान-पिपासा शान्त न हुई।

ये रीवां राज्यान्तर्गत प्रथम कक्षा के सुप्रतिष्ठित रईसों में हैं। इनको पैतृक सम्पत्ति लगभग ७०,०००) की जागीर।

अब आपही अपनी ज़ागीर के मालिक हैं। इनका निवासस्थान नईगढ़ी में है और इलाका नईगढ़ी और स्वयं ठाकुर साहेब नईगढ़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अब इनकी अवस्था प्रायः २८ वर्ष की है। इनसे छोटे इनके ४ भाई हैं। बाल्यावस्था से ही इनका साहित्य पर प्रेम था। जिस समय ये संस्कृत पढ़ते थे उसी समय से इन्होंने मातृ-भाषा की सेवा प्रारम्भ की थी। पहले ये बृजभाषा मे कविता लिखते थे। जो समय समय पर कवीन्द्र वाटिका और रसिक मित्र नामक साहित्य के मासिक पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली की कवितायें सरस्वती में देखकर इनकी भी इच्छा खड़ी बोली की ओर झुक गई और ये खड़ी बोली की कवितायें लिखने लगे। समय समय पर इनकी लेखनी द्वारा अनेक अच्छी कवितायें सरस्वती में निकल चुकी हैं।

सन् १९१६ में इनका इलाका कोर्टआफ वार्ड्स से मुक्त हुआ। तब से आपको गृह प्रबन्ध मे लिप्त रहने के कारण मातृभाषा की सेवा करने का अवसर कम मिलता है। आप से मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, ये शिक्षित, सुयोग्य और बड़े सुशील सज्जन हैं। देशप्रेम की मात्रा कम नहीं। ये प्रायः समस्त सार्वजनिक कार्य्यों में योग देते और विद्यार्थियों की विशेष सहायता करते हैं। आप ऐसे नवयुवक रईसों की देश को बड़ी आवश्यकता है।

यहाँ ठाकुर साहब की कुछ चुनी हुई कवितायें प्रकाशित करते हैं:—

[१]

हृदय की वेदना ।

नित हृदय जलाती अग्नि सी वेदनायें,
मुझ पर अब सारी आपड़ी है बलायें ।
सब तरफ मुझे है दृष्टि आता अँधेरा,
निशि दिन रहता है खिन्नही चित्त मेरा ॥१॥
दिन दिन अब मेरी हो रही क्षीण देह,
सुख-सदन न भाता है मुझे नेक गेह ।
मन अब लगता है हा! कहीं भी न मेरा,
दृग-युग-गृह में है अश्रु धारा बसेरा ॥२॥
अगणित जग मे हैं वस्तुयें चित्तहारी,
पर तनिक न कोई भी मुझे मोदकारी ।
हरदम मुझको है घोर चिन्ता सताती,
अहह तनिक निद्रा भूल के भी न आती ॥३॥
प्रकृति नित नई है मञ्जु शोभा दिखाती,
निज रुचिर छटा से जी सभी का चुराती ।
सब तरफ अनोखे दृश्य हैं दृष्टि आते,
पर तनिक मुझे वे क्यों नहीं हाय! भाते ॥४॥
सुरभित बहता है मोददायी समीर,
पुलकित करता है जो सभी का शरीर ।
मगर वह न थोड़ा भी मुझे है सुहाती,
सचमुच दुखियों को है सुधा भी न भाती ॥५॥
हृदय हर रहे हैं फूल के फूल नाना,
मन खग कुल का है मोहता मञ्जु गाना ।
छवि गिरि बन बागों की न क्या चित्तहारी,
मगर न मुझको हैं नेक ये मोद कारी ॥६॥

दुखमय दिन मेरे ये कटें हाय! कैसे ?
अब बिलकुल होते ज्ञात ये कल्प जैसे।
अति दुखद मुझे है यामिनी भी कराला,
वह द्रुपद-सुता के चीर सी है विशाला ॥७॥

यदपि सतत मैंने युक्तियाँ की अनेक,
तदपि अहह! तूने शान्ति पाई न नेक।
उड़कर तुझको ले मैं कहां चित्त जाऊँ ?
दुखद जलन तेरी हाय! कैसे मिटाऊँ ॥८॥

हृदय! नित तुझे मैं खूब हूं बोध देता,
दुख विफल निरा है, क्यो न तू सोच लेता।
निज मति-धृति क्यो तू व्यर्थ ही खोरहा है ?
तनिक निरख तेरा हाल क्या हो रहा है ॥९॥

हृदय! नयन मेरे नित्य अत्यन्त रोते,
अविरल जलधारा से तुझे खूब धोते।
पर शमित न होती नेक दुःखाग्नि तेरी,
जलकर अब होगा छार तू है न देरी ॥१०॥

अतिशय तुम भी क्यों होगये शुष्क प्राण ?
सह न तुम सके क्या आपदा-आर्त्ति-बाण!
तुम दृढ़ बन जाओ क्यों वृथा नित्य रोते,
विचलित दुख में हैं क्या कभी धीर होते ॥११॥

सतत हृदय में तू वेदना! जन्म पाती,
रह कर उसमें ही पुष्ट हो, खूब जाती।
पर अहह! उसी को नित्य तू है जलाती,—
शिव शिव इतनी तू नीचता क्यों दिखाती ॥१२॥

[२]

रीवां-नरेश की प्रशस्ति।

नर-कल्याणकारिणी कितनी ही गायों के प्राण उबार,
देश जाति-उपकार आपने किया तथा निज यश-विस्तार।
निज कृतज्ञता प्रकट करें किस भाँति धेनु वे मूक विशेष,
हां, आशिष देती हैं मन में युग युग जीवें आप नरेश ॥१॥
जिन गायों से नर-समाज का होता है उपकार अपार,
छिः छिः कितना निन्द्य कर्म है उनका ही करना संहार।
धन्य धन्य हैं आप नृपतिवर ? रोका जो यह पापाचार,
बनी रहेगी कीर्त्ति आपकी जब तक विष्णुपदी की धार ॥२॥
निरपराधिनी गायो की सुन कर अति व्यथा-भरी फरयाद,
हुए आप करुणार्द्र बहुत ही क्यों न उन्हें फिर देते दाद।
नृप-कुल-दीप दिलीप भूप की हमें आज आती है याद,
सरस्वती भी थक जाती है करने में जिनका गुण-वाद ॥३॥
कितने ही नृप हुए यहाँ जो न्याय-दया के थे अवतार,
अब भी जिनके नाम ले रहा आदर से सारा संसार।
बान्धवेश ! उनके ही वंशज क्या न आप भी हैं धीमान,
फिर क्या है आश्चर्य किया जो वीरोचित यह कार्य महान ॥४॥
देख आपकी रुचि बढ़ती सी सार्वजनिक कार्यों की ओर,
नाच उठा है सब लोगों का होकर मोद-मत्त मन-मोर।
आशा है कल्याण करेंगे सदा देश का इसी प्रकार,
इस असार-संसार-मध्य बस सार वस्तु है परोपकार ॥५॥

[३]

मनोरञ्जक श्लोक।

यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून्मृषा,
नैषां गर्व वचः शृणोषि न च तान्प्रत्याशया धावसि।

काले बाल तृणानि खादसि परं निद्रासि निद्रागमे;
तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किं नाम तप्तं तपः॥

[४]

बार बार मुख धनियों का नहीं देखता तू,
भूठी चाटुकारी नहीं उनको सुनाता है।
सुनता नहीं तू कटु वाक्य अभिमान सने,
पीछे भी कदापि उनके तू नहीं धाता है।
खाता है नवीन तृण तो भी तू समय में ही,
सोता सुख से ही जब निद्रा काल आता है।
कौन ऐसा उग्र तप तूने था किया कुरङ्ग,
जिससे स्वतंत्रता समान सुख पाता है॥

मुकुटधर

पं डित मुकुटधर शर्मा बालपुर (जि० बिलासपुर) निवासी पांडेय लोचनप्रसाद शर्मा के छोटे भाई हैं। इनका जन्म सं० १९५२ के आश्विन मास में हुआ। पंडित लोचनप्रसाद जी के साहित्यिक जीवन का इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। बालकपन से ही इनकी रुचि का झुकाव हिन्दी साहित्य की ओर हो चला था। बहुत छोटी अवस्था से ही ये पद्य-रचना करने लगे थे। सब से प्रथम सं० १९६६ में इनकी कविता पत्रों मे प्रकाशित हुई। सं० १९७२ में इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास की। इसके

बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये ये प्रयाग के क्रिश्चियन कालेज मे भरती हुये। किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने से थोड़े ही दिन पीछे घर लौट गये। ये आजकल अपने ही गाँव में अपने पिता द्वारा स्थापित पाठशाला मे शिक्षक हैं।

अपने अग्रज भाई पंडित मुरलीधर जी के साझे में इन्होंने पूजाफूल, शैल बाला, लच्छमा, सामा, परिश्रम आदि कई पुस्तके लिखीं और अनुवादित की हैं। ये गद्य भी अच्छी लिखते हैं। भारतधर्म महामंडल से इन्हें एक मानपत्र और रौप्य पदक भी मिल चुका है। बंगला भाषा ये जानते हैं।

पंडित मुकुटधर जी प्रकृति के बड़े उपासक हैं। बचपन से ही इन्हें चित्र, कविता और संगीत से बड़ा प्रेम है। हरे हरे खेतो मैदानो और नदी के किनारे चट्टानो पर अकेले घूमने में इन्हें बड़ा आनन्द आता है। खेतो में काम करते हुये किसानो से और मुसाफ़िरों से बातें करने में ये मानसिक सुख का अनुभव करते है।

मुकुटधर जी एक होनहार कवि हैं। पहले कौमुदी-कुंज में इनके पद्यों को स्थान देने का मेरा विचार था। किन्तु इनके पद्यों का जब मैं संग्रह करने लगा तब मैं इनकी प्रतिभा पर मुग्ध हो गया, और उससे विवश होकर मुझे इनके लिये यह स्थान देना पड़ा।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं:—

[१]

विश्व-बोध।

खोज में हुआ वृथा हैरान।
यहाँ ही था तू हे भगवान॥

गीता ने गुरु-ज्ञान बखाना,
बेद-पुराण जन्म भर छाना;
दर्शन पढ़े, हुआ दीवाना,
मिटा न पर अज्ञान ॥ १ ॥
जोगी बन सिर जटा बढ़ाया,
द्वार २ जा अलख जगाया;
जङ्गल में बहु काल बिताया,
हुआ न तो भी ज्ञान ॥ २ ॥
ऊषा सँग मन्दिर मे आया,
कर पूजा-विधि ध्यान लगाया;
पर, तेरा कुछ पता न पाया,
हुआ दिवस अवसान ॥ ३ ॥
अस्ताचल में हँस कर थोड़ा,
सूरज ने अपना मुख मोड़ा;
विहगों ने भी मुझ पर छोड़ा,
व्यङ्ग्य-वचन का बाण ॥ ४ ॥
बिधु ने नभ से किया इशारा,
अधोदृष्टि करके ध्रुव-तारा;
तेरा विश्व-रूप रस सारा,
करता था नित पान ॥ ५ ॥
हुआ प्रकाश तमोमय मग में,
मिले मुझे तू तत्क्षण जग में;
तेरा हुआ बोध पग २ में,
खुला रहस्य महान ॥ ६ ॥
दीन हीन के अश्रु नीर में,
पतितों की परिताप पीर में;

सन्ध्या की चञ्चल समीर में,
करता था तू गान ॥ ७ ॥
सरल स्वभाव कृषक के हल में,
पतिव्रता रमणी के बल में;
श्रम सीकर से सिञ्चित धन मे,
संशय शून्य भिक्षु के मन में;
कवि के चिन्तापूर्ण वचन मे,
तेरा मिला प्रमाण ॥ ८ ॥
वाद-विहीन उदार धर्म मे,
समतापूर्ण ममत्व मर्म में;
दम्पति के मधुमय विलास मे,
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में;
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में,
था तव क्रीडा स्थान ॥ ९ ॥
देखा मैंने—यहीं मुक्ति थी,
यहीं भोग था—यहीं भुक्ति थी;
घर में ही सब योग युक्ति थी,
घर ही था निर्वाण ॥ १० ॥

[२]

ओस की निर्वाण-प्राप्ति।

आ पड़ा हाय! संसार कूप में,
भाग्य दोष से गिरकर ओस;
पर हर्षित होकर किया सुशोभित
उसने स्फुट गुलाब का कोष ॥
उस ओर व्योम पर तारादल ने
किया बड़ा उसका उपहास।

इस ओर घेर काँटों ने भी
दिया व्यर्थ ही उसको त्रास॥
उस पर रजनी ने डाल कृष्णपट
उसके यश को मन्द किया,
पर इन कुटिलों के कुटिल कृत्य पर
ज़रा न उसने ध्यान दिया॥
जब सूर्यागम का समय देखकर
प्राची ने निज भरा सुहाग,
तब उसने भी हँस कर मिल उससे
प्रकट किया अपना अनुराग।
कब लख सकता था पर-सुख कातर
प्रात वात उसका यह मोद,
कर दी खाली झट उसे गिरा कर
उसने मृदु गुलाब की गोद।
हो स्थानच्युत भी हुआ नहीं वह
चिन्तित मन में किसी प्रकार।
निज भग्न हृदय को ले पहनाया
उसने तृण को मुक्ताहार॥
जब कर्मसूत्र से खिंच कर नभ में
उदित हुए भास्कर भगवान,
उस पर प्रसन्न हो किया उन्होंने
उसको निज गुणरूप प्रदान॥
पर किसी जन्तु के उद्धत पद ने
उसे भूमि पर गिरा दिया।
तब भी उसने पसीज पृथ्वी के
निष्ठुर उर को सिक्त किया॥

होकर विमुग्ध इस कृति पर रवि ने
किया और भी हर्ष प्रकाश।
निज किरण दूत के द्वारा उसको
बुला लिया फिर अपने पास॥
इस भाँति ओस ने सत्कर्मों से
प्राप्त किया जग से निर्वाण।
ले कर वीणा हाथों में सुमधुर
किया प्रकृति ने तद्गुण गान॥

[२]

आशाधना।

प्रभु मन्दिर की नीरवता में
कर विलीन अपने मन प्राण,
धर्मधुरीण हिन्दुओं को है,
धरते देखा मैंने ध्यान।
देखा है करते मसजिद में
मुल्ला को भी दीर्घ पुकार।
पड़ी कान में गिरजा घर की
मधुर प्रार्थना की स्वर धार।
पर वर्षाऋतु की ऊष्मा में,
होकर श्रम से क्लान्त महान,
हल जोतते किसान छेड़ता
है जब अपनी लम्बी तान;
सुन तब उसे वाटिका से निज
करता मैं उर बीच विचार,
खेतों में यों आर्त्तस्वर से
यह किसको है रहा पुकार!

इस ओर घेर काँटों ने भी
 दिया व्यर्थ ही उसको त्रास ॥
उस पर रजनी ने डाल कृष्णपट
 उसके यश को मन्द किया,
पर इन कुटिलों के कुटिल कृत्य पर
 ज़रा न उसने ध्यान दिया ॥
जब सूर्यागम का समय देखकर
 प्राची ने निज भरा सुहाग,
तब उसने भी हँस कर मिल उससे
 प्रकट किया अपना अनुराग।
कब लख सकता था पर-सुख कातर
 प्रात वात उसका यह मोद,
कर दी खाली झट उसे गिरा कर
 उसने मृदु गुलाब की गोद।
हो स्थानच्युत भी हुआ नहीं वह
 चिन्तित मन में किसी प्रकार।
निज भग्न हृदय को ले पहनाया
 उसने तृण को मुक्ताहार ॥
जब कर्मसूत्र से खिंच कर नभ में
 उदित हुए भास्कर भगवान,
उस पर प्रसन्न हो किया उन्होंने
 उसको निज गुणरूप प्रदान ॥
पर किसी जन्तु के उद्धत पद ने
 उसे भूमि पर गिरा दिया।
तब भी उसने पसीज पृथ्वी के
 निष्ठुर उर को सिक्त किया ॥

होकर विमुग्ध इस कृति पर रवि ने
किया और भी हर्ष प्रकाश।
निज किरण दूत के द्वारा उसको
बुला लिया फिर अपने पास॥
इस भाँति ओस ने सत्कर्मों से
प्राप्त किया जग से निर्वाण।
ले कर वीणा हाथो में सुमधुर
किया प्रकृति ने तद्गुण गान॥

[३]

आराधना।

प्रभु मन्दिर की नीरवता में
कर विलीन अपने मन प्राण,
धर्मधुरीण हिन्दुओं को है,
धरते देखा मैंने ध्यान।
देखा है करते मसजिद में
मुल्ला को भी दीर्घ पुकार।
पड़ी कान में गिरजा घर की
मधुर प्रार्थना की स्वर धार।
पर वर्षाऋतु की ऊष्मा में,
होकर श्रम से क्लान्त महान,
हल जोतते किसान छेड़ता
है जब अपनी लम्बी तान;
सुन तब उसे वाटिका से निज
करता मैं उर बीच विचार,
खेतों में यों आर्तस्वर से
यह किसको है रहा पुकार!

था कि शिशिर की शीत-निशा में
मींज रहा हो जब वह धान।
सुनता हूँ तब शैया से मैं
उसका करुणा-पूरित गान।
भर जाता है जी, नेत्रों से-
निद्रा करती शीघ्र प्रयाण।
हृदय सोचता—जलते किसके
विरहानल से इसके प्राण।

[४]

अधीर।

यह स्निग्ध सुखद सुरभित-समीर,
कर रही आज मुझको अधीर!
किस नील उदधि के कूलों से,
अज्ञात वन्य किन फूलों से;
इस नव-प्रभात में लाती है,
जाने यह क्या वार्त्ता गभीर! ॥ १ ॥
प्राची में अरुणोदय-अनूप,
है दिखा रहा निज दिव्य-रूप;
लाली यह किसके अधरों की,
लख जिसे मलिन नक्षत्र-हीर! ॥ २ ॥
विकसित सर में किञ्जल्क-जाल,
शोभित उन पर नीहार-माल;
किस सदय-बन्धु की आँखों से,
है टपक पड़ा यह प्रेम नीर! ॥ ३ ॥
प्रस्फुटित मल्लिका पुञ्ज पुञ्ज
कमनीय माधवी कुञ्ज कुञ्ज

पीकर कैसी मदिरा प्रमत्त-
फिरती है निर्भय भ्रमर-भीर ! ॥ ४ ॥
यह प्रेमोत्फुल्ल पिकी प्रवीण,
कर भाव-सिन्धु में आत्म-लीन;
मञ्जरित आम्र-तरु में छिप कर,
गाती है किसकी मधुर-गीर ! ॥ ५ ॥
है धरा बसन्तोत्सव-निमग्न,
आनन्द-निरत कल-गान-लग्न,
रह रह मेरे ही अन्तर में
उठती यह कैसी आज पीर ! ॥ ६ ॥
यह स्निग्ध सुखद सुरभित समीर
कर रही आज मुझको अधीर;

[५]

रूप का जादू !

[१]

निशिकर ने आ शरद्-निशा में,
बरसाया मधु दशों दिशा में,
विचरण कर के नभोदेश में, गमन किया निज धाम।
पर चकोर ने कहा भ्रान्त हो,
प्रिय-वियोग-दुख से अशान्त हो,
गया, छोड़ करके जीवनधन, मुझे कहाँ हा राम !

[२]

हुआ प्रथम जब उसका दर्शन,
गया हाथ से निकल तभी मन;
सोचा मैंने—यह शोभा की सीमा है प्रत्यक्ष !
वह चित-चोर कहाँ बसता था,

किसको देख देख हँसता था;
पूँछ सका मैं उसे मोहवश, नहीं एक भी बात ॥

[३]

मैंने उसको हृदय दिया था,
रुचिर रूप-रस पान किया था;
था न स्वप्न में मुझको उसकी निष्ठुरता का ध्यान ।
मन तो मेरा और कहीं था,
मुझको इसका ज्ञान नहीं था;
छिपा हुआ शीतल किरणों में, है मरु-भूमि महान ॥

[४]

अच्छा किया मुझे जो छोड़ा,
मुझसे उसने नाता तोड़ा;
दे सकता अपने प्रियतम को कभी नहीं मैं शाप ।
इतना किन्तु अवश्य कहूंगा,
जब तक उसको फिर न लखूँगा;
तब तक हृदय हीन जीवन में, है केवल सन्ताप ॥ ४ ॥

[६]

कुररी के प्रति ।*

[१]

बता मुझे ऐ विहग विदेशी अपने जी की बात ।
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात ?

* दिन भर सुदूर खेतों में चुगने के पश्चात् बडो रात गये महानदी के गर्भ में विश्राम करने को लौटती हुई कुररियों को सम्बोधित कर यह पद्य लिखा गया है। कुररी पक्षीविशेष हैं, जो जाड़े के दिनों में देखे जाते हैं।

निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द ।
अन्य विहग भी निज खोतों में सोते हैं सानन्द ॥
इस नीरव-घटिका में उड़ता है तू चिन्तित गात ।
पिछड़ा था तू कहाँ, हुई क्यों तुझको इतनी रात ?

[२]

देख किसी माया-प्रान्तर का चित्रित-चारु-दुकूल,
क्या तेरा मन मोह जाल में गया कहीं था भूल ?
क्या उसकी सौन्दर्य-सुरा से उठा हृदय तव ऊब ?
या आशा की मरीचिका से छला गया तू खूब ?
या होकर दिग्भ्रान्त लिया था तू ने पथ प्रतिकूल ?
किसी प्रलोभन में पड़ अथवा गया कहीं था भूल ?

[३]

अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप ?
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या, है किसका परिताप ?
किसी गुप्त-दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग ?
जला रहा है तुझको अथवा प्रिय-वियोग की आग ?
शून्य गगन मे कौन सुनेगा तेरा विपुल-विलाप ?
बता कौन सी व्यथा तुझे है, है किसका परिताप ?

[४]

यह ज्योत्स्ना रजनी हर सकती क्या तेरा न विषाद ?
या तुझको निज जन्म-भूमि की सता रही है याद ?
विमल व्योम में टँगे मनोहर मणियों के ये दीप;
इन्द्रजाल तू उन्हें समझ कर जाता है न समीप ?
यह कैसा भयमय विभ्रम है कैसा यह उन्माद ?
नहीं ठहरता तू आई क्या तुझे गेह की याद ?

[५]

कितनी दूर; कहाँ; किस दिशि में तेरा नित्य-निवास ?
विहग विदेशी; आने का क्यों किया यहाँ आयास ?
वहाँ कौन तारा-गण करता है आलोक-प्रदान ?
गाती है तटिनी उस भू की बता कौन सा गान ?
कैसी स्निग्ध समीर चल रही; कैसी वहाँ सुवास ?
किया यहाँ आने का तूने कैसे यह आयास ?

किशोरीलाल गोस्वामी*

वैष्णव सम्प्रदाय चार हैं और ये चारों भगवान विष्णु की चार भुजाओं के नाम से विख्यात है यथा श्रीनिम्बार्क, श्रीविष्णु स्वामी, श्री रामानुज एवं श्रीमध्व इनमें से प्रथम श्री हंससनकादि-नारद प्रदर्शित मार्ग के प्रवर्तक होने के कारण महर्षि अरुण के पुत्र आरुणि श्री निम्बार्काचार्य के नाम से विख्यात हुए। इनका वर्णन भागवतादि पुराणों में भी है। इन आचार्यचरण के तैंतीसवें सिंहासनाधीश श्री केशव कश्मीरि भट्टाचार्य ने अनेक वार समग्र भारतवर्ष मे दिग्विजय किया था और अपने समय के ये सार्वभौम नेता थे। इनकी तीसरी

* गोस्वामी जी की जीवनी देर में मिली, अतएव उचित स्थान नहीं दिया जा सका। अगले संस्करण में ठीक कर दिया जायगा। लेखक।

पीढ़ी में श्रीहरि व्यासदेवाचार्य हुए और यहीं से श्री निम्बार्क सम्प्रदाय बारह भाग मे विभक्त हुआ। श्रीहरि व्यासदेवजी के द्वादश शिष्यों में श्रीस्वभूदेवाचार्य सब से ज्येष्ठ और प्रधान थे, अतः आप ही प्रधानाचार्य प्रतिष्ठित हुए। आप निज गुरु-प्रदत्त स्थान एवं श्री भगवन्मूर्ति सहित श्री वृन्दावन के केशी-घाट पर सुशोभित हुए। आपके ठाकुर जी श्री विजय अटल विहारी जी महाराज के नाम से विख्यात हैं। आप कभी कभी अपने पूर्व स्थान बूड़िया-जो जगाधरी के निकट है-में भी विराजते थे। आपके वंश में श्री धर्म देवाचार्य जी बड़े प्रतापी हुए। दिल्ली के मुग़ल सम्राटों ने आपके निकट आकर कई बार ग्राम भेंट किए, पर आपने उन्हें ग्रहण नहीं किया। आप पर पेशवा सरकार की बड़ी ही भक्ति थी और श्री माधव-राव नारायण पेशवा का भेंट किया हुआ बम्बई खुर्द गांव (ज़िला मथुरा) आपने ठाकुर जी के भोग राग के लिए स्वीकार किया। आपकी कई पीढ़ी के अनन्तर गोस्वामि श्री केदार-नाथ जी महाराज वृन्दावन में परम विद्वान और महा प्रतापी हो गए हैं। जिन्होंने ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भाष्य तथा श्रीमद्भागवत पर तिलक निर्माण किए हैं आपके पुत्र गोस्वामी श्री वासुदेवशरण देवाचार्य जी महाराज संस्कृत, ब्रजभाषा, हिन्दी एवं बङ्गला के अच्छे विद्वान हुए और आप स्वावलम्बन के प्रत्यक्ष दृष्टान्त थे।

संवत् १९२२ वैक्रम के माघ मास की अमावास्या को उक्त गोस्वामि महोदय के यहाँ प्रथम पुत्र जन्म हुआ। वही पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी के नाम से विख्यात हैं। आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ और साथ ही साथ विद्यारम्भ भी।

इनके मातामह गोस्वामि श्री कृष्णचैतन्य देव जी काशी के प्रसिद्ध गोलघर नामक मन्दिर में विराजते थे । वे काशी के प्रसिद्ध रईस श्री हर्षचन्द्र जी के गुरु और राजा शिव-प्रसाद सितारेहिन्द के पड़ोसी थे। पंडित किशोरी लाल जी का पठन-पाठन काशी ही में चलने लगा । संस्कृत में इन्होंने न्याय, योग, व्याकरण, वेदान्त, ज्योतिष आदि विषयों का अध्ययन किया और साहित्य में आचार्य-परीक्षा तक के ग्रन्थ पढ़े।

इनके पिता जी बहुत दिनों तक आरा में रहे थे, अतः ये भी वहीं रहे। और आरे के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पीताम्बर मिश्र जी तथा रुद्रदत्त जी से संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते रहे।

आरे में कोई पुस्तकालय नहीं था, अतः इन्होंने 'आर्य-पुस्तकालय' नाम से एक पुस्तकालय स्थापित किया और उसके द्वारा वहाँ हिन्दी भाषा का अच्छा प्रचार हुआ। आरे और पटने में हिन्दी के प्रचारकों में इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। आरे के प्रसिद्ध वैद्यराज पण्डित बालगोविन्द त्रिपाठी की सहायता से 'वर्णधर्मोपयोगिनी' नाम की एक सभा भी इन्होंने स्थापित की थी और उस सभा द्वारा 'वर्ण-धर्मोपयोगिनी' पाठशाला स्थापित कराई थी । सभा का अधिकांश कार्य ये ही करते थे। संवत् १९४७ मे उक्त सभा से प्रतिनिधि होकर दिल्ली में भारतधर्म महामण्डल में सम्मिलित हुए थे।

'कुरमी जाति' की वर्णव्यवस्था पर संस्कृत में इन्होंने एक पुस्तक लिखी थी, जो विद्य वृन्दावन नामक पत्र में छपा करती थी।

हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध उद्धारक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी इनके मातामह के साहित्य शिष्य थे इससे इनका भारतेन्दु जी से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। इन्होंने अपने मातामह से हिन्दी साहित्य पिङ्गल आदि पढ़े थे। राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दु जी की प्रेरणा से इन्होंने हिन्दी में प्रणयिनी परिणय नामक पहला उपन्यास लिखा। इसके अनन्तर ये आरे से काशी में आरहे।

हिन्दी भाषा की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती के प्रथम वर्ष के सम्पादकों में ये भी थे और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला, बालसखा आदि के ये सम्पादक तथा उप सम्पादक रह चुके हैं। पिछले बीस वर्ष से ये उपन्यास नाम की एक मासिक पुस्तक निकाल रहे हैं और सात वर्षों से वैष्णवसर्वस्व नामक एक मासिक पत्र भी। सन् १९१३ में इन्होंने वृन्दावन में श्री सुदर्शन प्रेस नाम का एक प्रेस भी खोल दिया।

ये आरम्भ से ही काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सभासद् थे। सभा के कार्यसञ्चालकों में कुछ मतभेद होने पर इन्होंने बाबू श्यामसुन्दरदास का पक्ष समर्थन करते हुए, सभा का सम्बन्ध त्याग दिया। कई सभाओ के ये सभापति हो चुके हैं। आगरे में गौड़ महासभा के ये ही सभापति थे। रीवां राज्य की चतुःसम्प्रदाय श्रीवैष्णव महासभा के ये ट्रस्टी थे। रीवां के स्वर्गीय महाराज इनका बहुत सम्मान करते थे।

डायमण्ड जुबिली के समय महारानी विक्टोरिया का जीवनचरित्र इन्होंने संस्कृत में लिखकर 'वैष्णव समाज-काशी' के द्वारा विलायत भेजा था। इस पर महारानी की आज्ञा से होम डिपार्टमेंट ने इनको धन्यवाद का परवाना दिया था।

इन्होंने वङ्गभाषा से पन्द्रह पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कर बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस को दिया था, जिनमें कुछ पुस्तकें इनके नाम से छप चुकी हैं। इनके लिखे हुये ग्रंथो की सूची इस प्रकार है:—

कविता ।

(१) समस्यापूर्ति मञ्जरी (२) भागवतसार पचीसी (३) युगलरस माधुरी (४) अध्यात्म प्रकाश (५) कण्ठमाला (६) अश्रुधारा (७) प्रेमपुष्पाञ्जलि (८) चन्द्रोदय (६) आकाशकुसुम (१०) वीरेन्द्रविजयकाव्य (११) प्रणयोपहार (१२) कन्दर्प विजय काव्य (१३) कविता संग्रह (१४) काशी कविसमाज की समस्यापूर्ति (१५) सुजान रसखान (१६) रसखान शतक (१७) प्रेम रत्न माला (१८) प्रेम पुष्प माला (१९) प्रेमवाटिका (२०) कविता मञ्जरी (२१) कवि माधुरी (२२) बालकुतूहल (२३) वनिता विनोद (२४) वीरबाला (२५) एक नारीव्रत (२६) सावित्री (२७) होली रङ्गघोली ।

गाने की पुस्तकें ।

(१) सावन सुहावन (२) होली मौसिम बहार (३) वर्षाविनोद (४) ठुमरी का ठाट (५) मञ्जुपदावली (६) नित्यकीर्तन मालिका (७) वर्षोत्सव कीर्तन मालिका (८) जाती सङ्गीत (९) सङ्गीत शिक्षा (१०) चैती गुलाव (११) वसन्तबहार ।

विविध विषय ।

(१) वेदशिक्षा (२) हठयोग (३) अष्टाङ्गयोग (४) ज्ञान सङ्कलिनी तन्त्र (५) तन्त्र रहस्य (६) निरालम्बोपनिषद (७) चाक्षुषोपनिषद (८) वैराग्य प्रदीप (९) तीर्थ महिमा (१०) कुम्भ पर्व व्यवस्था (११) गङ्गास्थिति सिद्धान्त ।

साम्प्रदायिक।

(१) नित्य कृत्य चन्द्रिका (२) युगलार्चन कौमुदी (३) वर्षोत्सव मयूख (४) सम्प्रदाय सिद्धान्त (५) सम्प्रदाय दिवाकर (६) ब्रह्म मीमाँसा (७) धर्म मीमाँसा (८) सन्ध्या प्रयोग (९) सन्ध्या संक्षिप्त (१०) सन्ध्या भाषा (११) गायत्री व्याख्या (१२) आचार्य चरित (१३) हंसावतार चरित (१४) साधिकोपनिषद् (१५) कापिल सूत्र।

जीवन-चरित।

(१) अर्ल मेयो (२) हम्मीर (३) मेवाड़ राज्य (४) मरहठों का उदय (५) औरङ्गजेब की राजनीति (६) लार्ड रिपन (७) बुद्धदेव (८) अशोक चरितावली (९) वर्द्धमान राजवंश (१०) मधुच्छका का सोपान (११) जोजेफाइन (१२) नेपोलियन (१३) श्रीकृष्णचैतन्यदेव (१४) बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० (१५) बाबू राधाकृष्णदास (१६) पण्डित मदनमोहन मालवीय (१७) सर एन्टोनी मैकडानल्ड (१८) राजा लक्ष्मण सिंह (१९) बाबू रामकाली चौधरी (२०) मैक्समूलर भट्ट (२१) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द (२२) पण्डित अम्बिकादत्त व्यास (२३) वाल्मीकि चरित्र (२४) भीष्म पितामह (२५) पञ्च पांडव

नाटक-रूपक।

(१) मयङ्क मञ्जरी (२) चौपट चपेट (३) भारतोदय (४) नाट्यसम्भव (५) सावित्री सत्यवान (६) प्रनय पारिजात (७) प्रबन्ध पारिजात (८) प्रियदर्शिका (९) स्वर्ग की सभा (१०) प्रभावती परिणय (११) कन्दर्प केलि (१२) वर्षा विहार गोष्ठी (१३) चाण्डाल चौकड़ी (१४)

पोंगा वसन्त (१५) वी जान (१६) दिवाभीत (१७) वैशाख नन्दन (१८) शाला बाबू (१६) काला साहब (२०) यमराज और हम (२१) गोबरगनेश (२२) जोरू-दास (२३) वेश्यावल्लभ (२४) एक एक के दो दो (२५) स्वर्ग की सीढ़ी

उपन्यास।

(१) चपला (२) तारा (३) लीलावती (४) रजीया-बेगम (५) मल्लिकादेवी (६) राजकुमारी (७) कुसुम-कुमारी (८) तरुण तपस्विनी (१) हृदयहारिणी (१०) लवङ्ग लता (११) याकूती तख्ती (१२) कटे मूड़ की दो दो बातें (१३) कनक कुसुम (१४) सुख शर्वरी (१५) प्रेममयी (१६) गुलबहार (१७) इन्दुमती (१८) लावण्यमयी (१६) प्रनयिनी परिणय (२०) जिन्दे की लाश (२१) चन्द्रावली (२२) चन्द्रिका (२३) हीराबाई (२४) लखनऊ की कब्र (५२) पुनर्जन्म (२६) त्रिवेणी (२७) माधवी माधव २८) राजराजेश्वरी (२६) जड़ाऊ कङ्कण मे काल भुजङ्ग (३०) आरसी में हीरे की कनी (३१) विहार रहस्य (३२) ठगिनी (३३) भोजपुर की ठगी (३४) जगदीशपुर की गुप्त कथा (३५) राजगृह की सुरङ्ग (३६) प्रसन्न पथिक वा पथ-प्रदर्शिनी (३७) कुंवर सिंह (३८) बनारस रहस्य (३६) हमारी रामकहानी (४०) अंगूठी का नगीना (४१) इसे जिन्दा कहें कि मुर्दा (४२) सदासोहागिन (४३) दिल्ली की गुप्त कथा (४४) जनानखाने मे दीवान (४५) प्रेम परि-णाम (४६) पातालपुरी (४७) दो सौतीन (४८) औरत से औरत का व्याह (४६) रोहितासगढ़ की रानी (५०)

अन्धेरी कोठरी (५१) काज़ी की चोटी (५२) राजकन्या (५३) राक्षसेन्द्र राक्षस वा घड़ा भर विष (५४) सांप की बांबी (५५) सेज पर सांप (५६) इसे चौधराइन कहें की डाइन (५७) राजबाला (५८) आप आपही हैं (५९) नरक नसेनी (६०) अन्धेरी रात (६१) सोना और सुगन्ध (६२) आदर्श प्रणय (६३) शान्ति निकेतन (६४) वार विलासिनी (६५) शान्ति कुटीर।

पत्र-पत्रिकाओं में स्फुट लेख :—

	लेख संख्या		लेख संख्या
(१) सार सुधानिधि	५७	(२४) श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार	२७
(२) उचित वक्ता	११	(२५) भाषा भूषण	७
(३) भारतमित्र	२२	(२६) विज्ञ वृन्दावन	३८
(४) आर्यावर्त	४	(२७) सर्वहित	३२
(५) पीयूष प्रवाह	७	(२८) सत्य वक्ता	८
(६) चम्पारन चन्द्रिका	१५	(२९) सुदर्शन चक्र	१
(७) हरिश्चन्द्र कौमुदी	१०	(३०) नागरी नीरद	६
(८) क्षत्रिय पत्रिका	२	(३१) विहार भूषण	३
(९) विद्याधर्म दीपिका	६	(३२) रसिक मित्र	१
(१०) द्विज पत्रिका	१	(३३) सज्जनकीर्ति सुधाकर	१
(११) विहार बन्धु	६२	(३४) सरस्वती	२८
(१२) सारन सरोज	४०	(३५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका	२
(१३) भारत जीवन	३	(३६) नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला	२
(१४) भारतवर्ष	१०१		
(१५) ब्रह्मावर्त	१		
(१६) हिन्दी प्रदीप	७		

	लेख संख्या		लेख संख्या
(१७) ब्राह्मण	१	(३७) बाल प्रभाकर	५
(१८) भारतधर्ममहामंडल	११	(३८) मित्र	३
(१९) हिन्दोस्थान	२५	(३९) मर्यादा	१५
(२०) राजस्थान समाचार	१२	(४०) यादवेन्द्र राघवेन्द्र कलकत्ता	६
(२१) दिनकर प्रकाश	१	(४१) समाचार आदि	५८५
(२२) विद्या विनोद	१		
(२३) भारत भगिनी	१		

गोस्वामी जी ने सात पुस्तकें संस्कृत में भी लिखी हैं, जिनके नाम ये हैं :—

(१) मयूख मालिनी (२) प्रणयोच्छ्वास (३) शृङ्गार रत्नमाला (४) शृङ्गार सुधाकर (५) शृङ्गार सुधाविन्दु (६) सांख्य सुधाकर (७) संक्षिप्त सांख्य तत्व समास-कारिका।

गोस्वामी जी का जीवन साहित्यमय है। इन्होंने अपने जीवन में एक ही काम किया है और वह है हिन्दी साहित्य-सेवा। हिन्दी-साहित्य-सेवियों के अतिरिक्त इनकी मित्रता और किसी से नहीं है। असाहित्यसेवियों से ये बात चीत करने में भी घबड़ाते हैं। इनकी मेला-तमाशा, सभा समाज किसी में भी रुचि नहीं है। भोजन, भजन एवं शयन से जो समय बचता है, उसे ये साहित्य-सेवा में लगाते हैं। मकान से तभी निकलते हैं, जब कहीं जाने के लिए रेलवे-स्टेशन की आवश्यकता पड़े, और घर पर भी आए हुए उसी सज्जन से मिलते हैं, जो हिन्दी-साहित्य से सम्बन्ध रखता हो। पठन-पाठन के अतिरिक्त ये अपना एक

मिनट भी देना नहीं चाहते। इनको जब तक विवश न किया जाय ये किसी सभा में भी नहीं जाते। इनका कहना है कि किसी सभा में जाकर हिन्दी की सेवा करने की अपेक्षा घर पर रह कर हिन्दी की अधिक सेवा हो सकती है। ये 'उपाधि' से बहुत दूर भागते हैं। कई बार लोगों ने इनको उपाधियाँ देनी चाहीं, पर इन्होंने साफ इनकार कर दिया। भारत-धर्म महामण्डल ने इनको एक बार एक उपाधि भेज दी, इस पर इन्होंने अपने मित्र चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद जी शर्मा से कहा कि असाहित्यसेवीगण साहित्य-सेवियों को उपाधि देकर अपनी अयोग्यता ही नहीं प्रकट करते, प्रत्युत साहित्य-सेवियों का अपमान भी करते हैं। सरस्वती और मर्यादा पर इनका बहुत ही स्नेह है। यह इसलिए कि ये दोनों इनके मित्रों से सम्पादित होती हैं, अथवा इनके ये लेखक रहे हैं। ये जब दो चार साहित्य-सेवियों के साथ बैठ जाते हैं, तब रोते हुए मनुष्य भी हँसते हँसते लोट पोट होने लगते हैं। ये हिन्दी भाषा में बहुत अच्छा व्याख्यान देते हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में बड़ी ही शीघ्रता से कविता करते हैं। यही हाल संस्कृत में भी है। ये कई तरह की भाषा लिखने मे सिद्धहस्त है। ये अपनी पुस्तकें पुस्तकालयों और अतिथियों को बड़ी ही उदारता से देते हैं। गोस्वामी जी लगभग पिछले ४५ वर्ष से हिन्दी-साहित्य की सेवा कर रहे हैं। और इतनी बड़ी सेवा के परिवर्तन मे इन्होंने कभी कोई वेतन, पुरस्कार, पदक आदि नहीं ग्रहण किया। निःस्वार्थभाव से गोस्वामी जी रात दिन हिन्दी साहित्य सेवा मे तत्पर रहते हैं।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

भ्रातः ! कोकिल ! कूजितेन किमलं, नार्घ्यत्य नष्टे गुणं।
तूष्णीं तिष्ठ विशीर्णपर्णपटलच्छन्नः क्वचित्कोटरे॥
प्रोद्दामद्रुम सङ्कटे कटुरटत्का कावली संकुलः।
कालोऽयं शिशिरस्य सम्प्रति सखे ! नायं वसन्तोत्सवः॥

सवैया।

कोकिल ! मीत ! न बोलु कछू,
कहु, नीचन ने गुन जान्यो कितै कब।
याते रहै चुप होइ कछू दिन,
सूखे पलास के कोटर मैं दब॥
ऊँचे महीरुह की फुनगीन पै;
बोलत काग कठोर इतै अब।
ये पतझार के द्योस अबै,
पर बोलियो तूहू बसंत लगै जब॥१॥

गन्धाढ्यासौ भुवन-विदिता केतकी स्वर्णवर्णा,
पद्मभ्रान्त्या क्षुधितमधुपः पुष्पमध्ये पपात।
अंधीभूतः कुसुमरजसा कंटकैश्छिन्नपक्षः,
स्थातुं गन्तुं द्वयमपि सखे ! नैवशक्तो द्विरेफः॥

कञ्चन रंग सुगन्ध सनी,
जग जाहिर सोहति केतकी की कली।
ताहि के फूले प्रसूनन माहि,
उपास्यो पर्यो रस चाखन कों छली॥
आंधरो होइ परागन सों,
पुनि कांटनि पंख छिदायो विधी भली।
'जाइबो त्यों रहिबो' इन दोउन
में नहिं, मीत ! समर्थ भयो अली॥२॥

स्वच्छाः सौम्य ! जलाशयाः प्रतिदिनं ते सन्तु मा सन्तु वा,
स्वल्पं वा वहु वा जलं जलधर ! त्वं देहि मा देहि वा
पानीयेन बिनासनो यदि पुनर्निर्यान्तु मा यान्तु वा,
नान्येषान्तु शिरोनतिह्यभिमुखं कर्त्ताम्बुभृच्चातकः॥
नितही सुनु मीत ! जलाशय सुन्दर, निर्मल नीर धरै न धरै।
कछु थोरो घनो जल, वारिद ! तू, इन चोंचन माहिं भरै न भरै॥
विनही जलपान किए यह प्रान, सदाही रहै कि अबै निसरै।
तबहूँ यह चातक औरन के ढिग, नीचो न आपुनो सीस करै॥

[२]

बसन्त बहार।

वर बसंत बानक बिसद, वृन्दाविपिन विराज।
बिलसत ब्रजबनितानि सँग, विमलवेस ब्रजराज॥
वृन्दावन बानक विसद, बगस्यो बहुरि वसन्त।
बिबुध-वधूटी सी बिमल, ब्रजवनिता विलसन्त॥

[३]

चन्द्रोदय।

(विम्बार्द्ध)

परम-रम्य नीलाभ गगनतल पै, यह को है ?
चितवत ही, चख चपल, अचल करि जो मन मोहै॥
अहै कहा यह, राहु-सीस को काटनहारो।
चमचमात, चक्रार्द्ध, सुमन-गन को रखवारो॥
कै, अम्बर को-अमल, धवल, व्यापक, जग माहीं।
सदा शब्दमय, विजय-शंख, को जानत नाहीं !
कै, यह अभ्र-पयोनिधि की सुतुही, अति प्यारी।

तारा-मुक्तावलि की, जो, उपजावनहारी ॥
कैधों, रजत पहार तुषार सन्यो, मनभावन।
मीनकेत को मीन-केन, कै कलुष-नसावन ॥
कै, बाराह विशाल-बदन की डाढ़ माहिं. इक।
बक्र दन्त, दुर्निमन्त. अन्तकारक तम दस दिक ॥
दबी कहा ? हिम शिला मध्य, अमृत की पोखी।
सुखद सराहन जोग, मुग्धमन, मीन अनोखी ॥
कै, तम-कुञ्जर दमन हेत, नभ-बीर महावत।
लै, कर, अमल, अलौकिक, अंकुश, झूमत आवत ॥
किधौं, हास्यरस के तारे, की है, यह तारी।
कै, छल बल की सकल-कलावारी कल भारी ॥
सोलह-कला-प्रवीन कोऊ नागर नट की बर।
दीख परत इक कला, अनोखी सुमन-मनोहर ॥
प्रकृति सती कौ सुरस हास्य कैधों, मन मोहै।
किधौं हास्यरस, रससिँगार उर धरि अति सोहै ॥
कै, कामागम मत्त, मनुज जन की बैतरनी।
कैधों, विरहिन-मानवनिन की मान-कतरनी ॥
झलकत बाम सुभाव किधौं, बामा-उर-चारी।
कै, मनोज की अहै अनोखी कुटिल कटारी ॥
कै सन्ध्या-बरबधू-कपोल नखच्छत पूरो।
कै, अनन्त मन्दिर को राजत. कुटिल कँगूरो ॥
शीत-रश्मियुत पुष्प-बाण को धनु छवि छाजै।
कै, कुटिलन के कुटिल हृदय को हृदय विराजै ॥
ओंकार कैधौं, रतिपति-आगम को निरुपम।
कै, यह बरत, मसाल काल की, नासन को तम ॥
कैधौं, विधि कृत, कर्म-रेख को वलित विकारी।

कै, कोऊ मात्रा, व्याकरनिन की अति प्यारी ॥
किधौ, शेष-फन, एक, धरातल-ऊपर आयो।
कै, कोउ मुनिवर को चमकन, भाल सुहायो॥
कै, शिशुमार चक्र की दीसन धुरी अधूरी।
किधौ, व्योम-गंगा की झलकत रेती, भूरी॥
किधौं, विष्णु-पद-नख की कछुक छटा, छवि छाजत।
कै, कालिंदी-मध्य रजतमय नौका राजत॥
यामें झलकत कहा श्यामता ? सोऊ कहिए।
ठाढ़े करत सलाह, मलाह चलन किन चहिए॥
चन्द्रचूर को चन्द्र, चूर ह्वै अधर पस्यो है।
कै, सुखमा समूह को बेरा आनि अस्यो है॥
कै, रजनी को, राजत है, सुहाग-फल पूरो।
किधौं, सुधाधर उदित भयो है, आजु अधूरो॥
कैधौं, जन्म्यो अबै, जलधि उर तें यह बालक।
कै, शशि शेखर भाल तिलक, शैवन कुल पालक॥
गरल सहोदर की ज्वाला तें जरि, उर माहीं।
शंभु सीस हू चढ़ि, याकों नेकहुं सुख नाहीं॥
छुद जीवहू कहुं ऊंचे आसन थिर होहीं ?
याही तें यह भटकत डोलत है, कहुं कोहीं॥
सीतल करन हृदय, सीतल, मारुन कहुं जोवत।
बिरहिन के मानस, बरजोरी विष बहु बोवत॥

रामदास गौड़*



ध्यापक रामदास गौड़ का जन्म सम्वत् १९३८ के मार्गशीर्ष अमावास्या को जौनपुर शहर में हुआ था। वहाँ इनके पिता मुन्शी ललिताप्रसाद चर्च मिशन हाई स्कूल के सेकंड मास्टर थे। इनके प्रपितामह मुन्शी भवानी बख्श जी फैजाबाद ज़िले के बिड़हर इलाके की जमीदारी छोड़कर सम्वत् १८६७ वि० के लगभग काशी जी में आकर रहने लगे। इस लिए गौड़ जी का वर्तमान निवासस्थान काशी है।

गौड़ जी ने फ़ारसी और गणित की शिक्षा आरम्भ में अपने पिता जी से पायी, इनकी माता और नानी नित्य नियमपूर्वक रामचरित मानस का पाठ किया करती थीं इसलिए चार ही पाँच वर्ष की अवस्था से इनको रामचरित मानस से प्रेम हो गया। दस वर्ष की अवस्था मे एक संक्षिप्त रामायण लिखी जिसमें पाँच छः सौ छंद हैं। यह पुस्तक बाल कविता होने के कारण प्रकाशित करने योग्य नहीं है। इसके बाद इन्होने 'स्वप्नादर्श' की रचना की जो अप्रकाशित है। इन्होंने जौनपुर हाई स्कूल से १९५६ वि० में इट्रेंस, सेन्ट्रल हिन्दू

---

* अध्यापक रामदास जी गौड़ की जीवनी बहुत देर से मिली। इसीसे इसे जन्मक्रमागत स्थान नहीं मिल सका। आगले संस्करण में यथास्थान कर दी जायगी। लेखक

कालेज से १९५८ में एफ़० ए० और म्योर सेंट्रल कालेज से १९६० वि० में बी० ए० पास किया। बी० ए० की परीक्षा देने के बाद सेंट्रल हिन्दू कालेज में ये रसायन के सहकारी अध्यापक नियुक्त हुए। परन्तु परीक्षा फल प्रकाशित होते ही काशी से प्रयाग चले आये और एल० एल० बी० क्लास में पढ़ने लगे। इसी समय इनके बड़े भाई का देहान्त मिरजापुर में हो गया जिससे वकालत पढ़ना छूट गया। संवत् १९६१ से १९६३ तक कायस्थपाठशाला मे रसायन के प्रोफेसर और संवत् १९६३ से १९७५ तक म्योर सेंट्रल कालेज में रसायन के डिमान्स्ट्रेटर रहे। संवत् १९६५ में अध्यापकी की दशा में रसायन मे एम० ए० पास किया, १९७५ से हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग में रसायन के प्रोफेसर तथा सेनेट और फैकल्टीज़ आव आर्ट्स, सायंस और ओरियंटल लर्निङ्ग (कला, वैज्ञानिक और प्राच्य विद्या शास्त्रि-मण्डल) के सदस्य हैं।

दस वर्ष की अवस्था में संक्षिप्त रामायण और ग्यारह बारह वर्ष की अवस्था में स्वप्नादर्श की रचना इन्होंने की थी। इसके बाद की कविताएँ रसिक वाटिका में छपती रहीं। १८-२० वर्ष की अवस्था की कविताएँ छत्तीसगढ़ मित्र में छपती थीं। इस समय इनका उपनाम 'रस' था। बी० ए० पास करने के बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा के लिए इन्होंने संवत् १९६२ तक के हिन्दी के ज्ञात ग्रन्थो की सूची अंगरेज़ी में तैयार की थी जिसमें ग्रन्थ के निर्माण काल और कवि का संक्षिप्त वृत्त अनेक ग्रन्थों और रिपोर्टों से संकलित किये गये थे। यह ग्रन्थ भी अभी तक अप्रकाशित है।

कायस्थपाठशाला में काम करते हुए इन्होंने गौड़ हित-कारी नामक उर्दू मासिक पत्र का सम्पादन करना आरंभ किया जो बिना मूल्य गौड़ कायस्थों के पास भेजा जाता था। जब ये म्योर कालेज में नौकरी करने लगे, तब यह पत्र औरों के नाम से सम्पादित होता था, यद्यपि सब काम ये ही करते थे। इससे गौड़ों में इतनी जागृति हो गयी कि वे समय की आवश्यकताओं को समझने लगे। इसके सम्पादन काल में गौड़ कायस्थों के इतिहास की सामग्री अच्छी मिल गयी, जिससे १९६७ वि० में इन्होंने 'तज़किरये सुचारवेशी' नामक गौड़ कायस्थों का इतिहास लिखा।

ये स्त्रीशिक्षा के बहुत बड़े पक्षपाती हैं। प्रयाग से निकलने वाली गृहलक्ष्मी में गृहप्रबन्ध, बालविहार, विज्ञानवती, नानी की कहानी, कपड़े रंगना; आत्माराम की कहानी इत्यादि क्रमानुसार निकलनेवाले लेखो का आरम्भ इन्होंने ही किया था। सुदर्शन प्रेस से प्रकाशित 'वनिता बुद्धि-विलास' का अधिकांश इन्होंने ही लिखा था। The Great Illusion का अनुवाद 'भारीभ्रम' भी इन्होंने ही किया है।

इनका विचार है कि मानसिक, धार्मिक और सामाजिक संकीर्णता को दूर करने के लिए विज्ञान का प्रचार भारतवर्ष के कोने कोने में होना चाहिये। इसी उद्देश्य से इन्होंने प्रयाग में 'विज्ञान परिषत्' स्थापित करने का उद्योग किया जिससे व्याख्यानों और पुस्तकों द्वारा विज्ञान का प्रचार होने लगा। १९७२ वि० से 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र भी निकलने लगा जिसके लिए बहुत परिश्रम करने के कारण छही महीने के बाद ये इतने बीमार हो गये कि छुट्टी

लेकर इनको बाहर चला जाना पड़ा। उसमें प्रकाशित भुनगा पुराण, वायुमण्डल पर विजय, वैज्ञानिक अद्वैतवाद, रसायन, विज्ञान सूत्र, इनकी विद्वत्ता सूचित करते हैं। विज्ञान प्रवेशिका प्रथम भाग का अधिकांश इन्होंने ही लिखा है।

हिन्दी की पहली पोथी तथा सम्मेलन से प्रकाशित भाषा सार संग्रह प्रथम भाग का संग्रह और सम्पादन भी इन्होंने किया है। इनके सैकड़ों लेख 'अब्दुल्लाह' के नाम से भी निकले हैं।

ये चाहते हैं कि राष्ट्रीय व्यवहार में सौर तिथियो का प्रयोग किया जाय। ज्ञानमण्डल से प्रकाशित सौर पंचांग और सौर डायरी का रूप इन्होंने ही स्थिर किया है। ये अपनी चिट्ठी पत्री में सौर तिथियो का ही प्रयोग करते हैं।

ये हिन्दी भाषा के मर्मज्ञ हैं। गद्य और पद्य दोनों के अच्छे लेखकों में से हैं। उर्दू, अंग्रेज़ी, संस्कृत और फ़ारसी के अच्छे विद्वान हैं। बंगला, गुजराती, मराठी और प्राकृत की भी जानकारी रखते हैं। व्याख्यान देने में बड़े पटु हैं। दर्शन, विज्ञान, इतिहास, साहित्य सभी विषयों में अच्छी जानकारी रखते हैं। विद्वत्ता का इन्हें अभिमान नहीं। वादविवाद करने में निपुण हैं। ये सच्चे परोपकारी निस्वार्थ देशभक्त और स्वतंत्रताप्रेमी हैं।

इनकी कुछ कविताओं के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

[१]

वन्दे भारतवर्षमुदारम्।
पावन आर्यभूमि मनभावन सरसावन सुखसारम्॥१॥

हिम गिरि सेत मुकुट सिर भ्राजत सुर प्रसून बरसावत,
सरन दीप जिमि कमल चरन पर सागर पाद्य दिवावत ॥२॥
धमनी सिरा मनहुं नभ सरिता वहत अमिय की धारा,
तैंतिस कोटि बसत सुर बन तरु रोमावली अपारा ॥३॥
गो गज बाजि रतन अम्बर धन अन्न अमल जल पूरे,
सुखद सघन वन नगर मनोहर हरित सस्यमय रूरे ॥४॥
निज व्यवसाय निरत सुचरित जन कलह कलुष तें न्यारे,
सत्य सिपाह स्नेह की वेड़ी नहिं व्यभिचार निहारे ॥५॥
देस देस के प्रानी जीवत तेरी ही भुज छाया,
भये कनौड़े राखि सकत नहिं तव सहाय बिन काया ॥६॥
देश काल अरु पात्र चीन्हि के दान मुक्त कर दीजै,
लुटै न कोष, जुटै सम्पति, निज धर्म्म रहे सोई कीजै ॥७॥
नीच लुटेरे जो कहुं ताकैं तेरी दिसि तिरछौहै,
तैंतिस कोटि उठै निसङ्क भुज, तने बङ्क ह्वै भौहैं ॥८॥
आये धन के लोभ पाप तें विनसे सत्रु घनेरे,
जन पद तेरोइ, तुही प्रजापति, छत्र सीस इक तेरे ॥९॥

[२]

प्रार्थना ।

बिघन बिनासन हार अघन घन हेत प्रभञ्जन ।
परम रुचिर करि चरित, हृदय विचरत जन रञ्जन ॥
लीला अगम अपार सकल वस्तुन महँ दरसत ।
व्यापि रह्यो सब माँहि याहि ते शोभा सरसत ॥
तुमहीं सुमन सुगन्ध वाटिका तुमहीं माली ।
तुमहीं तरुवर सुफल तुमहिं डाली हरियाली ॥
तुमहीं सन्ध्या दिवस निसा अरु तिनके कारन ।
तुमहीं राजत तेज तिमिर तुमहीं जग धारन ॥

दृष्टि जहाँ लगि जाइ तहाँ लगि चरित तिहारो ।
आन जगत यह काह जौन यह नैन निहारो ॥
तुम परिवर्तन विश्व करे छन छन पुनि करहू ।
अस प्रभुता तउ निज जन पै ममता अति धरहू ॥
तव रसनागत नाथ वचन आरत उच्चारत ।
परवर्तित जग माहिं आज सेवक पग धारत ॥
तव चिन्तन मन माहिं तिहारो सुजस वचन वर ।
तुम्हरी सेवा माहिं करम मेरो रह तत्पर ॥
मोह निसा तें जागि दृष्टि डारी जिहि ओरा ।
सब सुखमा के बीच चरित दरसत प्रभु तोरा ॥
निसा बिगत निश्चरान अजहुँ तम दस दिसि छायो ।
निरखिय प्राची ओर कछुक परकास लखायो ॥
अघी हृदय तव भजन तेज सोइ परत दिखाई ।
कै माया घन बीच ईस आभा दरसाई ॥
महा मोह को अन्धकार हरि ज्ञान प्रकासत ।
नाथ नाम परभात भगत हिय कमल विकासत ॥
अरुनोदय लखि निकट सकल तारे पियराने ।
जिमि अघ पुञ्ज नसात तिहारे पद नियराने ॥
बोलत नाहिं बिहङ्ग सन्त गन हरि गुन गावत ।
डोलत नाहिं समीर सुजस सौरभ फैलावत ॥
तजि नभचर निज भवन चुगन हित लागे विचरन ।
गेही जिमि गृह त्यागि ज्ञान हित सेवत हरिजन ॥
तुम्हरे तेज अपार सिन्धु कै अनु दरसावत ।
विजय करत लै किरन प्राचि दिसि तें रवि आवत ॥
हरियाली पै सूर्य्य किरन इमि फैलि दिखावत ।
हरि रङ्गन जिन रँगे ज्ञान अनइच्छित पावत ॥

पतियन बीच मरीचि कहूँ कहुँ प्रकटि दमाकत ।
जग छवि निरखन हेत झरोखन तें जनु झाँकत ॥
धाये मधुकर वृन्द सरोवर कञ्जनि फूलें ।
विषय सुलभ लखि ओछे त्यागिन के मन भूलें ॥
चटकहिं कलिन गुलाब केरि भटकहिं मन मेरो ।
ताल देत जनु सुमन गान सुनि पिकगन केरो ॥
कबहूँ तो च्वै परत ओसकन तरुवर पातन ।
मनहुँ प्रेम को आँसु स्रवै तव गुन सुनि हरिजन ॥
लता तरुन महँ लपटि नवीन सुमन बिखरावत ।
तुम पद नेह लगाइ मनहुँ मनवाञ्छित पावत ॥
चम्पक के तो फूले परम सुन्दर सरूप धरि ।
तऊ न पर्सौ मधुप ताहि नियरात नेह करि ॥
जनु सन्तत छवि अमित विरञ्चि माया दिखराई ।
तबहुँ न हरि के सुमति जनन को सकत लुभाई ॥
देखि उदय परभात वनस्पति सींचत माली ।
पुष्ट करत मन जनु गुरु शिक्षा देइ निराली ॥
कंटक सकल बराइ कोउ पुष्पनि चुनि लेहीं ।
मानहुँ तुम्हरे परम सेवकन सिखवन देहीं ॥
जो परमारथ जगत माँहि सो लेहु बराई ।
तजहु अपार असार जाल कंटक समुदाई ॥
तो तुम इनकी भाँति सदा चढ़िहौ सुर सीसन ।
रहहु प्रफुल्लित प्रेम मगन जग भूलहु ईस न ॥
या जग जीवन द्वैक दिवस सन्तत नहिं रैहो ।
काल अतिहिं विकराल विवस अन्तहु मुरझैहो ॥
बनि परमारथ माल तजहु परहित तन मन धन ।
स्वारथ हूँ इमि सरै करो हरि चिन्तन छन छन ॥

कौमुदी-कुञ्ज

उपदेश ।

चन्दने में फूल और ऊख में न दीन्हे फल बड़े बड़े कंटक गुलाबन के डारे की । कोयल सुबानी दै भ्रमर कीन्हे कागन को छोटी छोटी अँखियाँ बनाई गज भारे की ॥ सोने में सुगंध नाहिं हीरा विषमूल कीन्हे अगिनि सधूम गति थिर नहिं पारे की । भाषै सीताराम हेर हेर एक आनन तें कौन कौन चूक चतुरानन बिचारे की ॥ १ ॥

बालि बलि विक्रम दधीचि हरिचन्द बेनु रावण सुयोधन अनेक भूपतिनके । महल अटारी सुख सम्पति समाज सारी कहाँ गई कोटिन सवारी जौन जिनके ॥ सीताराम केवल कहानी कहिबे को रही देखिबे को सुयश निशानी बनी गिन के । दौरत पिया से काहे देखि कै मृगा से सबै जग के दुरासे यें तमासे चार दिन के ॥ २ ॥

काहे को गरूर तू करत बेशहूर एरे पाय तन मानुष को थोरी जिन्दगानी में । सेखी साढ़ हाथ की ठिकाना नहीं छिनहू को घूमत उताना कहाँ उमड़ो जवानी में ॥ दौलत खजाना माल सबही बिगाना काहे फिरत दिवाना है जहाँ को हुकमरानी में । कोऊ न यगाना सीताराम मन माना यहाँ ध्यान धर ध्यान उपदेश भरी बानी में ॥ ३ ॥

पंडित सीताराम उपाध्याय—पिनफिङ्गा, जोनपुर निवासी ।

जन्म सं० १९२८ अगहन शुक्र ६ ।

वर्षाऋतु।

विरहिन हृदय बिदारनहारे।
छये अकास जलद रँग कारे॥
जल धरनीतल धूल दबाई।
सूर चन्द नहिं परत लखाई॥ ६॥
गरजत घन भय हंस पलाये।
साँझ न दीसत चंद सुहाये॥
कुन्द रदनि नव मदयुत मोरा।
चहुँ दिसि कुहुकि मचावहिं शोरा॥ १०॥
नभ न नखत निशि घन बहु छाये।
हरि सुख सोवत सेज बिछाये॥
इन्दु चापयुत जल बरसाते।
घन कर गिरि सम गज मदमाते॥ ११॥
धुनि गँभीर युत जल बरसावत।
घन गरजन गिरि नाग डरावत॥
गुहा अनूपम रूप सुहाई।
सतड़ित घन तहँ जल बरसाई॥ १२॥
दिनकर दुति बन रही लुकाई।
नभ तें जल बरसत दुखदाई॥
मदनहिं करत प्रहार निहारी।
प्रोषित जन तिय बैन उचारी॥ १३॥
जलद सकल अवसर बिसराये।
पिय परदेश गये तुम आये॥
निर्दय पिय परदेस सिधारे।
तुम न हमहिं तजिहौ बिन मारे॥ १४॥

कानन महिँ रहि फूल चमेली ।
पिय बिनु व्याकुल होहिँ नवेली ॥
गरजत मेघ समीर डुलाई ।
अति सुगंधि सब दिशि फैलाई ॥ १५ ॥
भ्रमर पुष्प रस अवसर जानी ।
चूमत लता यूथिका आनी ॥
चहुँ दिसि छाज सुभग हरियारी ।
चातक याचत निर्मल वारी [१६]

हरिमङ्गल मिश्र एम० ए०—जन्म सं० १९३७

व्याहा भला कि क्वारा ?

मेरे मन यह भावना, पत्नी करना यार ।
उमर अकेले काटना, होना सचमुच ख्वार ॥
बड़ा हर्ष यह रात दिन, निज नारी का ध्यान ।
जग में रहना नारि बिन, महा कष्ट कर जान ॥
भामिनि चिन्ता चित्तको, है अतिही सुखदाय ।
पावै कभी न मित्र सो, जो क्वारा रहि जाय ॥
ब्रह्मचर्य्य जो साधता, बहुत बुरा दरसाय ।
मेरे मन को भावता, व्याहा जो बन जाय ॥

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग

गोचारण-शिक्षा ।

बिपिन बीच जिन जाव अकेले, छोड़ि सखन को साथू ।
भूल बिसर जनि डारौ, कौंदर खदरन मे कहुँ हाथू ॥
तनक तनक बछरन को लैके, तनक दूर तुम जइयो ।
जो मैं दीन्हौं कान्ह कलेऊ बैठि जमुन तट खइयो ॥१॥

कान्ह कुवँर सों कहत गरो भरि, फिरि फिरि जसुमति मैया।
जब भूखे तुम होहु लाड़िले, तब दुहि पीजो गैया ॥
 झाड़ होहिँ जहँ सघन लतन के, तहाँ तोरियो फूलन ।
 कबहू नहीं होहु तुम ठाढ़े, लागि वृक्ष के मूलन ॥२॥
हिले मिले रहियो ग्वालन में, एक ठौर सब आछे ।
जिन दौरियो उपनये पाँयन, हरवाहल के पाछे ॥
 जहाँ होय तृन-आवृत धरनी, तहाँ जात तुम डरियो ।
 जीव जन्तु तहँ होत घनेरो, समझि बूझि पग धरियो ॥३॥
और मछोह होय वृक्षन में, कबहु न तिनहिँ खिझइयो ।
बिड़रानी गैयन के सामूँ, भूल बिसर जिन जइयो ॥
 बार बार बरजत हैं बाबा, सुनियो बचन हमारो ।
 कण्टक तृनकँकरन के ऊपर, कोमल पाँव न धारो ॥४॥
जहँ बामी जु बिले गोहन के, तहँ बैठक तज दीजो ।
इहि बेमटे बरर छतानें, तिन सो रारि न कीजो ॥
 जहाँ होहिँ खुर सिंह बाघ की, तहाँ न कीजो फेरी ।
 जिन भरियो तुम धाय बिपिन में, पूँछ बछरन केरी ॥५॥
सघन छाहँ तर बैठ जमुन तट, कान्ह कलेऊ कीजो ।
विपिन विपिन ते गाय बहोरन, पठै सखन को दीजो ॥
 ठौर ठौर पुनि बगर बगर के, बछरा बिछुरि हिरैहैं ।
 ढूँढ़न तुम जिन जाव कहूँ बन, भटकत पाँव पिरैहैं ॥६॥
सुनों लाल यह सीख हमारी, वे बछरन दुखदाई ।
कबहूँ भूलि न जइयो तेहि वन, जेहि बन होत बिघाई ॥
 आपस में कबहू लरिकन सों, भूल न करो लराई ।
 हिले मिले रहियो सबही सों, वन बन धेनु चराई ॥७॥
बार बार यह कहति यशोमति, भरि भरि आनँद आँसू ।
कबहूँ भूलि जिन करियो साँवलि, नागिन को बिसवासू ॥

जो हम कहैं सीख सो कीजो, यही बात है भलियो ।
कस्यो बैठि बिसराम बिरछ तर, सामें घाम न चलियो ॥८॥
जो कछु सीख देइ बलदाऊ, मान सीस धर लीजो ।
ब्यानी गाय तुरत जो तेहि की, तेला भूल न पीजो ॥
एक बात मैं कहत लाड़िले, यह विसेखहु कीजो ।
फूले फले करैंछ बिपिन में, तिनको भूल न छीजो ॥६॥
विषधर विषम बसत यहि जागा, यहै बात जग जानी ।
गोधन को कबहु नहिं दीजो, कालीदह कहँ पानी ॥
और खेल खेलो गैं वन को, ढेलन को मत खेलौ ।
सुनों साँवले खेल हुडुरुवा, हूक्षा दे नहिं खेलौ ॥१०॥
कान उमेठ कुंवर कान्हर के, हटके जसुमति मइया ।
जिन खेलो तुम हंद साँवरे, रूखन पैंजु बिलइया ॥
रूखन पै जिन चढ़ो साँवरो, पीपर पात न टोरो ।
गैलन गिली डंड जिन खेलो, यही सिखावन मेरो ॥११॥
खाई कूप बावरी बेहर, नदियाँ नारो बाँको ।
स्यामलिया रे सुन, इनको कछु कबहुं कूदि न नाको ॥
कंस राज को राज कठिन है, जमुना उतर न जइयो ।
साँझ होन नहिं पावे प्यारे, दिन बूड़त घर अइयो ॥१२॥
जसुमति नंद सीख यह दीनी, अपने कुँवर कन्हैये ।
बाँह पकर आगे कै सौंपि, दै अमरू बल भइये ॥
साथ लिये रहियो मेरे को, तुम हो तनक सयाने ।
न्यारो होन देव नहि कबहूँ, वन बीथी नहिं जाने ॥१३॥
जानत नहीं कछू काहू की, छल बल याहि न आवे ।
बारो भोरो तेरो भइया, भूलन कहूँ न पावे ॥
काहे को तू हमको इनको, बार बार समझावे ।
सुन मइया यह मेरो भइया, सब को गैल बतावे ॥१४॥

अपनी प्रकृति पसार पलक में, सिगरो जगत भुलावे ॥
ढूँढि ढूँढि थाके ब्रह्मादिक, इनको पार न पावे ॥
करो प्रणाम परसि पग सिरसों, हिल मिल दोऊ भइया ।
ग्वाल बाल लै चले विपिन को, आगे दै सब मइया ॥१५॥
एकै वेनु बजावत डगरे, मधुअर धुनि पुनि लागी ।
अपने अपने द्वारे लखतीं, जे जुवती बड़-भागी ॥
एकै पौर किवारन लागीं, केहू टरत न टारी ।
लखतीं भटा अटारिन ठाढ़ी, भई मौन मतवारी ॥१६॥
जबतें विपिन गये नंद नंदन, तब ते कछु न सुहाई ।
छिन भीतर छिन आँगन आवत, इत उत जसुमति माई ॥
बार बार जसुमति सबही को, ऐसो वचन सुनावे ।
कमल बदनपर गोरज लिपटी, कब कान्हर घर आवे ॥१७॥
कब धौं तेल फुलेल चुपरि के, लामी चुटिया औंछों ।
गोरज लिपटि रही मुख ऊपर, आँचर आँगु अँगौछों ॥
बकत खिझत भूखो मइया कहि, माँगत माखन रोटी ।
आवे धौं कब आज बिपिन ते, लिये लकुट कर छोटी ॥१८॥
आवत दौरि पौरि लो फिरि फिरि, इत उत फिरि फिरि जाई ।
बार बार सबही को पूछति, आवत कुवँर कन्हाई ॥
धरो औटि धौरी धूमरि को, दूध दुहनियाँ भरि कै ।
कबधौं कनक कटोरा भरि भरि, प्याऊँ अपने लरिकै ॥१९॥
रोहनि कहत सुनो हो जसुमति, अब न करो अवसेरो ।
गोरज उड़त देखियत देखो, आवत कान्हर मेरो ॥
आवत सुनो जसोमति रानी, गोरज अंबर छाई ।
चढ़ी जाय अति उच्च धौरहर, इक टक डीठ लगाई ॥२०॥
परी श्रवन धुनि मुरली केरी, सब के श्रवन सिहाने ।
अति आनन्द भयो सबही के आयो प्रान ठिकाने ॥

कान्ह कुँवर जेहि मारग आवत, तेहि मारग सब ठाढ़ी ।
कञ्चन थार आरती साजे, मनो चित्र लिखि काढ़ी ॥२१॥
दिये ग्वाल गोधन को आगे, पीछे कुँवर कन्हाई ।
लिपटे ग्वाल बाल लालन सँग, सो छवि बरनि न जाई ॥
अपने अपने खरिकन काजे, गनि गइयन बहिरावैं ।
धौरी, धूमरि, सैन, मजीठी, कहि कहि टेर बुलावैं ॥२२॥
आवत सुने कान्ह जब बनतें, अति उछाह पुर माहीं ।
जो जैसे सो तैसे दौरीं, तन की सुधि कछु नाहीं ॥
कोऊ बैठी बेनी गूँथत, अधगूँथत उठि धाईं ।
कुँवर कान्ह के देखन काजन, बार सँवारत आईं ॥२३॥
भई विवस मन से तन की, तो तनकौ सुध न सँभारी ।
अति उताल आगे उठि दौरी, चोटी गूँथनहारी ॥
कोऊ एक नारि नवजोबन, कान्ह दरस रस पागी ।
द्वारे गुरुजन भीर देख के, आय किवारन लागी ॥२४॥
कोऊ एक द्वार में ठाढ़ी, परम प्रेम परि पूरी ।
बार बार पूँछति सबही सों, मोहन केतिक दूरी ॥
कोऊ गूँथत उच्च अटा चढ़ि, गज मोतिन के हारा ।
चली चौक सी पूरति मग में, नाहीं नेकु सँभारा ॥२५॥
कोऊ अपने बसन सँभारत, चली वेगि तेहि ठाऊँ ।
निकसि दूर जो जाँय कुँवर तो, केहि विधि देखन पाऊँ ॥
कोऊ अटा अटारिन बैठी, लखत नन्द को नन्दू ।
चारो ओर मनो या पुर में, उगे सरद के चन्दू ॥ २६ ॥
झझकि झाँकि फिरि जात लाज वस, विमल अंग छवि चमकै ।
इत उत अटा घटा पै मानो, दामिन दुरि दुरि दमकै ॥
आवत सुने विपिन ते वनितन जसुमति नन्द-दुलारे ।
अति उताल देखन उठि दौरीं, छाँड़ि छोड़ि सुत वारे ॥२७॥

आवत देखि दूरि ते दौरी, उठि जसुमति महतारी।
रोहिन सहित आरती कीन्ही, लेकर कञ्चन थारी॥
तातो तोय सुहातो लैकर, पाँय सरोज पखारे।
अंग अंगोछि पोंछि कर पट सों, सिंहासन बैठारे॥२८॥
जुलफन बिच गोरज लपटानी, पोंछति जसुमति मैया।
चूमति मुख बलदेव कान्ह को, फिर फिर लेत बलैया॥
घर घर ते गोपी जुरि आईं, निकटहिं बैठक दीन्हीं।
डीठि बचाय जसोमति केरी, अँखियन आदर कीन्हीं॥२९॥
धर ल्याई पकवान मिठाई, भर कंचन की थारी।
कहत जसोमति कुंवर लाड़िले, अब कुछ कीजे व्यारी॥
अति अद्भुत कान्हर की लीला, केहु कही न जाई।
कियो पान दावानल लैके, पीवत दूध सिराई॥ ३०॥
कोमल करन सुफल ब्रज जुवतिन, रुचि रुचि सेज बिछाई।
आनँद उमँग भरे नँदनंदन, तापर पौढ़े जाई॥
कहौ कुंवर कछु बन की बतियाँ पूंछति जसुमति मैया।
हँसि हँसि दै दै साख सखन की, लागे कहन कन्हैया॥३१॥
सुनु मैया इक दनुज विपिन में, खर सरूप निज धारो।
तेहि के पाँव पकरि बलदाऊ, ऊंचे धर फटकारो॥
अरु मइया सुनु बन की सोभा, लता लिपट तरु भूली।
कोकिल बोलत कल धुनि तिन पर, अति सुगंध जुत फूली॥
हरी हरी अति दूब लहलही, जमुना तट की ओरैं।
सघन ठौर कुंजन की पुंजन, नचतीं सहसन मोरैं॥
सुफल जनम तिनके फल देखें, जिनको रस अति मीठो।
तिनके खाये मैं यह जानत लगत सुधा हूं सीठो॥ ३२॥
जैसो सुख मैं लख्यौ विपिन में, तैसो सुख कहँ पैये।
ग्वालन साथ चरावन गैया, मइया बहुरि पठैये॥

सुनि मैया छोटा की बातें, आनँद उर न समाई।
होत प्रात मैं फेर पठैहौं, सुन रे लाल कन्हाई ॥ ३४ ॥
भटकत भटकत आज विपिन में, थाके पाँव तुम्हारे।
भोर भये ले जाने गैया, सोवहु कान्हर बारे ॥
भोर रैन के जसुमति रानी, दधि मथि घुमति मथानी।
महल लदाव झनक झावन की, मनो घटा घहरानी ॥३५॥
घर घर घुमत घने दधि मथना, घर घर मंगल गावें।
करत ग्वासली ग्वाल घनेरे, गायें नन्द दुहावें ॥
कहि कहि कथा राम दशरथ की जसुमति माय सुवाये।
भोर भये सिगरे लरिका मिलि मोहन आनि जगाये ॥३६॥
मइया कहत जोरि कर दोनों, उठ उठ कुंवर कन्हैया।
कब को जग्यो देखु किन जगि कै, टेरत है बल भैया।
आई दौरि दोहनी लै के, हँसती रोहनि मैया।
बछरा छोरु गिरैंया ते तू, हैं रभाति मुरु गैया ॥३७॥
सुनि सुनि वचन मधुर मैया के, तेहि छिन मोहन जागे।
मीड़त उठे कमल दल लोचन, कमल करन अनुरागे ॥
भरि लाई कञ्चन की थारी, दौरि रोहिनी रानी।
कर दातौन कमल मुख धोयो, जमुना जूके पानी ॥३८॥
उठे दौर बछरा लै छोरो, हाथ दोहनी नोई।
गाती बांधि पितम्बर की छबि, जनु घन दामिन दोई ॥
मुकुट लटकि कुंडल की डोलनि, कर कंचन के चूरा।
घूटन बीच दोहनी दाबी, चढ़यो बदन पर नूरा ॥३९॥
बँदरी को है बछरा दुबरो, चोखन आछे दीजो।
चारौ थन को दूध दुलारे, सिगरे दोहि न लीजो ॥
दिन दस बीस दूध मन भायो, जो यह पीवन पैहै।
धौरी के बछरा की सम सर, तो नाटो हो जैहै ॥४०॥

गो दुहनो कर कान्ह खरिक ते, भरी दोहनी ल्याये ।
बाबा नन्द जसोमति मैया, हँसि हँसि कंठ लगाये ॥
भलो दूध तैं दोहो, तैं है भलो दुहैया ।
अब तो करो कलेऊ कान्हर, कहत जसोमति मैया ॥४१॥
पुरी पुवा पकवान मिठाई, भावै मोहिं कछू ना ।
मचलि मचलि धिर कहत मातु सों, लेहौं तेल फफूना ॥
जो कछु माँगत कान्ह कलेऊ, सो लै आवत मैया ।
बैठे जेंवत एक थार में, हँसि हँसि दोऊ भैया ॥४२॥
कान्हर चले कलेऊ करि के, गावत हिलि मिलि हेरी ।
खोलि खोलि खरिकन के फरिकन, गायें आनि उबेरी ॥
प्रात होत उठि साथ सखन के, बन्दावन धेनु चरावें ।
अति आनँद उन मानि नन्द सुत, साँझ होत घर आवैं ॥४३॥

बकसी हंसराज ।

शिशिर पथिक ।

विकल पीड़ित पीय-पयान ते
चहुं रह्यो नीलिनी-दल घेरि जो,
सुजन भेंट तिन्हें अनुराग सों
गमन-उद्यत भानु लखात हैं ॥ १ ॥
तजि तुरन्त चले, मुख फेरिकै
शिशिर-शीत-सशङ्कित जीव हों,
विहग आरत बैन पुकारते
रहि गये, पर ताहि सुनी नहीं ॥ २ ॥
तनि गये सित ओस-वितान हूं
अनिल भार वहार धरा परी,
सुकम लोग लखे घर पोच हैं
विवर भीतर कीट पतङ्ग से ॥ ३ ॥

युग भुजा उर बीच समेटि कै
लखहु आवत गैयन फेरि कै,
कँपत कम्बल बीच अहीर हूँ
भरमि भूलि गई सब तान है ॥ ४ ॥
तम भयङ्कर कारिख फेरि कै
प्रकृति दृश्य कियो धुँधलो सबै,
बनि गये अब शीत-प्रताप ते
निपट निर्जन घाटऽरु बाट हूँ ॥ ५ ॥
पर चलो वह आवत है, लखो
विकट कौन हठी हठ ठानि कै ?
चुप रहैं तब लौ जब लौं कोऊ
सुजन पूछनहार मिलै नहीं ॥ ६ ॥
शिथिल गात महा, गति मन्द है
वहु निहारत धाम विराम को,
उठत धूम लख्यो कछु दूर पै
करत स्वान जहाँ रव घोर हैं ॥ ७ ॥
कँपत आइ भयो छिन में खड़ो
युग कपाट लगे इक द्वार पै,
सुनि परयो "तुम कौन !" कह्यो तबै
"पथिक दीन दया इक चाहतो" ॥ ८ ॥
खुलि गये झट द्वार धड़ाक से
धुनि परी मधुरी यह कान में,
निकसि आइ बसौ यहि गेह में
पथिक वेगि सकोच विहाइ कै ॥ ९ ॥
पग धरो जब भीतर भौन के
अतिथि आवन आयसु पाइकै,

कठिन शीतज ताप-विघातिनी
अनल दीर्घ-शिखा जहँ फेंकती ॥ १० ॥
चपल दीठि चहूँ दिशि जाइके
पथिक की पहुँची इक कोन में
दिन गिनै नर एक परो जहाँ ॥ ११ ॥

सिर समीप सुता मन मारिकै
पितहिं सेवति सील सनेह सों,
तहँ खड़ी नत-गात कृशाङ्गिनी
लसति वारि विहीन मृणालसी ॥ १२ ॥

लखि फिरी दिसि आवन हारके
विमल आसन इङ्गित सों दियो,
अतिथि बैठि असीस दियो तबै
"फलवती सिगरी तुव आस हो" ॥ १३ ॥

मृदु हँसी करुणा-रस-संगिनी
तरुनि आनन ऊपर धारिकै
कहति "हाय पथी ! सुनु बावरे
न तरु नीरस मे फल लागई ॥ १४ ॥
"नति लखी विधि की जब वाम मैं
जगत के सुख सों मुंह मोरिकै,
पितृ-निदेश निबाहन औ सदा
अतिथि सेवन, को व्रत मैं लियो ॥ १५ ॥

"अब कहो निज नाम चले कहाँ ?
कहहु आवत हौ कितते इतै ?
बिचलि कै चितकै किहि वेग सों
पग धरो पथ-तीर अधीर ह्वै ? ॥ १६ ॥

"अखिल आस अमी-रस सींचिकै
सतत राखति जो तन-वेलिहीं,
पथिक ! वैठि अरे तुव वाट को
युवति जोवति है कतहूँ कोऊ ? ॥ १७ ॥
"नयन कोउ निरन्तर धावहीं
तुमहिं हेरन को पथ बीच मे ?
श्रवण-बाट कोऊ रहते खुले
कहुँ, अरे, तुव आहट लेन को ॥ १८ ॥
"कहुँ कहूँ तोहिं आवनि जानिकै
स्निग्धता तुव प्रेम-प्रदायिनी,
प्रथम पावन कारण होत है
चरन-लोचन-वीच वदा वदी ? ॥ १९ ॥
"कर दया, भ्रम जो सुख देत है
सुमन-मञ्जुल-जाल बिछाइ कै,
कठिन, काल, निरंकुश निर्दयी
छिनहिं छीनत ताहि निवारि कै ?" ॥ २० ॥
दबि गयो उन बैननि-भार सों
पथिक दीन, मलीन, थको भयो,
अचल मूर्ति बन्यो, पल एक लौ
सब क्रिया तन की मन की रुकी ॥ २१ ॥
वदन पौरुष-हीन विलोकि कै
नयन नीरन उत्तर दै दियो—
"तव यथार्थ सब अनुमान है
अति अलौकिक देवि दयामयी" ! ॥ २२ ॥
अचल नैननि सों सुनि हारते
पथिक को अपनी दिसि देखिकै;

इमि लगी कहने फिर कामिनी
अति पवित्र दया-व्रत धारिणी ॥ २३ ॥
"कुशलता न अहै यहि में कछू
अरु न विस्मय की कछु बात है
दिवस जो दुख की दिसि खेवही
गति लखैं मग में उलटी सबै" ॥ २४ ॥
उभय मौन रहे कछु काल लौं
पथिक ऊपर दीठि उठाइ कै,
इक उसास भरी गहरी जबै
यह कढ़ी मुख ते वचनावली ॥ २५ ॥
अवनि ऊपर देश-विदेश में
दिवस घूमत ही सिगरे गये,
मिसिर, काबुल, चीन, हिरात की
चरण धूरि रही लिपटाइ है ॥ २६ ॥
"पर-दशा-दिशि-मानस योगिनी
लखि परी इकली भुव बीच तू,
यह विशेष विचारि सुनावहू
सुतनु ! मो तनु पै जु व्यथा परी ॥ २७ ॥
"मन परै दुख की जब वा घरी
पलटि जीवन जो जग मे दियो,
चतुर "सेज़र" के वश ह्वै अहो
जय कियो अपनो सुख-नाश मैं ॥ २८ ॥
"हित-सनेह-सने मृदु बोल सों
जब लियो इन कानन फेरि मैं,
स्वजन और स्वदेश-स्वरूप को
कर दियो इन आँखिन ओट हा ! ॥ २९ ॥

अब परै सुनि वाक्य यही हमैं
        धरहु, मारहु, सीस उतारहू,
दिवस रैन रहैं सिर पै खरी
        अति कराल छुरी अफ़ग़ान की ॥ ३० ॥
पथिक हो यह आश हिये धरे
        मम वियोगिनि भामिनि को अजौं,
अपर-लोक-पयान, प्रयास ते
        मम समागम-संशय रोकिहैं ॥ ३१ ॥
कहुँ यहीं इक मन्मथ गाँव है
        जहँ घनी बसती विधु-वेश की,
तहँ रहे इक विक्रमसिंह जो
        सुवन तासु यही रनवीर हैं ॥ ३२ ॥
कहत ही इन बैनन के तहाँ
        मचि गयो कछु औरहि रङ्ग ही,
बदन अञ्चल बीच छिपावती
        यह परी गिरि भूतल भामिनी ॥ ३३ ॥
असम साहस वृद्ध कियो तबै
        उठि धस्यो महि मे पग खाट तें,
"पुनि कहो" कहि बारहि बारही
        पथिक को फिर फेर निहारई ॥ ३४ ॥
आशा त्यागी बहु दिनन की नेकु ही मे पुरावै
        लीला ऐसी जगत प्रभु की, भेद को कौन पावै ?
देखो नारी सुकृत-फल को बीच ही माँहि पायो:
        भूले प्यारो, निज-प्रियतमा-पास, आयो सुहायो ॥

रामचन्द्र शुक्ल ।

जीवन-गीत

शोक-भरे छन्दों में मुझसे कहो न "जीवन सपना है"।
जो सोता है वह है मृतवत्, जग का रङ्ग न अपना है ॥
जीवन सत्य, नहीं झूठा है, चिता नहीं इसका अवसान।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा" उक्ति नहीं यह जीवनिदान ॥
भोग विलास नहीं, न दुःख हैं, मानव-जीवन का परिणाम।
करना ही चाहिये नित्य प्रति अधिकाधिक उन्नति का काम ॥
गुण हैं अमित, समय चञ्चल है, यद्यपि हृदय बहुत बलवान।
तदपि ढोल समान बिलखता चिता ओर कर रहा प्रमान ॥
जग की विस्तृत रण-स्थली में जीवन के झगड़ों के बीच।
नायक बन कर करो काम सब, पशुओं ऐसे बनो न नीच ॥
नहीं भविष्यत् पर पतियाओ, मृतक भूत को जानों भूत।
काम करो सब वर्तमान में सिर प्रभु, मन दृढ़ यह करतूत ॥
सज्जन चरित सिखाते हम भी कर सकते हैं निज उज्वल।
जग से जाते समय रेत पर छोड़ें चरण-चिह्न निर्मल ॥७
चरण-चिह्न वे देख कदाचित् उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर नौका जिनकी टकराई ॥८
हो सचेत श्रम करो सदा तुम, चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो धीरज धरना, करना काम ॥९

पुरोहित लक्ष्मीनारायण

स्वदेश-प्रीति

होगा नहीं कहीं भी ऐसा अति दुरात्मा वह प्राणी।
अपनी प्यारी मातृभूमि है जिससे नहीं गई जानी ॥
"मेरी जननी यही भूमि है"-इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमङ्गित हुआ वृथा है उसका पृथ्वी पर जीवन ॥१

क्या कोई ऐसा है जिसका मन न हर्ष से भर जाता।
देश विदेश घूम कर जिस दिन वह अपने घर को आता॥
यदि कोई है ऐसा, तो तुम जाँचो उसको भले प्रकार।
नाम न लेता होगा कोई करता नहिं होगा सत्कार॥२॥
पावे वह उपाधि यदि उत्तम अथवा लक्ष्मी का भंडार।
लम्बा चौड़ा नाम कमा कर चाहै हो जावे मतवार॥
उसकी सब पदवियाँ व्यर्थ हैं उसके धन को है धिक्कार।
केवल अपने तन की सेवा करता है जो विविध प्रकार॥३॥
विमल कीर्ति का जीवन भर वह कभी न होगा अधिकारी।
घोर मृत्यु के पञ्जे मे फँस पावेगा वह दुख भारी॥
तुच्छ धूल से उपजा था वह उससे ही मिल जावेगा।
उस पापी के लिये न कोई आँसू एक बहावेगा॥४॥

गौरीदत्त बाजपेई।

मेरी मैया

किसने अपने स्तन से मुझको सुमधुर दूध पिलाया था?
लेकर गोद, प्रेम से थपकी दे दे मुझे सुलाया था?
चूम चूम कर किसने मेरे गालों को गरमाया था?
मेरी मैया! मेरी मैया!!

बिलख बिलख कर रोता था जब नींद न मुझको आती थी?
आरी निंदिया! आरी निंदिया! कहकर कौन सुलाती थी?
और प्यार से पलने मे रख मुझको कौन झुलाती थी?
मेरी मैया! मेरी मैया!!

बालपने में पलने ऊपर मुझे नींद जब आती थी:
मुख मेरा विलोक मनही मन कौन महा सुख पाती थी?
और प्यार के आँसू बैठी बैठी कौन बहाती थी?
मेरी मैया! मेरी मैया!!

व्यथित और बीमार देख कर मुझे कौन अकुलाती थी?
बैठी बैठी मेरे मुख पर आँखें कौन गड़ाती थी?
औ मेरे मरने के डर से आँसू विपुल बहाती थी?
मेरी मैया! मेरी मैया!!

मुझे गिर गया देख, दौड़ कर, तत्क्षण कौन उठाती थी?
फिर मेरा जी बहलाने को बातें कौन बनाती थी?
अथवा फूँक फूँक कर अच्छी हुई चोट बतलाती थी?
मेरी मैया! मेरी मैया!!

जिसने प्यार किया अति मेरा कैसे उसे भुलाऊँगा?
नहीं स्वप्न में भी मैं उससे मन अपना बिलगाऊँगा।
गुण उसके गा कर मैं उससे अविरल प्रीति लगाऊँगा।
मेरी मैया! मेरी मैया!!

सोच सोच कर इन बातों को जी मेरा घबड़ाता है;
ईश कृपा से यह शरीर यदि इस जग में बच जाता है।
एक दिवस देखना दास यह फल इसका दिखलाता है।
मेरी मैया! मेरी मैया!!

कमर जायगी जब झुक तेरी और बाल पक जावेगा;
मेरा भुजलम्बा बलशाली तेरा टेक कहावेगा।
और बुढ़ापे का दुख तेरा क्षण भर में बिनसावेगा॥
मेरी मैया! मेरी मैया!!

जब तेरा शिर शय्या ऊपर पड़े पड़े झुक जावेगा;
तब इस सेवक की आवेगी बारी, तुझे उठावेगा?
और, उस समय, प्रबल प्रेम से उमँगे अश्रु बहावेगा,
मेरी मैया! मेरी मैया!!

जैनेन्द्र किशोर।

बुलबुल की फरियाद।

आना है याद मुझको गुज़रा हुआ ज़माना।
वह झाड़ियाँ चमन की वह मेरा आशियाना॥
वह साथ सब के उड़ना वह सैर आसमाँ की।
वह बाग़ की बहारें वह सब का मिल के गाना॥
पत्तों का टहनियों पर वह झूमना खुशी में।
ठंडी हवा के पीछे वह तालियाँ बजाना॥
लगती है चोट दिल पर आता है याद जिस दम।
शबनम का सुबह आकर फूलों का मुँह धुलाना॥
वह प्यारी प्यारी सूरत वह कामनी सी सूरत।
आबाद जिसके दम से था मेरा आशियाना॥
आज़ादियाँ कहाँ वह अब अपने घोसले की।
अपनी खुशी से आना अपनी खुशी से जाना॥
तड़पा रही है मुझको रह रह के याद घर की।
तक़दीर में लिखा था पिंजड़े का आबोदाना॥
इस क़ैद का इलाही दुखड़ा किसे सुनाऊँ।
डर है यही क़फ़स में मैं ग़म से मर न जाऊँ॥
क्या बदनसीब हूँ मैं घर को तरस रहा हूँ।
साथी तो हैं वतन में मैं क़ैद मे पड़ा हूँ॥
आई बहार कलियाँ फूलो की हँस रही हैं।
मैं इस अँधेरे घर मे किस्मत को रो रहा हूँ॥
बाग़ों मे बसने वाले खुशियाँ मना रहे हैं।
मैं दिल जला अकेला दुख में कराहता हूँ॥
आती नहीं सदायें उनकी मेरे क़फ़स में।
होती मेरी रिहाई ऐ काश! मेरे बस में॥

जी चाहता है मेरा उड़कर चमन को जाऊँ ।
आज़ाद हो के बैठूँ और सैर होके गाऊँ ॥
बेरी की शाख पर हो फिर इस तरह बसेरा ।
उस उजड़े घोंसले को फिर जाके मैं बसाऊँ ॥
चुगता फिरूँ चमन में दाने ज़रा ज़रा से ।
साथी जो हैं पुराने उनसे मिलूँ मिलाऊँ ॥
फिर दिन फिरें हमारे फिर सैर हो चमन की ।
उड़ते फिरें खुशी से खायें हवा वतन की ॥
जब से चमन छुटा है यह हाल हो गया है ।
दिल ग़म को खारहा है ग़म दिल को खारहा है ॥
गाना इसे समझ कर खुश हो न सुनने वाले ।
दुखे हुए दिलों की फरियाद यह सदा है ॥
आज़ाद वह के जिसने दिन अपने हों गुज़ारे ।
उसको भला खबर क्या यह कैद क्या बला है ॥
आज़ाद मुझको करदे ओ क़ैद करने वाले ।
मैं बेज़बाँ हूँ कैदी तू छोड़ कर दोआ ले ॥

अज्ञात ।

शान्तिमयी शय्या ।

मनोहारी शय्या परम सुथरी भूमि तल की,
सुहाती क्या ही है ललित वन के दूब-दल से ।
नदी के कूलों की विमल वर इन्दु-द्युति सम,
नई रेती से जो अति चमकती है निशि दिन ॥१॥
सुहाने वृक्षों की अति सघन पंक्ति-प्रवर से,
लता प्यारी प्यारी लिपटत अनोखी तरह से ।
रँगीले फूलों की नवल वन-माला पहन के,
लुभाती है जी को पथिक जन के वे विपिन में ॥२॥

सुरीली वीणा सी सरस नदियाँ वादन करैं,
कभो मीठी मीठी मधुर धुनि से गायन करैं।
सदा ही नाचै है झरित झरने नाच नवल,
निराली शोभा है विपिनवर की कौतुकमयी ॥३॥
कभी धीरे धीरे व्यजन करती मन्द गति से,
चली आती दौड़ी पवन सदमानी मलय की।
कभी चित्ताकर्षी शिशिर-कणवर्षी विपिन से,
दिखाती है शोभा सुखद, मन लोभा न किसका? ॥४॥
महाशोभा-शाली विपुल विमला चन्द्र किरणें,
घने कुञ्जों में है सतत घुल के खेल करतीं।
कभी हो जाती हैं सघन घन के ओट-पट में,
वियोगी योगी के हृदय हरतीं तत्क्षण सदा ॥५॥
कभी आती निद्रा विमल परमानन्द-पद की,
सुहानी शय्या में अतिशय सनी शान्ति रस की।
कभी आँखों को है चकित करती प्राचि अबला,
दिखाती आती है अमल अरुणाई अधर की। ६॥
छटा कैसी प्यारी प्रकृति तिय के चन्द्रमुख की,
नया नीला ओढ़े वसन चटकीला गगन का।
जरी-सलमा-रूपी जिस पर सितारे सब जड़े,
गले में स्वर्गङ्गा अति ललित माला सन पड़ी ॥७॥

सत्यशरण रतूड़ी।

प्रकृति।

छटा और ही भाँति की देखते हैं।
जहाँ दृष्टि हैं डालते फेर के मुँह ॥
कहीं छन्द सुनते कहीं रेखते हैं।
कहीं कोकिलों की सुरीली 'कुहू कुहू' ॥१॥

जी चाहता है मेरा उड़कर चमन को जाऊँ ।
आज़ाद हो के बैठूँ और सैर होके गाऊँ ॥
बेरी की शाख पर हो फिर इस तरह बसेरा ।
उस उजड़े घोंसले को फिर जाके मैं बसाऊँ ॥
चुगता फिरूँ चमन में दाने ज़रा ज़रा से ।
साथी जो हैं पुराने उनसे मिलूँ मिलाऊँ ॥
फिर दिन फिरें हमारे फिर सैर हो चमन की ।
उड़ते फिरें खुशी से खाये हवा वतन की ॥
जब से चमन छुटा है यह हाल हो गया है ।
दिल ग़म को खारहा है ग़म दिल को खारहा है ॥
गाना इसे समझ कर खुश हो न सुनने वाले ।
दुखे हुए दिलों की फ़रियाद यह सदा है ॥
आज़ाद रह के जिसने दिन अपने हों गुज़ारे ।
उसको भला खबर क्या यह कैद क्या बला है ॥
आज़ाद मुझको करदे ओ क़ैद करने वाले ।
मैं बेज़बाँ हूँ कैदी तू छोड़ कर दोआ ले ॥

अज्ञात ।

शान्तिमयी शय्या ।

मनोहारी शय्या परम सुथरी भूमि तल की,
सुहाती क्या ही है ललित वन के दूब-दल से ।
नदी के कूलों की विमल वर इन्दु-द्युति सम,
नई रेती से जो अति चमकती है निशि दिन ॥१॥
सुहाने वृक्षों की अति सघन पंक्ति-प्रवर से,
लता प्यारी प्यारी लिपटन अनोखी तरह से ।
रंगीले फूलों की नवल बन-माला पहन के,
लुभाती है जी को पथिक जन के वे विपिन में ॥२॥

सुरीली वीणा सी सरस नदियाँ वादन करैं,
कभी मीठी मीठी मधुर धुनि से गायन करैं।
सदा ही नाचै है झरित झरने नाच नवल,
निराली शोभा है विपिनवर की कौतुकमयी ॥३॥
कभी धीरे धीरे व्यजन करती मन्द गति से,
चली आती दौड़ी पवन सद्भाती मलय की।
कभी चित्ताकर्षी शिशिर-कणवर्षी विपिन से,
दिखाती है शोभा सुखद, मन लोभा न किसका? ॥४॥
महाशोभा-शाली विपुल विमला चन्द्र किरणे,
घने कुञ्जो मे है सतत घुस के खेल करतीं।
कभी हो जाती हैं सघन घन के ओट-पट में,
वियोगी योगी के हृदय हरतीं तत्क्षण सदा ॥५॥
कभी आती निद्रा विमल परमानन्द-पद की,
सुहानी शय्या में अतिशय सनी शान्ति रस सी।
कभी आँखो को है चकित करती प्राचि जवला,
दिखाती आती है अमल अरुणाई अधर की। ६॥
छटा कैसी प्यारी प्रकृति तिय के चन्द्रमुख की,
नया नीला ओढ़े वसन चटकीला गगन का।
जरी-सलमा-रूपी जिस पर सितारे सब जड़े,
गले मे स्वर्गङ्गा अति ललित माला सन पड़ी ॥७॥

सत्यशरण रतूड़ी।

प्रकृति।

छटा और ही भाँति की देखते हैं।
जहाँ दृष्टि है डालते फेर के मुँह॥
कहीं छन्द सुनते कहीं देखते हैं।
कहीं कोकिलों की सुरीली "कुहू कुहू" ॥१॥

कहीं आम बौरें, कहीं डालियों के।
तले फूल आके गिरे बीच थाले॥
रखे हैं मनो टोकरे मालियों के।
इकट्ठे जहाँ भोर से भीर वाले॥२॥
कहीं व्योम में साँझ की लालिमा है।
कभी स्वच्छ है दृष्टि आकाश आता॥
कभी रात्रि में मेघ की कालिमा है।
कभी चाँदनी देख जी है लुभाता॥३॥
कभी इन्द्र का चाप है सप्त-रङ्गी।
जहाँ ज्योति के सङ्ग बूँदें घनी हैं॥
कुसुम्भी, हरा, लाल, नीला, नरङ्गी।
कहीं पीत शोभा कहीं बैंगनी है॥४॥
कहीं ह्वेल से जीव हैं दृष्टि आते।
कहीं सूक्ष्म कीटादि की पंक्तियाँ हैं॥
उन्हें देख कर चित्त है चित्त खाते।
इन्हें देखने की नहीं शक्तियाँ हैं॥५॥
कहीं पर्वतों से नदी बह रही हैं।
कहीं वाटिका में बनी स्वच्छ नहरें॥
कहीं प्राकृतिक कीर्ति को कह रही है।
छटा शीश वारीश की बङ्क लहरें॥६॥
कहीं पेड़ की पत्तियाँ हिल रही है।
कहीं भूमि पर घास ही छा रही है॥
सुगन्धें कहीं वायु में मिल रही हैं।
कहीं सारिका प्रेम से गा रही हैं॥ ७॥
कहीं पर्वतों की छटा है निराली।
जहाँ वृक्ष के वृन्द छाये घने हैं॥

लगी एक से एक प्रत्येक डाली।
मनो पान्थ के हेतु तम्बू तने हैं॥ ८॥
कहीं दौड़ते झाड़ियों बीच हरने।
लिये मोद से शावकों को भगें हैं॥
कहीं भूधरों से झरैं रम्य झरने।
अहा! दृश्य कैसे अनूठे लगें हैं॥ ९॥

कहीं खेत के खेत लहरा रहे हैं।
महा मोद में हैं कृषीकार सारे।
उन्हें देख कर मूँछ फहरा रहे हैं।
सदा घूमते काँध पै लट्ठ धारे॥ १०॥

अनोखी कला सच्चिदानन्द की है।
उसी की सभी वस्तु में एक सत्ता॥
अहो कौमुदी यह उसी चन्द की है।
रचा है जिन्होंने लता पेड़ पत्ता॥ ११॥

जहाँ ध्यान देते है चारों दिशा में।
पड़ै दीख संसार नियमानुसारै॥
सदा चन्द आनन्ददाता निशा में।
सदा सूर्य अपना उजेला पसारै॥ १२॥

यथाकाल ही फूल भी फूलते हैं।
फलों से लदे वृक्ष त्यों सोहते हैं॥
नहीं कौन सौन्दर्य पर भूलते हैं।
नहीं कौन के चित्त यह मोहते हैं॥ १३॥

अचम्भा सभी वस्तु संसार की है।
वृथा दर्प विज्ञान भी ठानता है॥

जगन्नाथ ने सृष्टि विस्तार की है।
वही विश्व के मर्म को जानता है ॥ १४ ॥

वागीश्वर मिश्र ।

युवा संन्यासी ।

गुण-निधान सन्मान सुखी सब भाँति एक लवपुर-वासी
युवा अवस्था बीच विप्रकुलकेतु हुआ है संन्यासी
विविध रीति से उस विरक्त को सुहृद बन्धु समुझाय थके
गङ्गा जी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके ॥ १
वृद्ध पिता-माता की आशा बिन व्याही कन्या का भार
शिक्षा-हीन सुतों की ममता, पतिव्रता नारी का प्यार।
सन्मित्रो की प्रीति और कालिज वालों का निर्मल प्रेम
त्याग, एक अनुराग किया उसने बिराग में तज सब नेम ॥२॥
"प्राणनाथ ! बालक सुन दुहिता"—यों कहती प्यारी छोड़ी।
हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !! यों रोती महतारी छोड़ी ॥
चिर सहचरी "रियाजी" छोड़ी रम्यतटी रावी छोड़ी।
शिखा-सूत्र के साथ हाय ! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ॥ ३ ॥
धन्य पञ्चनद भूमि जहाँ इस बड़भागी ने जन्म लिया ।
धन्य जनक-जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया ॥
धन्य सती जिसका पति मरने से पहले हो जाय अमर।
धन्य धन्य संतान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर ॥ ४ ॥
शोकग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई बिदाई जब।
द्रवीभूत कैसे न होय मन ? संन्यासी हो भाई जब ॥
खिन्न, अश्रुयुत वृद्ध लगे कहने "मङ्गल तव मारग हो।
जीवन्मुक्ति सहाय ब्रह्म-विद्या में सत्वर पारग हो" ॥ ५ ॥
कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर कहा कि प्यारे ! सुन लेना।
बात अन्त को आज हमारी ज़रा ध्यान इस पर देना ॥

समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था।
इस कारण यह विद्या-बल में जग से न्यारा लगता था॥ ६॥
सर्व त्याग कर महाभाग जो देशोन्नति में दे जीवन।
धन्यवाद देते हैं देवगण भी उसको हो प्रमुदित मन॥
अपनी भाषा भेष भाव औ भोजन प्यारे भाइन को।
नहीं समझता उत्तम; समझो उससे भली कुशाइन को॥ ७॥
"एवमस्तु,, कर उच्चारन इन सब के उसने उत्तर में।
कहा "अलविदा,, और चला वह मन भावज उस औसर में॥
लगे वर्षने पुष्प और जय जय की तब हो लगी ध्वनी।
मानों भिक्षुक नहीं, वहाँ से चला विश्व का कोई धनी॥ ८॥
ज्यों नगरी में होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट।
त्यों बन पर्वत प्रकृति परिष्कृत हुये समझ मानों सम्राट॥
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से वारिद ने जल छिड़क दिया।
कड़क तड़ित ने दई सलामी आतपत्र वृक्ष ने किया॥ ९॥
विहङ्ग कुल ने निज कलरव से उसका स्वागत गान किया।
श्वापद शान्त हुये मृगगण ने दक्षिण में आस्थान किया॥
श्रेणीबद्ध फलित तरुओं ने उसको झुक कर किया प्रणाम।
पुष्पित लता और विरवों ने कुसुम बिछाये रात तमाम॥ १०॥
खड़ा हिमालय निज उन्नत मस्तक पर तत्पद धारन को।
हुई तरङ्गित सुरधुनि तब अभिषेक पुनीत करावन को॥
शिक्षा देती मानो सब को जननी-सदृश प्रकृति सारी॥
विषय-विरक्त ब्रह्म-चिंतन-रत नर के सब आज्ञाकारी॥ ११॥

माधवप्रसाद मिश्र।

रागिनी

हाय! न जीवन जन्म सुधारा कर्म किये दुखदाई रे।
न्हाया नहीं सुमति-सुरसरि में निशि दिन कुमति कमाई रे॥

काट दिया आनन्द कल्पतरु दुख की बेल बढ़ाई रे।
माना कभी न समझाने से हठधर्मी उर छाई रे॥
हाय गिरा गुण गौरव गिरि से नीच दशा मन भाई रे।
पाला पेट श्वान शूकर सम नेक न उन्नति पाई रे॥
जग का वास सराय न जाना अंधाधुंध मचाई रे।
रे कवि कर्ण भला क्या होगा कर पाया न भलाई रे ॥८॥

कर्णसिंह ।

विश्व-प्रेम ।

यह अपना है या नहीं, यह अति क्षुद्र विचार ।
है उदार जन के लिये, निज कुटुम्ब संसार ॥
किसी भग्न प्राचीर में, छिद्र एक प्राचीन ।
खिला पुष्प उस बीच है, नाम गोत्र से हीन ॥
दृष्टि-पात करता नहीं, उस पर लोक-समाज ।
सूर्य्य सुबह उठ पूछता, बन्धु कुशल है आज ?

पारसनाथ सिंह, बी० ए० ।

जहाँ तक हो सके नेकी करो ।

कहते हैं एक साल न बारिश हुई कहीं;
गर्मी से आफ़ताब की तपने लगी ज़मीं ।
था आसमान पर न कहीं अब्र का निशाँ;
पानी मिला न जब तो हुईं खुश्क खेतियाँ ।
लाले पड़े थे जान के हर जानदार को;
उजड़े चमन तरस से तरसते बहार को ।
मुँह तक रही थी खुश्क ज़मीं आसमान का;
उम्मेद साथ छोड़ चुकी थी किसान का ।

बारिश की कुछ उम्मीद न थी इस ग़रीब को;
यह हाल था कि जैसे कोई सोगवार हो।
इक दिन जो अपने खेत में आकर खड़ा हुआ;
पौदों का हाल देख के बेताब होगया।
हरबार आसमाँ की तरफ़ देखता था वह;
बारिश के इन्तज़ार में घबरा रहा था वह।
नागाह एक अब्र का टुकड़ा नज़र पड़ा;
लाती थी अपने साथ उड़ाकर जिसे हवा।
पानी की एक बूँद ने ताका इधर उधर;
बोली वह उस किसान की हालत को देख कर।
वीरान होगई है जो खेती ग़रीब की;
है आसमान पर नज़र उस बदनसीब की।
दिल में यह आरज़ू है कि इसका भला करूँ;
पानी बरस के खेत को इसके हरा करूँ।
बूँदों ने जब सुनी यह सहेली की गुफ़्तगू;
हँस कर दिया जवाब कि अल्ला रे आरज़ू!
तू एक ज़रा सी बूँद है इतना बड़ा यह खेत;
तेरे ज़रा से नम से न होगा हरा यह खेत।
तेरी बिसात क्या है कि इसको हरा करे;
हो खुद जो हेच क्या वह किसी से भला करे?
उस बूँद ने मगर यह बिगड़ कर दिया जवाब;
बोली वह बात जिसने किया सबको ला जवाब।
माना कि एक बूँद हूँ, दरिया नहीं हूँ मैं;
क़तरा ज़रा सा हूँ, कोई छींटा नहीं हूँ मैं।
माना कि मेरा नम कोई दरिया का नम नहीं;
हिम्मत तो मेरी बहर की हिम्मत से कम नहीं।

नेकी की राह में कभी हिम्मत न हारिये;
मक़दूर हो तो उम्र इसी में गुज़ारिये ।
कुरबान अपनी जान करूँगी किसान पर;
क्या लूँगी मैं ठहर के यहाँ आसमान पर ?
नेकी के काम से कभी रुकना न चाहिये;
इसमें किसी के साथ की परवा न चाहिये ॥
लो मैं चली यह कह के रवाना हुई वह बूँद;
बूँदों की अंजुमन में यगाना हुई वह बूँद ।
टप देसी उसके नाक पै यह बूँद गिर पड़ी;
सूखी हुई किसान के दिल की कली खिली ॥
देखा सहेलियों ने तो हैरान हो गईं;
हिम्मत के इस कमाल पै कीं सबने आफरीं ॥
बोलीं कि चाहिये न सहेली को छोड़ना;
अच्छा नहीं है मुहँ को रिफ़ाक़त से मोड़ना ।
साथी के साथ सबको बरसना ज़रूर है;
गर हम न साथ दें तो मुरौवत से दूर है ।
यह कह के एक साथ वह बूँदें रवाँ हुईं;
छींटा सा बन के खेत के ऊपर बरस गईं ॥
क़िस्मत खुली किसान की बिगड़ी हुई बनी;
सूखी हुई ग़रीब की खेती हरी हुई ।
फिर सामने नज़र के बँधा आस का समाँ;
थी आस आसपास गया पास का समाँ ।
उजड़ा हुआ जो खेत था आखिर हरा हुआ;
सारा यह एक बूँद की हिम्मत का काम था ॥
देखी गई न उससे मुसीबत किसान की;
बेताब हो के खेत पै उसके बरस गई ।

नन्हीं सी बूँद और यह हिम्मत खुदा की शान !
यह फैज़, यह करम, यह मुरौवत, खुदा की शान !

अज्ञात ।

पहेली !

सुनरी सहेली ! मेरी पहेली,
बाबल घर मे रही अलबेली ।
माता पिता ने लाड़ से पाला,
समझा मुझे बस घर का उजाला,
एक बहन थी एक बहनेली ॥ १ ॥
योंहीं बहुत दिन गुड़िया में खेली,
कभी अकेली कभी दुकेली ।
जिससे कहा चल तमाशा दिखला,
उसने उठा कर गोदी में ले ली ॥ २ ॥
कुछ कुछ मोहे समझ जो आई,
एक जा ठहरी मोरी सगाई ।
आवन लागे बाम्हन नाई,
कोई ले रुपया कोई ले धेली ॥ ३ ॥
व्याह का मेरे समाँ जब आया,
तेल चढ़ाया मढ़ा छवाया ।
साळू सूहा सभी पिन्हाया,
मेहदी से रँग दिये हाथ हथेली ॥ ४ ॥
सासरे के लोग आये जो मेरे,
ढोल दमामे बजे घनेरे ।
सुभ घड़ी सुभ दिन हुये जो फेरे,
सय्याँ ने मोहे हाथ में ले ली ॥ ५ ॥

आये बराती सब रस रंग के,
लोग कुटुंग के सब हँस हँस के ।
चावत थे यही घर से निकसे,
और के घर में जाय धकेली ॥ ६ ॥
ले के चली थी साथ जब अपने,
रोवन लागे फिर सब अपने ।
कहा कि तू नहिँ बस की अपने,
जा बच्ची ! तेरा दाता ही बेली ॥ ७ ॥
सखी ! पिया के साथ गई मैं,
ऐसे गई फिर वहीं रही मैं ।
किससे कहूँ दुख हाय दई ! मैं,
सय्याँ ने मोरी बाहैं गहेली ॥ ८ ॥
सास जो चाहे सोही सुनावे,
ननँद भी बैठी बातें बनावे ।
क्या है ! करूँ कुछ बन नहिँ आवे,
जैसी पड़ी मैं वैसी ही झेली ॥ ९ ॥
जिया बियाकुल रोवत अँखियाँ,
कहाँ गईं सब सँग की सखियाँ ।
शौक़ रंग गुड़ियाँ ताक पै रखियाँ,
न वो घर है ना वो हवेली ॥ १० ॥

बहादुर शाह "ज़फ़र" । (दिल्ली के अंतिम बादशाह)

दीवाना ।

मैं आया हूँ अपना दीवाना, कोई कुछ कह दो कोई कुछ कह दो ।
नादान हूँ या मैं हूँ दाना, कोई कुछ कह दो कोई कुछ कह दो ।
इस बात मे गुज़री ज़ात मेरी दिन रात में गई औक़ात मेरी,
यह चर्ख बना मैं काशाना, कोई कुछ० ।

मनसूर को सनवे यार मिला, शूली पै उसे दीदार मिला,
जाना तो अनलहक़ वो माना, कोई कुछ० ।
सर पाकर सौदा सर पै लिया, सर करके जहाँ फिर सर को दिया,
वह मर्द बना मैं नरदाना, कोई कुछ० ।
मैं होश में था वेहोश पड़ा, हुशयारी ने मुझको होश दिया,
वह मस्त बना मैं मस्ताना, कोई कुछ० ।
ग़ैरत ने तक़ाज़ा मुझसे किया, ग़ैरों से दिल को फेर दिया,
वह शमा बना मैं परवाना, कोई कुछ० ।
पत्थर सा कलेजा चाक किया, जौहर अपना दिखला ही दिया,
ख़ुद आप हुआ मैं वेगाना, कोई कुछ० ।

शम्भुदेव पांडेय, भजनानन्दी ।

विचारशील प्राणी ।

[१]

जग में किसका प्रताप छाया है
जिसने मस्तक सदा नवाया है ।
द्वेष ईर्षा कभी नहीं आई
जीत जिसने घमंड पर पाई ॥

[२]

दुःख में भी जो शान्तियुक्त रहा
जिसने सङ्कट मे भी न झूठ कहा ।
गाली सुन कर जो मौन रहते हैं
कष्ट पाकर भी कुछ न कहते हैं ॥

[३]

जिनको प्राणी जगत के प्यारे हैं
और दयापात्र हैं दुलारे हैं ।

जो समय पर सहायता देते
किन्तु बदले में कुछ नहीं लेते ॥

[४]

जो न थकते हैं काम करते हैं
धर्म पथ पर सदा विचरते हैं ।
अपने माता पिता के अनुचर हैं
प्राण अधार सुख सरोवर हैं ॥

[५]

पाप करते न तन मन वचन से
शुद्ध रहते शरीर चेतन से ।
लोभवश हो नहीं कुमार्ग लिया
पाप भाया न कुछ कुकर्म किया ॥

[६]

जो उचित है उसी को करते हैं
उसके विघ्नों से न कुछ डरते हैं ।
मरते मरते भी सच का दम भरते हैं
काल से भी कभी नहीं डरते हैं ॥

[७]

जिनका जीवन पवित्र तारा है
भूले भटकों का एक सहारा है ।
प्रेम करते सब के प्यारे हैं
डर किसी का न डर के मारे हैं ॥

[८]

नम्र कोमल हैं और जो ज्ञानी
अपने मर्य्याद के न अभिमानी ।

भक्ति ईश्वर की जिसे करते हैं
उसके नियमों प जो विचरते हैं ॥

[६]

जो कि सच्चे हैं और उद्योगी
काम करते हैं सत्य उपयोगी ।
उनका जग में प्रताप है छाया
है पताका उन्हीं का फहराया ॥

कृष्ण जी सहाय ।

सरगौ नरक ठेकाना नाहिं ।

[१]

देवी शारदा तुमका सँवरौं मनियाँ देव महोबे क्यार ।
तुमही रक्षक हौ सब जग के बेड़ा खेइ लगावो पार ॥
आपन कथा सुनावों तुमका सुनियो ज्वानौ कान लगाय ।
जब सुधि आवै उन बातन कै जियरा कलपि कलपि रहि जाय ॥

[२]

सात पुस्ति ते पुरिखा हमरे बसे गाउँ में घर बनवाय ।
झिंगुरन के पुरवा में आजौ ठाढ़ि हमारी मड़ैया आय ॥
पैदा हुवे भैन हम भैया ख्याला खावा नित उठि रोज ।
दिन दिन भरि हम घेरन आयन वापन पावा रंचौ खोज ॥

[३]

सूँड़ कै धरती बहुत उठावा तब भै दादा के मन ऊब ।
हाथ पकरि घसिलायन हमका कीन्हेन्हि लाल कनगुदी खूब ॥
रहे पढ़ावत लरिका याके लाला नाऊँ मदारी लाल ।
हुवें गैन बैठायन हमका अब आगे को सुनौ हवाल ॥

[४]

एका एकु पढ़ै हम लागेन परै लागि जिन हम पै मारु।
छिन छिन मैं हाँ लाला जौ के कलुआ आपन हाथु निकारु॥
छड़ी तड़ातड़ हम पर बरसै लागी निन कम से कम बीस।
अटई डेडा तहू न छाँड़ा भैया अस हम रहे न खबीस॥

[५]

ज्यों त्यों कै हम पढ़ा मोहल्ला फिरि खरोदि औ बेंचु बियाजु।
पिच सित तरकुन मंत्र पढ़ायनि लाला रोजु ढोवायनि नाजु॥
फिरि हम गये न भंभर खेरे मच्छू मियाँ मोलवी पास।
लागे पढ़न अलिब्बे हौवा धरम करमु भा सत्यानाश॥

[६]

परेन पेंच में जेर जबर के हालि हालि लागेन अभुवाय।
घर माँ जानैं पढ़ी पारसी चिलमैं भरन दिनौंना जाय॥
पढ़ा करीमा अहमद नामा खालिक बारी बारा दाँय।
दस्तूरुस्सुबियाँ पढ़ि डारा जिनके पढ़े पितर तरि जाँय॥

[७]

यहू के आगे और बढ़ेन हम पढ़ी किनाबौं हम छा सात।
मनु तौ रहे अरब माँ अरबी पढ़ी जाय पै बड़े कै बात॥
घर माँ कहै लाग सब कोऊ कल्लू बन्द करहु यह खेलु।
बहुत पारसी जो तुम पढ़िहौ तुम्हैं परी ब्याँचै का तेलु॥

[८]

भैंसि भवानी कै तब सेवा लागे करन पढ़ब गा छूटि।
बटुवन दूध दुहा इन हाथन धार न कबहुँ दुहन माँ टूट॥
मोटरिन कटिया भथुरा सानी कीन रोज हम बाँह चढ़ाय।
मस्त भयन तब आल्हा गावा उपर दुहत्था हाथु उठाय॥

[६]

होत वनियई आई हमरे को अब तुमते झूठ बनाय।
हमहू घिउ बरसन वर्गाचा है छोटी बड़ी बजारन जाय॥
हियाँ की बातें हियईं रहिगे अब आगे का सुनौ हवाल।
गाउँ छाड़ि हम सहर सिधारेन लागेन लिखै चुटकुला ख्याल॥

[१०]

अचकुन पहिरि बूट हम डाटा बाबू बनेन डेरात डेरात।
लागेन आवै जाय सभन माँ कण्ठु फूट तब बना बतात॥
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ रहा गाउँ के रस का अंसु।
तबतक हम अखबार किताबै लिखि लिखि कीन उजागर बंसु॥

[११]

जहाँ गाउँ का खूनु खतम भा तहाँ फूटिगै भागि हमारि।
अक्किल साथु छाँड़ि गै हमका दुर्गति कहते कहत पुकारि॥
कुंभीपाक नरक असि लाखन जाजरूर जहँ परे गँधायं।
गटरन ते मुँह पोलि परी है सर्ड़ चलत फिरत धँसि जाय॥

[१२]

आठो पहर भभामभ निकरै धुवाँ जहाँ अटाप उड़ाय।
कौनी ननो बनाओं तुम का अक्किल रहै लहुल्वा भाय॥
ऐसे बुरे सहर माँ रहिके पाकि उठा नब मगज हमार।
नीक नकारा हमैं न सूझै मुँह हौगा भुजवा का भार॥

[१३]

जिनका नमक मुड़ित खावा नाम्नि डुबा खोवा भाय।
कलम कुद्दारी लै उनही की जरै बगारन लागेन जाय॥
जिन बभनन का पुरिखन पूजा हमहूं जिनके उतारा नाय।
हमरिन नारिन के फूलन ते उनहिन के भे बोझिल माथ॥

[१४]

घेरे रहैं गाउँ वाले जो मदनि देइँ औ राखैं प्रीति ।
उनहिन का हम उठि गरियाई असि हमारि भइ उलटी रीति ॥
अपने करमन कै सुधि आये हियरा टूक टूक ह्वै जाय ।
धरती माता जो तुम फाटौ मैं मुँह के बल जाऊँ समाय ॥

[१५]

गुन जसु मानबु कौन चोज है ग्यो हम अपन्यो जानिन नाँहि ।
अस किरतघ्न और जो हूँढ़ै मिली न सान बिलाइत माँहि ॥
जो हमार संगी साथी हैं सुख दुख माँ जे सदा सहाँय ।
उनहुन का अपमान करी हम बीच बजार बैठि गोहराय ॥

[१६]

घिन लागै अपने मनइन ते उनका पास न आवै ध्यान ।
जो कोउ भूलि गाँउ ते आवै वहिका आड़े हाँथन ल्यान ॥
कोऊ न जानै की इनके हैं भ्वासरि भई बन्द नक्कास ।
यहि ते काम परे पर हमहीं घर कै दौरो दुइसै कास ॥

[१७]

अपने मतलब का हम जिनकी चेरिया बिनती करी हजारु ।
उनहिन के पीछे परि जाई च्राहै हँसे सकल संसारु ॥
पढ़ा गुना हम कुछौ नहीं ना जो कुछ सिखा राम का नाउँ ।
तहू बिरस्पति जो कुछ ब्वालैं वहिमाँ दौरि घुसारी पाउँ ॥

[१८]

हमरी नस नस बीच बियावै इरखा और लोभ महराज ।
उनहिन की दीन्हीं खाइत है रोटी छाड़ि लोक के लाज ॥
जहि का चढ़ी चढ़ाई ऊपर जहि का च्रही गिराई कीच ।
हाय हाय अस हमैं बेगारा सहरु ससुर यहु है अस नीच ॥

[१६]

साफ़ कहित है हम पेसेन का सरगौ नरक ठेकाना नाँहि ।
बूड़ि मरी जो हम गङ्गा माँ तौ हत्या लागै हम काहि ॥
हे भगवान उबारौ हमका दीन दयाल धर्म्म के नाथ ।
तुम्हरे पायन माँ हम आपन पटकन हैं यह फुटहा माथ ॥

[२०]

जो हम जनतेन अस गति होई तौ हम हाय न छँडतेन गाँउँ ।
भूँखे चाहै मरित न लेइत भूलिउ कबौ सहर का नाँऊँ ॥
देखि हमारि हाल जो काऊ फिरिऊ सहर के आई पास ।
तनिकौ चलन कही हम होई वहिका सब बिधि सत्यानास ॥

कल्लू अल्हइत ।

हे भारत ।

[१]

हे भारत बिरच्यो विधि तोंको
जग मे सुन्दर रतन महान ।
वा कहिये यो तोहि बनायो
फल इक मीठो सुधा समान ॥

[२]

देस देस के नृप बिलोकि तोहिं
मुँह के बल दौरत तव ओर ।
तनिक न तन की सुधि वे राखैं
कष्ट सहै ये यद्यपि घोर ॥

[३]

लूट पाट करि करि मन मानी
लाय लाय दल लाख करोर ।

तेरे मस्तक पै थहरावैं
निर्दयता सों नातो जोर ॥
[४]
ग्रीस देस से दौरत आयो
विजई वीर सिकन्दर साह ।
पाञ्चाल में पोरस नृप ने
तासो युद्ध कियो सोत्साह ॥
[५]
पार पञ्चनद करि अपार दल
लयो बढ़ो वह आगे धाय ।
पहुँचो सुर-सरिता के तट पर
जहाँ धान्य धन सदा सुहाय ॥
[६]
इहाँ महान वीर बलसाली
महानन्द नृप मगध नरेस ।
पालत रहो बिपुल सेना सह
अपनो अति उपजाऊ देस ॥
[७]
सुनी सिकन्दर ने जब वाके
बल की बातें वह बल वीर
लौटि चल्यो हिय में शङ्कित ह्वै
बाबुल पहुँचत तज्यो शरीर
[८]
अति दुर्मद उत्तर पश्चिम के
मुसल्मान योधा रणधीर ।

चले तोहिं हति भारत लूटन
लीन्हें साथ हज़ारन बीर ॥

[९]

जैसे बाज लवा पर झपटत
वैसे सिन्धु नदी के तीर ।
गिरे वज्र सम हिन्दु वृन्द पै
उपजाई अति दुस्तर पीर ॥

[१०]

रहा एक महमूद गज़नवी
अति निष्ठुर धर्म्मान्ध विशेष ।
आरजगन के मन्दिर जीते
ब्रह्मा विष्णु महेश गनेश ॥

[११]

तिनको फोरि तोरि अच्छी विधि
अजस रासि सिर ऊपर लीन ।
हे भारत सोऊ तुमने सब
सहो हुए अतिशय श्रीहीन ॥

[१२]

ग़ोर देश ते गोरी धाये
दल बल लै अपने आधीन ।
सीधे साधे आरज राजन
सो नित नूतन विग्रह कीन ॥

[१३]

पृथ्वीराज महीपति भारत
तोरो मस्तक मुकुट सरूप ।

छल सों ताहि पराजित करिके
अपनायो यह भूमि अनूप ॥

[१४]

तब से घाव हुए तेरे तन
सत्य कहहिं हम हे भारत ।
आये अब अँगरेज़ वैद्यसम
जिनमें तू तन मन से रत ॥

श्रीरामरणविजय सिंह ॥

अन्योक्ति ।

अरे मलिन्द मन ! तू किस रङ्ग मे रँगा है !
संसार-घोर बन में, दुख दैन्य के भवन में,
मकरन्द-मोद ढूँढ़े, हा मोह ने ठगा है ।
सुख शान्ति को स्वजन में, ज्यों फूल को गगन में,
पाने को हर समय तू उद्योग में लगा है ॥
ये मालती, चमेली, आपत्ति की सहेली,
सर्वस्व दे उन्हें तू नवनेह में पगा है ॥
जो कल कली खिली थीं, आमोद से मिली थीं ।
वे अब नहीं दिखातीं, फिर भी न तू जगा है ॥
जिस फूल पर निछावर, करता है प्राण भी वर,
हा मूढ़ वह सदा ही देता तुझे दगा है ।
बहु वेदना सही हैं, जानी न जो कही हैं,
मिथ्या सुरस का लोभी अब भी न हा ! भगा है ॥
कुञ्जन निकुञ्ज आवे, प्रभु-प्रेम-गीत गावे,
बाला हरी चरण बिन कोई नहीं सगा है ॥

श्रीमती सत्यबाला देवी ।

सुमन।

जब उदयाचल पर ऊषा ने प्रकटित अपना किया स्वरूप,
तब तुमने था मन्द हास से बिकसित किया अनूपम रूप।
मधुप माँगने मधु आया था लता हुई थी गौरववान,
तुम से सुरभित होने को था बार बार आया पवमान।
बने शीघ्र तुम बन के गौरव प्रातः सुषमा के आधार,
कीं मन में ऊँची आशायें बन वदान्यता के आगार।
किन्तु कहो तब किसके मन में हो सकता था यह विश्वास,
सङ्ग हास के हास लगेगा, यों विकाश के साथ बिनाश।
रजनी के तम में पड़ कर तुम जब खो बैठे निज सर्वस्व,
तब आशाओं को विनष्ट कर गया तुम्हारा वह वर्चस्व।
अलि ने तुमसे निज मुख मोड़ा लतिका लज्जित हुई विशेष,
किया पवन ने तुम्हें गिरा कर धरा-धूलि से धूसर वेष।

बलदेव प्रसाद मिश्र।

स्वप्न।

बालक के कम्पित अधरों पर वह किस अक्षय स्मृति का हास,
जग की इस अविरत निद्रा का आज कर रहा है उपहास?
उस स्वप्नों की शुचि-सरिता का सजनि! कहाँ है जन्म-स्थान?
मुसक्यानों में उछल उछल वह बहती है किस ओर अजान?
किन कर्मो की जीवित छाया उस निद्रित विस्मृति के सङ्ग,
आँख मिचौनी खेल रही है? यह किस अभिनय का है ढङ्ग,
मुँदे नयन पलकों के भीतर किस रहस्य का सुख-मय चित्र,
गुप्त वञ्चना के मादक कर खींच रहे हैं सजनि! विचित्र।
निद्रा के उस अलसित वन में वह क्या भावी की छाया,
दृग-सम्मुख मृदु विचर रही है? अहा! मनोहर यह माया!

मृदुल मुकुल में छिपा हुआ जो रहता है छविमय संसार,
सजनि! कभी क्या सोचा तूने वह किसका है शयनागार?
प्रथम स्वप्न उसमें जीवन का रहता है अविकच, अज्ञान,
जिसे न चिन्ता छू पाती है, जो है केवल अस्फुट ज्ञान।
दिनकर की अन्तिम किरणों ने उस नीरव तरु के ऊपर,
स्वप्नों का जो स्वर्ण सदन है निर्माया सुखमय, सुन्दर।
विहँग बालिका वा हम दोनों वहाँ बैठ कर सखि! एकान्त,
स्वप्नों पर सोचें कुछ मिल कर दूर करें निज भ्रान्ति नितान्त।
सजनि! हमारा स्वप्न सदन क्यों काँप उठा है यह थर थर,
किस अतीत के स्वप्न-अनिल में गूँज उठा है वह मर मर।
विरस डालियों से यह कैसा फूट रहा है रुदन मलिन,
हम भी हरी भरी थीं पहिले पर अब स्वप्न हुये वे दिन।
पत्रों के विस्मित अधरों से यह किसका नीरस सङ्गीत,
मौन-निमन्त्रण देता है यह अन्धकार को सजनि! सभीत।
सघन द्रुमों के भीतर अब वह निद्रा का नीरव निःश्वास,
अन्धकार में मूँद रहा है, अपने अलसित नयन उदास।
सखि सोते के स्वप्न जगत के इसी तिमिर में बहते हैं,
पर जागृति के स्वप्न हमारे अन्तर ही में रहते हैं।
अहा! परम घन अन्धकार में डूब रहा है अब संसार!
कौन जानता है, कब इसके छूटेंगे ये स्वप्न अपार?
सखि! क्या कहती है—प्राची से फिर उज्ज्वल होगा आकाश?
उषा स्वप्न क्या भूल गई तू? क्या उसमें है प्रकृति-प्रकाश?

सुमित्रा नन्दन पन्त।

वह छवि।

ढूँढूँ तुम को कहाँ बताते क्यों नहीं।
पाऊँ कैसे तुम्हें सिखाते क्यों नहीं ॥१॥

क्षणिक छटा को दिखा; फिरे छिपते कहाँ ।
क्यों प्रकटित नहिं होते, हो रहते कहाँ ॥२॥
कभी लता-सौन्दर्य्य बीच में ही मिलो ।
कभी कुसुम की नई कली में हीं खिलो ॥३॥
पक्षी-गण के मधुर मनोहर गान में ।
पाते तुम को कभी कभी उद्यान में ॥४॥
युवकों के उत्साह उदार उमङ्ग में ।
तथा मनोरम रूप सुकोमल अङ्ग में ॥५॥
नेताओ की शक्ति, भक्त की भक्ति में ।
निज उपासकों में, अनुचर-अनुरक्ति में ॥६॥
रमणी-गण की मन्द मन्द मुसुकान में ।
अथवा संयत योगिराज के ध्यान में ॥७॥
जननी के वात्सल्य, पिता के प्यार में ।
कभी अकारण किये गये उपकार में ॥८॥
योद्धाओ के शौर्य्य, सन्त की शान्ति में ।
किसी प्रतापी के आनन की कान्ति में ॥९॥
सूर्य्य चन्द्र के प्रकटित विमल विकाश है ।
तुम से ही रञ्जित सारा आकाश है ॥१०॥
इस रहस्य को थोड़ा थोड़ा जान कर ।
नहिं होता सन्तोष तुम्हें अनुमान कर ॥११॥
जिसके दर्शन किये तोष भरपूर हो ।
क्षुद्र हृदय का संशय क्षण में दूर हो ॥१२॥
वह छवि दो दिखला मिट जायें भ्रम सभी ।
खुले हमारे नेत्र न फिर ललकें कभी ॥१३॥

रामचन्द्र शुक्ल, बी० ए०

परिणाम।

जीवन की ज्वाला से मेरा यह क्षुद्र हृदय-सर सूख गया,
मैं हुआ विकल, सोचा, क्या प्रभु की होगी मुझ पर नहीं दया!
जब सब पर करुणा-वृष्टि हुई तब मुझ पर भी लघु बूँद पड़ी।
गिरते ही वह झट लुप्त हुई तब मुझे हुई वेदना बड़ी॥
मैंने देखा, जग में बहता था मलिन प्रेम का कुत्सित जल।
मैं करता क्या? उससे ही अपने किया गात्र को कुछ शीतल॥
कुछ दिन तक तो निर्भय होकर उसमें ही खूब बिलास किया।
जब ग्लानि हुई, कुछ खेद हुआ, तब उसे हृदय में छिपा लिया॥
होगया शुद्ध तनु; हृदय पङ्क-मय बना हुआ ही है अब तक।
मैं सोच रहा हूँ, कमलों का होगा विकाश उसमें कब तक॥

पदुमलाल पुन्नालाल जी बख्शी, बी० ए०

पेट-स्तोत्र।

नमामि पेटं नमामि पेटं पेटं परमाराध्य प्रभो!
पाँडे पानी-पाँडे बनते। चौबे जी चपरास पहनते॥
हेतु तुम्हारे, शुक्ल भिखारी। अद्भुत महिमा बड़ी तुम्हारी
नमामि पेटं नमामि पेटं पेटं परमाराध्य प्रभो!
द्वारपाल हैं बने द्विवेदी। तेल बेंचते बैठ त्रिवेदी॥
बने मिश्र जी जमादार हैं। गावें कैसे गुण अपार हैं।
खिड़ी बनाते हैं साइं जी। बड़ी बेचती हैं बाई जी॥
पाठक बेचें धोती-जोड़ा। जो कुछ आप करें सो थोड़ा॥
तज हथियार तराजू धारी। क्षत्री बन बैठे पंसारी॥
त्याग बेचना जीरा-धनियाँ। बने कान्स्टेबिल हैं बनियाँ॥
दुखदाई चपेट तव खा के। भस्म रमाके जटा बढ़ाके॥

कई शूद्र दुर्व्यसनी पाजी। बन बैठे जग में बाबा जी
पृथ्वी भर के सकल जीवगण। साहब, बाबू, सेठ, महाजन।
लगा रंक से महाराज तक। सभी आपके हैं आराधक।
सिरमें टोपी तन में कुरता। भले ही न हो पग में जूता।
आप भरे हैं तो क्या कहना। बहता सदा शान्तिका झरना।
तव चिन्ता निज मन में धारे। भूख प्यास की दशा बिसारे।
प्रतिदिन प्रतिक्षण हेतु तुम्हारे। फिरते हैं सब मारे मारे।
किसी को परधर्मी बनवाया। किसीको लन्दनतक पहुँचाया
किसी को बाघंबर पहिनाया। सब को तुमने नाच नचाया।
लिये तुम्हारे लोग झगड़ते। पैर पकड़ते नाक रगड़ते।
ऐंठ छोड़ते हाथ जोड़ते। आँख फोड़ते पैर तोड़ते॥
ज्ञान तभी तक ध्यान तभी तक। ईश्वर का गुणगानतभीतक॥
रहते भरे आप हैं जब तक। खाली में है कोरी बक बक॥
स्थिति अनुसार भक्त गण अर्पित। लेह्य,चोष्य,पेयादिक चर्वित।
नित नैवेद्य ग्रहण करते हो। तो भी खाँव खाँव करते हो॥
घर में कोई भी मर जावे। रोना-धोना भी मच जावे॥
तो भी होती है तव पूजा। कौन समर्थ आप सा दूजा॥
प्रातः काल नींद खुलती जब। मनोवृत्ति जागृत होती तब॥
याद आपकी ही आ जाती। शीघ्र दृष्टि हुण्डी पर जाती॥
जन्म काल से जीवन भर तक। उषःकाल से अर्द्ध राति तक॥
लेकर मन में विविधि वासना। करते सब तव नित उपासना॥
करै न जो नित तव आराधन। महा मूर्ख पापी वह दुर्जन॥
शीघ्र अवज्ञा फल पाता है। कुछ दिन ही में मर जाता है॥
जग में तव ऐसी है महिमा। ऐसे हैं प्रताप, गुण गरिमा॥
बड़ को पीपल कहना पड़ता। साले को,प्रभु कहना पड़ता॥
कई आप हित ऐसे मरते। चमरों को सलाम नित करते॥

कई पीटते यश की भेरी। करते नीच द्वार में फेरी॥
तुम्हीं दुखों से भेंट कराते। तुम्हीं अनेक चपेट खिलाते॥
जड़ लेखनी कहाँ तक गावे। जग जीवों की कौन चलावे॥
यक्ष, रक्ष, सिद्धादिक किन्नर। सुर तक भी रखते हैं तव डर॥
मैं ने स्तुति की है तव ऐसी। होगी न की किसी ने जैसी॥
बस बरदान यही मैं पाऊँ। तेरा दुःख कभी न उठाऊँ॥

शुकबाण प्रसाद पांडेय।

बिरहा

[१]

आज बरसाइत रगरवा मचावो जिन नहकै झगरवा उठाय।
अपनो ही बरवा मैं पूजौ बलबिरवा पीपरवा पूजन तूही जाय॥

[२]

आधी जग भुइयाँ, आधी नद्दी ताल कुइयाँ, आधा मरद,
से बुढ़वा बेराम।
ससुर भसुर छोड़ बचलैं केतने मोहैं नहकैं कर लैं बदनाम॥

[३]

फुलिहैं अनरवा सेमर कचनरवा पलसवा गुलववा अनन्त।
बिरहा का बिरवा लगायो बलबिरवासोफुलिहैजोआयोहैबसन्त॥

[४]

रजवा करत मोर रजवा मथुरवा में हम सब भइलीं फकीर।
हमरी पिरितिया निबाहैकैसेऊधो, बलबिरवाकी जतिया अहीर॥

[५]

मोहे अपनी करनियाँ समुझके सजनियाँरी उठला करेजवामेंहाय।
बिनबतियैकोहानीगाेड़परल्योनमानी, बलबिरवातगयलरिसाय॥

[६]

मुखवा निहारै तन मन तो पै वारै गोरी आठौ छन रहला हजूर।
अपने हाथन तो बरवा सँवारै वलविरवा तो भयल वा मजूर॥

[७]

दुखवाकवतिया नगीचवौनआवैगुइयाँहँसी खुसी रहला हमेस।
बजुवा सरकि कर-कँगना भयल सुनि प्यारे क गवनवा विदेस॥

[८]

तोहरा दुलहवा जगत का उलहवा सलहवा सुनत नाहीं एक।
तो बिनसुनरियानभावैकोऊतिरियाहौकैलेसानोकिरिया क टेक॥

रामकृष्ण वर्मा, उपनाम बलबीर
जन्म सं० १९१६, मृत्यु सं० १९६३।

बम्बई का समुद्र-तट
(सायङ्कालिक दृश्य)

सायङ्काल हवा समुद्र तट की नैरोग्यकारी महा,
प्रायः शिक्षित सभ्य लोग नित ही आते इसी से वहाँ।
बैठे हास्य-विनोद-मोद करते सानन्द वे दो घड़ी,
सो शोभा उस दृश्य की हृदय को है तृप्ति देती बड़ी॥ १॥
सन्ध्या को गिरती दिनेश-कर की नोकें ललाई सनी,
होती है तब दिव्य वारिनिधि की शोभा मनोमोहिनी।
नीचे से जब बार बार उठती ऊँची तरङ्गावली,
आती है बढ़ के सुदूर फिर भी जाती वहाँ ही चली॥ २॥
छोटे और बड़े जहाज़ जल मे देखो वहाँ वे खड़े,
सो भी दृश्य विचित्र, किन्तु हमको वे हानिकारी बड़े।
ले जाते वर-वस्तु देश भर की जानें कहाँ की कहाँ,
लाते केवल ऊपरी चटक की चीज़ें विदेशी यहाँ॥ ३॥

है उद्यान महा-मनोहर जहाँ विख्यात वृक्षावली,
फूली है कुसुमावली नव-नवा सौरभ्य आती चली।
बैठो स्वागत सी जहाँ कर रही प्यारी विहङ्गावली,
चित्ताकर्षक खूब वारिनिधि की आनन्ददायी स्थली॥ ४॥
आते हैं दिन के थके जन सदा सन्ध्या हुये पै यहीं,
प्यारी मन्द सुगन्ध-शीतल हवा अन्यत्र पाते नहीं।
दे के स्पर्श समीर खूब करती आतिथ्य सेवा, तथा—
खोती है श्रम सर्व और उनकी सारी मिटाती व्यथा॥ ५॥
मेमें मञ्जुल पारसीक नवला नारी दिखाती अदा,
आती हैं सब सभ्य भव्य महिला प्रायः सदा सर्वदा
वे स्वाधीन सभी, समाज निज से स्वातन्त्र्य पाई हुई,
आतीं जो मरु-वासिनी वह कथा है सर्वथा ही नई॥ ६॥

सुभग-सदन-पंक्ति प्रान्त में हैं दिखाती,
घर घर सुखमा की वाटिका है बढ़ाती।
विकसित कुसुमाली खूब सर्वत्र छाई,
सुरुचिर हरियाली मालियों की लगाई॥ ७॥

मदकल-मतवाली जो वहाँ कामिनी हैं,
अनुपम-छविवाली रूप-शाली बड़ी हैं।
दृग-पथ करने से चित्त आता यही है,
सुर-पुर-वनिता ही क्या यहाँ आ गई हैं?॥ ८॥

शोभा समुद्र तट की अवलोकनीय,
पाता प्रमोद मन देख उसे मदीय।
यथार्थ वर्णन न हो सकता तदीय,
है दृश्य केवल अहो! वह दर्शनीय॥ ९॥

कन्हैयालाल पोद्दार।

प्रेम-पथिक ।

बहै धीरी धीरी जहँ पवन सीरी उमँग की ।
लता लूमै झूमै प्रिय सुरति घूमै मद-छकी ॥
मिलैगो उत्साहो पुर तहँ तुम्हें आनँदकरी ।
चले जैयो पंथी यह मग धरे प्रीतम-पुरी ॥
मिलै उत्कण्ठा को उपवन न काको मन रमै ।
घनी छाया लीजौ नहिं विलम कीजौ तिहि समै ॥
कटाक्षों से लज्जा-तिय जब बुलावे मद भरी ।
चले जैयो पंथी नहिं तहँ बितैयो इक घरी ॥

हरिप्रसाद द्विवेदी ।

मौर्य-विजय से ।

जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे,
शौर्य्य वीर्य्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे ।
रोम, मिश्र चीनादि काँपते रहते सारे,
यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे ।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय,
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥१॥
साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे है ।
शत्रु हमारे कहाँ नहीं भय से भागे हैं
कायरता से कहाँ प्राण हमने त्यागे हैं ।
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके सुरपति तक का भी हृदय,
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥२॥
कहाँ प्रकाशित नहीं रहा है तेज हमारा,
दलित कर चुके सभी शत्रु हम पैरों द्वारा ।

बतलाओ वह कौन नहीं जो हमसे हारा
पर शरणागत हुआ कहाँ कब हमें न प्यारा।
बस, युद्धमात्र को छोड़ कर कहाँ नहीं हैं हम सदय?
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥
कारणवश जब हमें क्रोध कुछ हो आता है
अवनि और आकाश प्रकम्पित हो जाता है।
यही हाथ वह कठिन कार्य्य कर दिखलाता है—
स्वयं शौर्य्य भी जिसे देख कर सकुचाता है।
हम धीर वीर गम्भीर हैं है हमको कब कौन भय
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥

सियारामशरण गुप्त।

विनय।

[१]

हे नन्दनन्दन कृपाल केशव सुनो दयामय विनय हमारी!
है मोह ममता मे उन्मथित मन सुखी करो, शान्ति दो मुरारी!!
अनेक भक्तों के दुख हैं मेटे अनन्त लीला विकास करके।
हमारा संशय बिना निबेटे न चैन पावोगे चक्रधारी!!
उसी दया का विकाश करिए हमारा भ्रमजाल नाथ हरिए।
न दीन का पाप देख डरिये हरैगा फिर कौन भीर भारी॥
अनेक व्याघात द्वन्द्व विग्रह जगत के जंजाल सह रहा हूँ।
धरे हूँ विश्वास दृढ़ तुम्हारा कि हमको तारोगे अबकी बारी॥

[२]

फ़नाए बाग़ आलम मे वफ़ा गुल खुशबूए तुम हो।
तुम्ही हो हौसला उम्मीद हमारी जीस्तजाँ तुम हो॥

तुम्ही हो नूर दुनियावी, तुम्हीं से है तसल्ली दिल।
तुम्ही दौलत तुम्ही हशमत, मेरे दिल में निहाँ तुम हो॥
जिगर हो, जान हो, रूहो, क़लब हो, दीनों ईमाँ हो।
हमारी ज़िन्दगी तुम हो, 'नहीं हम' जो नहीं तुम हो॥
जहाँ में अलग़रज़ हरसू, तुम्हीं को देखते हैं हम।
मिटा दो फ़र्क़ 'हम तुम का' हमारी आरज़ू तुम हो॥
तुम्ही हो ज्ञान, इल्मोध्यान, मेरा धर्म श्रम पौरुष।
तुम्ही घनश्याम औ श्रीराम, राधा जानकी तुम हो॥
तुम्ही हो अक़्लेकुल मालिक, दिले आराम औ जन्नत।
तुम्ही हो राम, नारायण, हमारे प्रान-धन तुम हो॥
तुम्ही तुम हो, तुम्ही तुमहो, हमारे वास्ते तुम हो।
नहीं हम, सब कहीं तुमहो, तुमारे हम हमें तुम हो॥

रामनारायण चतुर्वेदी बी० ए०, श्रीमती रानी धनदेई कुँवरि, जौनपुर के चीफ़ सेक्रेटरी, जन्म संवत् १९३९, फाल्गुन कृष्ण ११।

॥ समाप्त ॥

हिन्दी-रत्नमाला

१—कविता-कौमुदी

पहला भाग-हिन्दी

इसमें हिन्दी के निम्नलिखित कवियों की जीवनियाँ और उनकी चुनी हुई कवितायें संगृहीत है :—

चन्दवरदायी, विद्यापति ठाकुर, कबीर साहब, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, सूरदास, हितहरिवंश, नरहरि, स्वामी हरिदास, नन्ददास, तुलसीदास, मीराबाई, मलिक मुहम्मद जायसी, टोडरमल, बीरवल, गंग, अकबर, दादूदयाल, नरोत्तमदास, बलभद्र मिश्र, रहीम, केशवदास, रसखान, पृथ्वीराज और चम्पादे, उसमान, मुबारक, हरिनाथ, प्रवीणराय, मलूकदास, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति मिश्र, जसवन्तसिंह, बनवारी, बेनी, गोपालचन्द्र मिश्र, सबलसिंह चौहान, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख, लाल, गुरुगोविन्दसिंह, धन आनन्द, देव, बैताल, उदयनाथ, नेवाज, श्रीपति, वृन्द, रसलीन, घाघ, नागरीदास और बनीठनीजी, दास, रसनिधि, तोष, सूदन, रघुनाथ, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, गुमान मिश्र, गिरिधर कविराय, सुखदेव मिश्र, दूलह, सीतल, ब्रजवासीदास, ठाकुर, प्रहलाद दुबे, बोधा, पद्माकर, लल्लूजी लाल, जयसिंह, रामसहायदास, ग्वाल, दीनदयालगिरि,

विश्वनाथसिंह, राय ईश्वरीप्रताप, बाबू रेवाराम पंडित, पजनेस, रणधीरसिंह, शिवसिंह सेंगर, रघुराजसिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरिधरदास, लछिराम, गोविन्द गिल्ला भाई।

पुस्तक सुन्दर कपड़े की जिल्ददार और सुनहरे अक्षरों से अलंकृत है। पृष्ठ-संख्या ५१६, कागज बढ़िया, छपाई सफ़ाई ऊँचे दरजे की। दाम ढ़ाई रुपया।

२—कुल-लक्ष्मी

स्त्रियों के लिये हिन्दी में यह बड़े ही काम की पुस्तक है। इसमें स्त्रियों के गुण—सौन्दर्य की सृष्टि, लज्जा, अतिथि सेवा, देवसेवा, सेवा शुश्रूषा, सतीत्व, स्त्रियों के दोष—आलस्य, विलासिता, स्वेच्छाचारिता, अव्यवस्था, कलह, दूसरे की निन्दा और ईर्षाद्वेष, अभिमान और अहंकार, स्वास्थ्य से लापरवाही, हास परिहास और व्यर्थ वार्तालाप, असहनशीलता, अपव्यय, अन्यान्य आत्मीयों के प्रति स्त्री का कर्त्तव्य, जेठ, देवर, जेठानी, देवरानी और ननद इत्यादि, नौकर नौकरानी इत्यादि का वर्णन है।

वर्णनशैली बड़ी रोचक है। पुस्तक में एक रंगीन और दो सादे चित्र हैं, सुनहरे अक्षरों से अंकित कपड़े की सुन्दर जिल्द से सुसज्जित पुस्तक का दाम सवा रुपया।

३—पथिक

पाँच सर्गों में यह एक खंडकाव्य है। इसमें एक विरह कथा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। प्रेम, देशभक्ति, प्राकृतिक सौन्दर्य और आत्मबल का अद्भुत दृश्य देखकर हृदय को

सम्मानित करने के लिए प्रत्येक साहित्य-रसिक को य
पुस्तक अवश्य पढ़ जानी चाहिये।

माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय ने इस पुस्तक क
बड़ी प्रशंसा की है। और इसके लेखक को बहुत धन्यवाद
दिया है। मूल्य आठ आना।

४—कविता-कौमुदी।

दूसरा भाग—हिन्दी।

इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आज तक के सुप्र-
सिद्ध हिन्दी-कवियों की कविताओं और उनकी जीवनियों
का संग्रह है। मूल्य तीन रुपया।

५—कविता-कौमुदी

तीसरा भाग—संस्कृत

इसमें संस्कृत कवियों की जीवनियाँ और उनकी चुन
हुई कवितायें संगृहीत हैं।

हमारी अन्य पुस्तकें।

१—हिन्दी-पद्य रचना	...	...	...	।)
२—मिलन	...	...	...	॥)
३—सुभद्रा	...	...	...	॥)
४—आकाश की बातें	...	...	...	≋)
५—नीति शिक्षावली	...	...	..	⁻)॥
६—बाल-कथा कहानी	...	...	...	॥)

पुस्तकें मिलने का पता—

हिन्दी-रत्नमाला कार्यालय, प्रयाग।